डॉ॰ अंबेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों का प्रभावः महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन

BABASAHEB BHIMRAO AMBEDKAR UNIVERSITY
LUCKNOW
प्रज्ञा शील करुणा
ESTABLISHED 1996

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ से राजनीति विज्ञान विषय में पी.एच.डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोध निर्देशक
प्रो. सार्तिक बाघ
राजनीति विज्ञान विभाग

शोधार्थी
सीमा कुमारी
नामांकन संख्याः 338 / 14

राजनीति विज्ञान विभाग
अम्बेडकर अध्ययन विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
लखनऊ–226025
2019

प्रकाश एवं प्रव्रज्या
को समर्पित

उद्घोषणा

मैं **सीमा कुमारी** यह घोषणा करती हूँ कि मैंने **"डॉ॰ अंबेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों का प्रभाव : महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन"** विषय पर शोध कार्य **प्रो. सार्तिक बाघ,** राजनीति विज्ञान विभाग, अम्बेडकर अध्ययन विद्यापीठ, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के निर्देशन में पूर्ण किया है। पी.एच.डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोध प्रबन्ध मेरा मौलिक कार्य है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को इससे पहले इस विश्वविद्यालय अथवा किसी अन्य विश्वविद्यालय में पी.एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है। मैं यह भी घोषणा करती हूँ कि यह शोध प्रबन्ध पूर्णतया साहित्यिक चोरी (Plagiarism) मुक्त है।

दिनांक 25.11.2019

Seema Kumari

सीमा कुमारी
(शोधार्थी)
नामांकन संख्याः 338/14
राजनीति विज्ञान विभाग

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis titled **"डॉ॰ अंबेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों का प्रभाव : महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन"** Submitted by Mrs. **Seema Kumari** is an original research work and has not been previously submitted in part or full for the award of any other degree or diploma to this or any other university.

The thesis submitted to Babasaheb Bhimrao Ambedkar University Lucknow satisfies all the requirements as stipulated in the *Doctor of Philosophy (Ph.D.) regulations-1999 as amended in 2008/2010/2013* and it is fit for submission and evaluation for the award of the degree of Doctor of Philosophy of the University.

Date: 25.11.2019

Supervisor
Prof. Sarik Bagh
Research Supervisor
DPS/SAS/BBAU

Head of the Department
विभागाध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग
बी०बी०ए०यू०, लखनऊ
Head
Deptt. of Political Science
B.B.A.U., Lucknow

आभार

*प्रस्तुत शोध प्रबंध के लिए मैं अपने शोध निर्देशक **प्रो. सार्तिक बाघ** की सदैव ऋणी रहूंगी। जिनके कुशल मार्ग निर्देशन में मैं अपने शोध कार्य को पूर्ण कर पाई। सर का विद्वतापूर्ण मार्गदर्शन एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार शोध कार्य के लिए बहुत उपयोगी रहा। हृदय से आभार व्यक्त करते हुए सर के प्रति मैं सदैव ऋणी रहूंगी।*

*राजनीति विज्ञान विभाग के **विभागाध्यक्ष प्रो. शशिकांत पांडेय** सर मुझे शोध प्रबंध पूर्ण करने के लिए सदा सहयोग एवं दिशा निर्देश प्रदान करते रहे, जिसके लिए मैं उनका विशेष रूप से आभार व्यक्त करती हूं। मेरे विभाग के आदरणीय **प्रो. रिपुसूदन सिंह, डॉ. प्रीति चौधरी, डॉ. सिद्धार्थ मुखर्जी, मंजरी मैम** की आभारी रहूंगी जिन्होने अपने सुझावों द्वारा उचित मार्गदर्शन दिया।*

*शोध अध्ययन के क्रम में **जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी** और **बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ** के पुस्तकालय के समस्त कर्मचारीगण का विशेष रूप से आभार व्यक्त करती हूँ जिनके सहयोग के बिना शोध कार्य पूर्ण करने में कठिनाई होती। मैं इनकी सदैव आभारी रहूँगी।*

*अपने पितातुल्य श्रद्धेय **श्री रामअवतार** को हृदय से प्रणाम एवं आभार जिन्होने मुझे अपनी पढाई को जारी रखने के लिए सदैव प्रोत्साहित किया। राजनीति विज्ञान विभाग के समस्त कर्मचारीगण की आभारी रहूंगी। मेरे साथ के शोधार्थीगण विशेष रूप से **दिनेश कुमार** का आभार जिन्होने शोध कार्य में मेरा सहयोग किया।*

Seema Kumari

सीमा कुमारी

विषय–सूची

शब्द–संक्षेप सूची .... **viii**
सारणी की सूची .... **ix**
ग्राफ की सूची .... **x**

क्र.सं.	शीर्षक	पेज न.
I.	**अध्याय प्रथम–परिचय**	**1–31**
1.1	साहित्यिक पुर्नसमीक्षा	
1.2	शोध समस्या	
1.3	शोध प्रश्न	
1.4	शोध उद्देश्य	
1.5	शोध परिकल्पना	
1.6	शोध पद्धति	
1.7	अध्याय विभाजन	
II.	**अध्याय द्वितीय–डॉ. अंबेडकर के सामाजिक विचार एवं प्रभाव**	**32–79**
2.1	परिचय	
2.2	वर्णव्यवस्था पर डॉ अंबेडकर के विचार	
2.3	जाति व्यवस्था	
	2.3.1 जाति तंत्र की विशेषताएं नृजाति विज्ञान के विद्वानों की विशेषताएं	
	2.3.2 जाति समस्या के संबंध में अंबेडकर के पक्ष	
	2.3.3 जाति निर्मूलन के कारगर उपाय	
	2.3.4 भारतीय समाज में शक्ति और प्रभुत्व का स्त्रोत	
	2.3.5 भारतीय समाज में बुद्धिजीवी वर्ग का स्वरूप और उसकी भूमिका	
	2.3.6 भारतीय समाज में जाति और धर्म का स्वरूप और उनका अंतःसंबंध	

2.4 शिक्षा से संबंधित डॉ अंबेडकर के विचार

2.5 महिला सशक्तिकरण एवं अंबेडकर

2.6 डॉ अंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म परिवर्तन

III. अध्याय तृतीय–डॉ. अंबेडकर के राजनीतिक विचार एवं प्रभाव **80–118**

3.1 परिचय

3.2 राष्ट्रवाद

3.3 डॉ अंबेडकर के लोकतंत्र संबंधी विचार

3.3.1 जाति वर्ग और लोकतंत्र

3.3.2 लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें

3.3.3 लोकतंत्र को यर्थाथ बनाने की आवश्यक बातें

3.4 डॉ अंबेडकर के संवैधानिक विचार

3.4.1 डॉ अंबेडकर के संवैधानिक विचार की पृष्ठभूमि

3.4.2 भारतीय संविधान की प्रस्तावना

3.4.3 भारतीय संविधान की विशेषताएं

3.4.4 मजबूत केंद्र की व्यवस्था

3.4.5 मौलिक अधिकार

3.4.6 व्यक्ति पूजा की भर्त्सना

3.5 डॉ अंबेडकर के राजनीतिक विचारों का प्रभाव

3.6 भारत विभाजन एवं पाकिस्तान पर डॉ अंबेडकर के विचार

3.7 महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए डॉ अंबेडकर द्वारा किए गए संवैधानिक प्रावधान

IV. अध्याय चतुर्थ–महाराष्ट्र में दलित आंदोलन **119–186**

4.1 परिचय

4.2 डॉ अंबेडकर के पूर्व महाराष्ट्र में दलित आंदोलन (1920 से पूर्व)

4.3 अंबेडकरकालीन दलित आंदोलन (1920–1956)

4.3.1 महाद सत्याग्रह

4.3.2 नासिक कालाराम मंदिर सत्याग्रह

4.4 महाराष्ट्र के दलितों का राजनीतिक पटाक्षेप

4.4.1 साइमन कमीशन

4.4.2 गोलमेज सम्मेलन एवं अंबेडकर
4.4.3 गांधी एवं अंबेडकर की प्रथम वार्ता
4.4.4 अगस्त 1932 रैम्जे मैक्डोनाल्ड का पंच निर्णय (कम्यूनल अवार्ड)
4.4.5 पूना पैक्ट
4.4.6 इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी का गठन
4.4.7 कम्युनिज्म का प्रभाव
4.4.8 वर्ग एवं जाति के बीच का द्वंद
4.4.9 शिडयूल्ड कास्ट फेडरेशन
4.4.10 संविधान सभा में डॉ अंबेडकर
4.5 महाराष्ट्र में बौद्ध धर्म
4.5.1 महाराष्ट्र में धर्मांतरण के बाद दलितों की स्थिति
4.6 अंबेडकर के बाद महाराष्ट्र में दलित आंदोलन
4.6.1 रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया
4.6.2 दलित पैंथर्स
4.6.3 नामांतर आंदोलन
4.6.4 गैर सरकारी संगठनों की भूमिका
4.7 महाराष्ट्र में दलित आंदोलन में मांग एवं चमार जातियो की भूमिका
4.8 दलित महिला आंदोलन
4.9 दलित साहित्य
4.10 महाराष्ट्र में कांशीराम
4.11 महाराष्ट्र में दलित सांस्कृतिक आंदोलन
4.12 डिक्की
4.13 वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलित आंदोलन

V. अध्याय पंचम–उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन 187–234

5.1 परिचय
5.2 डॉ अंबेडकर के पूर्व उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन
5.2.1 भक्त कवियों द्वारा किए गए प्रयास
5.2.2 स्वामी अछूतानंद एवं दलितोद्धार
5.3 औपनिवेशिक काल में दलित आंदोलन
5.4 1956 के बाद दलित आंदोलन
5.4.1 रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया
5.4.2 कांग्रेस की भूमिका

5.5 कांशीराम एवं दलित आंदोलन
- **5.5.1** बामसेफ
- **5.5.2** डीएसफोर
- **5.5.3** बहुजन समाज पार्टी
- **5.5.4** 2007 के विधान सभा चुनाव में बसपा की जीत
- **5.5.5** मायावती एवं बसपा
- **5.5.6** बसपा शासन काल में हुए बदलाव
- **5.5.7** बसपा शासन काल की खामियां

5.6 बहुजन मीडिया

5.7 उत्तर प्रदेश में दलित साहित्य

5.8 बौद्ध धर्म आंदोलन

VI. अध्याय षष्ठम् – महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन **235–284**

6.1 महाराष्ट्र

6.2 उत्तर प्रदेश
- **6.2.1** सामाजिक आधार पर तुलनात्मक अध्ययन
- **6.2.2** दोनों राज्यो की दलित राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन
- **6.2.3** सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन
- **6.2.4** बौद्ध धर्म के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन

6.3 सर्वे ग्राफ विश्लेषण

6.4 निष्कर्ष

VII. अध्याय सप्तम –निष्कर्ष उपसंहार **285–298**

संदर्भ सूची **299–308**

प्रकाशित लेख की सूची **A**

शब्द–संक्षेप सूची

एमए	मास्टर ऑफ आर्ट्स
पीएचडी	डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी
डॉ अंबेडकर	बाबासाहेब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर
डीएससी	डॉक्टर ऑफ साइंस
यूपी	उत्तर प्रदेश
एससीएफ	शिड्यूल कास्ट फेडरेशन
आइएलपी	इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी
आरपीआई	रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया
एससी	शिड्यूल कास्ट
एसटी	शिड्यूल ट्राइब्स
भारिपा	भारतीय रिपब्लिकन पार्टी
बीबीएम	भारतीय बौद्ध महासंघ
बामसेफ	बैकवर्ड एण्ड माइनेरोटिज कम्युनिटी एम्पलॉइज फेडरेशन
बीएडब्लूएस	बाबासाहेब अंबेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज
बीजेपी	भारतीय जनता पार्टी
आरएसएस	राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ
डीएसफोर	दलित शोषित समाज संघर्ष समिति
सपा	समाजवादी पार्टी
बसपा	बहुजन समाज पार्टी
आईएएस	इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस
इआरडीएल	एक्सप्लोसिव रिसर्च एंड डेवलपमेंट लेबोरेटरी
एमएचए	मानवी हक्क अभियान
यूपीए	यूनाइटेड प्रोग्रेसिव एलाइंस
एनडीए	नेशनल डेमोक्रेटिक एलाइंस
यूपीएससीएफ	उत्तर प्रदेश शिड्यूल कास्ट फेडरेशन
बीकेडी	भारतीय किसान दल
एआईएमआईएम	ऑल इंडिया मजलिस ए इत्तेहादुल्ल मुसलिमिन
ओबीसी	अदर बैकवर्ड क्लास
एमबीसी	मोस्ट बैकवर्ड क्लास
बाअसंवा	बबासाहेब अंबेडकर संपूर्ण वाड़्गमय

सारणी –सूची

सारणी संख्या	विषय
1	कांशीराम द्वारा तैयार ढांचा
2	बसपा का सीट और वोट प्रतिशत चुनाव वार
3	बसपा का वोट प्रतिशत
4	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के अनुसूचित जातियों का प्रतिशत (2001 की जनगणना के अनुसार)
5	1960 के वर्षो में आरपीआई के चुनावी परिणाम
6	बसपा की राजनीतिक स्थितिः– उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव
7	लोकसभा चुनाव में बसपा
8	महाराष्ट्र की प्रमुख अनुसूचित जातियों का शैक्षणिक स्तर (प्रतिशत)
9	उत्तर प्रदेश की प्रमुख अनुसूचित जातियों का शैक्षणिक स्तर (प्रतिशत)

ग्राफ – सूची

ग्राफ संख्या	विषय (शोध प्रश्नावली से)
1.1 एवं 1.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में पहचान का आधार
2.1 एवं 2.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में डॉ अम्बेडकर के विचारों के बारे में जानकारी के स्रोत
3.1 एवं 3.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में डॉ अम्बेडकर की भूमिका
4.1 एवं 4.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलितों की पहचान से अभिप्राय
5.1 एवं 5.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में डॉ अम्बेडकर के विचारों की सार्थक परिणति क्या होनी चाहिए
6.1 एवं 6.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में डॉ अम्बेडकर के विचारों का प्रतिनिधित्व कौन सी राजनीतिक पार्टी कर रही है
7.1 एवं 7.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में डॉ अम्बेडकर का समाज के प्रति योगदान
8.1 एवं 8.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलित महिलाओं की समस्याओं के बारे में आपके विचार
9.1 एवं 9.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलितों को नौकरी एवं शिक्षा में आरक्षण के परिणाम
10.1 एवं 10.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलितों का राजनीतिक हित कैसे संभव है
11.1 एवं 11.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलितों के राजनीतिक आरक्षण का क्या परिणाम हुआ
12.1 एवं 12.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलित नौकरीपेशा मध्यवर्ग की भूमिका एवं योगदान
13.1 एवं 13.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलित राजनीति की उपलब्धियाँ
14.1 एवं 14.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलित राजनीति की खामियाँ
15.1 एवं 15.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में डॉ. अम्बेडकर द्वारा रचित संविधान की उपलब्धियाँ
16.1 एवं 16.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलितों को संविधान प्रदत आरक्षण के बारे में आपकी धारणा
17.1 एवं 17.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में डॉ. अम्बेडकर के नवयान बौद्ध धर्म में दलितों का धर्मान्तरण
18.1 एवं 18.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में आपकी आध्यात्मिक संतुष्टि का क्या आधार है

19.1 एवं 19.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्मांतरण से लाभ
20.1 एवं 20.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन से अभिप्राय
21.1 एवं 22.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन की खामियाँ
22.1 एवं 22.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन का आदर्श स्वरुप कैसे विकसित हो
23.1 एवं 23.2	महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलितों की मुक्ति का मार्ग आप किस रुप में देखते हैं

अध्याय–प्रथम
परिचय

अध्याय–प्रथम

परिचय

आधुनिक भारतीय राजनीति एवं समाज के स्वरूप निर्धारण में डॉ अम्बेडकर के विचारों एवं कृत्यों का महत्वपूर्ण योगदान है। सदियों से शोषित–वंचित एवं अधिकार विहीन दलित तबके को लोकतांत्रिक भारत में समान राजनीतिक अधिकार दिलाने और गरिमापूर्ण सामाजिक हैसियत सुनिश्चित कराने की दिशा में डॉ अम्बेडकर ने ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया। डॉ अम्बेडकर के विचारों के निर्धारण में न सिर्फ समकालीन सामाजिक – राजनीतिक आंदोलनों एवं पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव पड़ा बल्कि उनकी स्वयं अपनी दलित पारिवारिक पृष्ठभूमि के जीवनानुभवों ने भी इसमें अहम भूमिका निभाई। वे एक साथ राजनीतिक चिंतक एवं राजनेता तथा एक साथ समाजशास्त्री एवं सामाजिक आंदोलनकारी थे। चूंकि उनके विचारों का निर्धारण सैद्धांतिक अध्ययन से कहीं अधिक व्यावहारिक अनुभवों की बदौलत हुआ था अतः उनके विचार उनके बाद भी प्रासंगिक बने रहे और उनमें समय के साथ विकसित होने की सम्भावना बनी रही। भारत के दलितों की अवस्था में सुधार के लिए उन्होंने न सिर्फ अपने जीवनकाल में महत्वपूर्ण कार्य किए बल्कि वे अपने पीछे ऐसे राजनीतिक एवं सामाजिक विचारों की विरासत छोड़ गए जिन्हें अपना कर परवर्ती काल में दलित जन राजनीतिक ढाँचे में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित करने के साथ–साथ अपनी सामाजिक हैसियत को और सुदृढ कर सकते थे।

डॉ अम्बेडकर सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को राष्ट्र निर्माण और व्यवस्था परिवर्तन का मूल आधार मानते थे। उनके सामाजिक विचार उनके जीवनानुभवों के साथ–साथ बौद्ध और पाश्चात्य चिंतन से गहरे रुपों में प्रभावित था। उन्होंने जाति, वर्ण, धर्म जैसे विषयों पर ऐतिहासिक और सामाजशास्त्रीय पद्धति से विचार किया। उन्होंने वर्ण और जाति की अपरिवर्तनशीलता का कारण इनकी हिंदू धर्म सम्मत विधि मान्यता में देखा और खान–पान तथा अंतर्जातीय विवाहों के साथ साथ धार्मिक सुधारों को भी इनके विनाश के लिए आवश्यक माना। दलितों

और वंचित वर्गों की अवस्था में सुधार के लिए शिक्षा की महत्ता को डॉ अम्बेडकर भली भांति समझते थे। उनके अनुसार शिक्षा प्राप्त दलित ही आपस में एकजुट होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकते हैं। स्वतंत्रता, समानता, बंधुता और न्याय पर उनकी दृढ आस्था ने उन्हें स्त्री अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए भी प्रेरित किया। उन्होंने विश्व के सभी धर्मों का गहन अध्ययन किया और बौद्ध धर्म की तार्किक और भौतिकवादी व्याख्या कर के उस के क्रांतिकारी स्वरुप को निरुपित किया।

डॉ अम्बेडकर दलित हितों को लक्ष्यबद्ध करके राजनीतिक पटल पर अवतरित हुए थे। यद्यपि उन्होंने राष्ट्र, राष्ट्रवाद, राज्य, अल्पसंख्यकों के अधिकारों, लोकतंत्र, संविधान, आरक्षण, भारत–विभाजन, राजनीतिक दलों की गतिविधियों, मौलिक अधिकारों आदि पर विस्तार से लिखा। वे व्यवस्था परिवर्तन के लिए संवैधानिक रीतियों के समर्थक थे और सत्ता प्राप्ति को व्यवस्था परिवर्तन का माध्यम समझते थे। उन्होंने दलितॉ की राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए जिन राजनीतिक प्रयोगों को किया उन्होंने परवर्ती दलित नेताओं के लिए पथ–प्रदर्शक का कार्य किया।

डॉ अम्बेडकर के बाद उनके विचारों को अपना कर नवोदित शिक्षा प्राप्त दलित मध्यम वर्ग, जिसका मुख्य आर्थिक आधार सरकारी नौकरी थी जिसे अम्बेडकर ने आरक्षण के अपने संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा सम्भव बनाया था, ने देश के विभिन्न भागों में राजनीतिक, सामाजिक एवं वैचारिक आंदोलनों को खड़ा करने का प्रयास किया। इन प्रयासों का विशेष प्रभाव हमें डॉ अम्बेडकर के अपने गृह राज्य महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में खास तौर पर नजर आता है जिनका तुलनात्मक अध्ययन इस शोध का प्रमुख विषय है। इस शोध के जरिए हम इस बात को समझने का प्रयास करेंगे कि अम्बेडकर के बाद उनके राजनीतिक एवं सामाजिक विचारों ने परवर्ती दलित आंदोलन को किस प्रकार प्रभावित किया। महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलनों के तुलनात्मक अध्ययन से हमें परवर्ती काल में न सिर्फ डॉ अम्बेडकर के विचारों की प्रासंगिकता नजर आती है बल्कि यह भी परिलक्षित होता है कि डॉ अम्बेडकर के विचारों को व्यावहारिक राजनीति एवं

परिस्थितिजन्य दबावों की वजह से आधे अधूरे स्वरूप में अपनाने से दलित आंदोलन अपने वांछित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। परवर्ती दलित नेताओं और चिंतकों ने समकालीन परिस्थितियों के बर–अक्स अम्बेडकारवाद को विकसित करने के बजाए स्वयं अम्बेडकर को ही प्रतीक में बदल दिया जिसका उपयोग ऐसे लोग भी अपनी राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि के लिए कर सकते थे जिनका अम्बेडकरवाद से दूर–दूर तक वास्ता नहीं था।

महाराष्ट्र में दलित आंदोलन

बंबई प्रांत डॉ अम्बेडकर की व्यवहारिक कर्म भूमि थी अतएव हमें उनके सामाजिक–राजनीतिक विचारों का सर्वप्रथम महाराष्ट्र में ही नजर आता है। सामाजिक रुप से अम्बेडकर ने अपने आंदोलन की शुरुआत सुधारवादी तौर तरीके से मंदिर प्रवेश आंदोलन के रुप में की थी। मंदिर प्रवेश एवं पीने के पानी का हक लेने मात्र से दलितों की समस्या का समाधान नही हो सकता था। ऐसा समझते हुए, डॉ अंबेडकर ने दलितों को राजनीतिक अधिकार दिलाने के लिए अंग्रेजी सरकार को दलितों की वास्तविक स्थिति से अवगत कराया। गोलमेज सम्मेलन में अश्पृस्यता की समस्या को विश्व स्तर का मुद्दा बना दिया। अंबेडकर की बात को गंभीरता से लेते हुए रैम्जे मैक्डोनेल्ड अवार्ड द्वारा दलितों को पृथक निर्वाचन का अधिकार मिला । अगर यह अवार्ड पूना पैक्ट के द्वारा निरस्त नही किया जाता तो आज दलितों की स्थिति अलग रहती । कालांतर में डॉ अम्बेडकर ने यह महसूस किया कि जातिवाद के मूल आधार हिंदू धर्म में ही निहित हैं अतएव हिन्दू धर्म का त्याग किए बगैर धर्मांतरण के जातिवाद का उन्मूलन एवं समतापरक समाज की स्थापना सम्भव नहीं है। उन्होंने दलितों से अपील की कि उन्हें अपनी मुक्ति के लिए सामूहिक रूप से बौद्ध धर्म अपना लेना चाहिए। उनकी अपील का सर्वाधिक प्रभाव उनके स्वजातीय महारों पर पड़ा और वे बड़े पैमाने पर नव बौद्ध के रुप में दीक्षित होने लगे। किंतु अम्बेडकर के बाद उनके अनुयायियों ने दलितों के सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकीकरण की दिशा में कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया, यहाँ तक कि बौद्ध धर्म भी दलितों के बीच विभाजन का एक कारण बन गया।

डॉ अम्बेडकर दलितों की समस्या को सामाजिक से अधिक राजनीतिक समस्या समझते थे। उनकी धारणा थी कि दलित राजनीतिक रुप से सशक्त होकर ही समाज में गरिमापूर्ण स्थान प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने अपने जीवनकाल में कई राजनीतिक प्रयोग किए। शुरु में उन्होंने दलितों को एक श्रमिक वर्ग मान कर इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की स्थापना की ताकि वे अन्य श्रमिकों के साथ गठजोड़ करके राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर सकें।[1] किंतु उन्होंने महसूस किया कि भारतीय जनता वर्गीय आधार पर नहीं अपितु जातिगत आधार पर विभाजित है। भारतीय परिदृश्य में जाति श्रम का नहीं बल्कि श्रमिकों का विभाजन है। उन्होंने फिर दलितों को अल्पसंख्यक वर्ग मान कर शेड्यूल कास्ट फेडरेशन की स्थापना की किंतु 1946 के चुनावों में इस पार्टी को अपेक्षित सफलता नहीं मिली। कालांतर में अम्बेडकर ने महसूस किया कि दलितों के लिए ऐसी पार्टी बनाई जाए जिसमें दलितों के अतिरिक्त अन्य वंचित एवं उपेक्षित जातियों एवं समूहों की भागीदारी हो। अम्बेडकर के इस राजनीतिक विचार को आधार बना कर 1957 में रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना की गई। प्रारम्भिक दौर में इस पार्टी के नेताओं ने दलितों पर अत्याचार, उनसे जुडे मुद्दों और भूमि सुधार के मुद्दों को प्रबलता से उठाया। दलित साहित्य और नवयान बुद्धिस्ट आंदोलन को बढावा दिया किंतु शीघ्र ही यह पार्टी गुटबाजी और विभाजनों का शिकार हो गई और महारों के अतिरिक्त अन्य जातियों एवं समूहों को जोड़ने में विफल रही। महाराष्ट्र के दलित नेताओं में केवल डॉ अंबेडकर के पौत्र प्रकाश अम्बेडकर ने वंचित जाति समूहों के साथ गठबंधन कर अपनी राजनीति को आगे बढाने का प्रयास किया। प्रकाश अम्बेडकर ने 4 जुलाई 1994 को रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया से अलग होकर भारिप बहुजन महासंघ नामक राजनीतिक दल का गठन किया। वर्ष 1999 में उनकी पार्टी अन्य पिछडी जातियों का समर्थन हासिल कर अकोला लोक सभा सीट जीतने में सफल हुई। 20 मार्च 2018 को प्रकाश अम्बेडकर ने एक नई राजनीतिक पार्टी वंचित बहुजन अघाड़ी का गठन किया।[2] वर्ष 2019 के आम चुनावों में इस पार्टी ने ऑल इंडिया मजलिस ए इत्तेहादुल मुसलीमीन एवं अन्य तकरीबन 100 छोटी पार्टियों और सामाजिक

---

[1] कीर धनंजय, डॉ बाबासाहेब अंबेडकर जीवन चरित पेज–272,

[2] दैनिक जागरण, 25 मई 2019.

संगठनों के समर्थन से चुनाव लड़ा। वंचित बहुजन अघाड़ी और ऑल इंडिया मजलिस ए इत्तेहादुल मुसलीमीन के इस गठबंधन ने इन चुनावों में लगभग 41 लाख मत प्राप्त किए जो कि कुल डाले गए मतों का लगभग 14 प्रतिशत है।

महाराष्ट्र के दलित आंदोलन में दलित पैंथर आंदोलन की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही जिसके युवा समर्थक अम्बेडकरवाद के साथ–साथ अमेरिकी ब्लैक पैंथर मुवमेंट और मार्क्सवाद से भी प्रभावित थे। दलित पैंथर मूवमेंट ने **दलित** शब्द को लोकप्रिय बनाया। दलित साहित्य का प्रसार भी इसी समय हुआ जो कि मराठी भाषा से शुरू हुआ एवं हिन्दी, तमिल तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में रचनाएं होने लगी। 1956 में डॉ अंबेडकर के बौद्ध धर्मांतरण के बाद बौद्ध धर्म की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण किया गया है। महाराष्ट्र में दलितो में शिक्षा का प्रसार अधिक है यहां के दलित शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक रूप से ज्यादा समृद्ध है। जिसका विश्लेषण इस शोध प्रबंध में किया गया है।

उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन

डॉ अम्बेडकर के राजनीतिक विचारों को उल्लेखनीय सफलता कांशीराम द्वारा 1984 में स्थापित बहुजन समाज पार्टी को मिली। यह पार्टी अब तक भारत के सब से बड़े प्रांत में तीन बार अन्य दलों से गठबंधन करके और एक बार अपने बुते पर बहुमत प्राप्त करके सत्ता में आने में सफल हो चुकी है। किंतु 2012 के विधानसभा चुनावों में असफल होने के बाद इस पार्टी की लोकप्रियता में तेजी से गिरावट हुआ है। 2014 के लोक सभा चुनावों में बसपा के न सिर्फ मत प्रतिशत में गिरावट आई बल्कि यह पार्टी अपना खाता खोलने में भी विफल रह गई। कई समीक्षकों का मानना है कि दलित सशक्तिकरण के अपने मूल एजेंडे से भटक जाने और भारतीय जनता पार्टी के हिंदुत्व एजेंडे के बर–अक्स किसी सांस्कृतिक एवं सामाजिक अभियान के अभाव में यह दल अपने लक्षित मतदाता समूहों को आकर्षित करने में विफल हो गया। इसी प्रकार यह पार्टी बिजली, सड़क, पानी जैसी आधारभूत सुविधाओं, रोजगार तथा आर्थिक विकास, शिक्षा और भ्रष्टाचार जैसे मामलों में भी आम जनता को अपने विश्वास में नहीं ले पायी और न ही युवाओं में

तेजी से लोकप्रिय हो रहे इंटरनेट और सोशल मीडिया जैसे जन संचार और विचार–विमर्श के साधनों का प्रभावी इस्तेमाल कर पायी।

शिक्षा को अम्बेडकर ने दलित मुक्ति का मुख्य माध्यम माना था किंतु बहुजन समाज पार्टी ने अनेक बार सत्ता में रह कर भी दलितों की शैक्षणिक उन्नति की दिशा में कोई प्रयास नहीं किया। सांस्कृतिक आंदोलन के नाम पर बसपा शासन काल में अम्बेडकर और दलित मनीषियों के कई स्मारक बनाए गए किंतु दलित एवं पिछड़ी जातियों में बौद्ध धर्म के प्रसार का कोई बौद्धिक आंदोलन नहीं चलाया गया। इस प्रकार उत्तर प्रदेश में डॉ अम्बेडकर के राजनीतिक विचारों को लागू करने की दिशा में ही कुछ हद तक प्रयास किए गए कितु अम्बेडकरवाद के सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक पहलुओं की उपेक्षा की गई।

महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन यह बताता है कि इन दोनों राज्यों में अम्बेडकर के विचारों को अपनाने एवं उसे विकसित करने के बजाए स्वयं अम्बेडकर को ही प्रतीक बना कर रख दिया गया है। इन दोनों राज्यों में दलित आंदोलन किसी व्यापक और दूरगामी रणनीति के अभाव में व्यक्तिवाद और अवसरवादी राजनीतिक गठजोड़ का शिकार हो गया है। उतरप्रदेश में दलित राजनीति एवं पार्टी को यह सुनहरा अवसर मिला था कि वे सत्ता शासन को लंबे समय तक बरकरार रख सकती, अगर बसपा प्रत्येक व्यक्ति के उत्थान के लिए कार्य करती, अपने आर्गेनिक बुद्धिजीवी वर्ग का निर्माण करती एवं अपनी शैक्षणिक संस्थाएं विकसित करती ।

डॉ अंबेडकर प्रबुद्ध भारत का निर्माण करना चाहते थे। शिक्षा को बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। उनके अनुसार शिक्षा जिसका काम लोगों को नैतिकता सिखाना है और उनको समाज में रहने लायक बनाना है।[3] शिक्षा का उद्देश्य व कार्य ऐसे होने चाहिए जिनसे पता चले कि वहां दी जाने वाली शिक्षा व्यस्कों के लिए उपयुक्त है कि यह अपने चरित्र में वैज्ञानिक रूप से निष्पक्ष और पक्षपात रहित हों। इसका उद्देश्य केवल तथ्यों और सिद्धांतों को भरना नही होना चाहिए अपितु यह विधार्थी के

[3] बाबासाहेब अंबेडकर संपूर्ण वांगमय खंड–3, पेज–55

व्यक्तित्व और मानसिक स्थिति को सुदृढ करने वाला होना चाहिए।[4] डॉ अंबेडकर शिक्षा द्वारा चरित्र निर्माण को अधिक महत्व देते थे। चरित्रहीन व विनयहीन सुशिक्षित मनुष्य पशु से भी भयंकर होता है। अगर ऐसा मनुष्य गरीब जनता के खिलाफ होगा तो वह समाज के लिए अभिशाप बन जाएगा।

भारतीय समाज में बुद्धिजीवी वर्ग का स्वरुप और उसकी भूमिका

डॉ अंबेडकर के अनुसार देश का भविष्य उसके बुद्धिजीवी वर्ग पर निर्भर करता है। प्रत्येक देश में बुद्धिजीवी वर्ग सर्वाधिक प्रभावशाली वर्ग रहा है वह भले शासक वर्ग न रहा हो। बुद्धिजीवी वर्ग वह है जो दूरदर्शी होता है, सलाह दे सकता है और नेतृत्व प्रदान कर सकता है। किसी भी देश की अधिकांश जनता विचारशील एवं क्रियाशील जीवन व्यतीत नही करती है, ऐसे लोग प्रायः बुद्धिजीवी वर्ग का अनुकरण और अनुगमन करते है। यदि बुद्धिजीवी वर्ग इमानदार स्वतंत्र और निष्पक्ष है तो उस पर भरोसा किया जा सकता है कि संकट की घड़ी में वह पहल करेगा और उचित नेतृत्व प्रदान करेगा। बुद्धिजीवी वर्ग उच्च विचारों वाले व्यक्तियों का समूह होता है जो समाज की सहायता करने के लिए तैयार रहता है एवं पथभ्रष्ट लोगों को सही मार्ग दिखाता है। या फिर ऐसा भी हो सकता है कि बुद्धिजीवी वर्ग सहजता से धोखेबाजों का एक गिरोह या संकीर्ण विचारों वाले वकीलों का एक निकाय हो सकता है जहां से उसे सहायता मिलती है। भारत देश में प्रारंभ से शिक्षा पर एक ही वर्ण का प्रभुत्व रहा है जो भी बुद्धिजीवी वर्ग है वह ब्रहम्ण जाति का ही दूसरा नाम है।[5] इसलिए डॉ अंबेडकर शिक्षा पर जोर देकर दलितो में बुद्धिजीवी वर्ग का निर्माण करना चाहते थे जो दलितों को सही दिशा दिखाए । उन्होने शिक्षित वर्ग एवं बुद्धिजीवी वर्ग में भी अंतर किया है बौद्ध भिक्खुओं का वर्ग बुद्धिजीवी वर्ग है । दूसरी ओर ब्राहमणों का वर्ग केवल शिक्षितों का वर्ग बन गया। बुद्धिजीवी वर्ग को किसी काम या किसी वर्ग से जुड़ने की कोई बंदिश नहीं होती है। दूसरी ओर शिक्षित वर्ग कोई बौद्धिक वर्ग नही होता हालांकि उसमें तर्क करने समझने और सोचने की अपनी शक्ति होती है। इसका कारण यह है कि शिक्षित

---

[4] बाबासाहेब अंबेडकर संपूर्ण वांगमय खंड–3, पेज–330

[5] बाबासाहेब अंबेडकर संपूर्ण वांगमय खंड–1, पेज–95

वर्ग की दृष्टि का आयाम और नई विचारधारा के प्रति उसका रवैया उस वर्ग के हित में नियंत्रित होता है जिससे वह पहले से ही जुड़ा रहता है।[6] स्पष्टतः ब्राहम्ण वर्ग अपनी वर्गीय हित एवं सर्वोच्चता वाली प्रवृति को क्यों छोड़ना चाहेगा । दलितों को ही अपना अलग विकल्प का निर्माण करना होगा। ज्ञान पर आधारित समतामूलक समाज द्वारा ही दलितों की स्थिती में ठोस एवं स्थायी परिवर्तन संभव है।

डॉ अम्बेडकर ने एक न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था की स्थापना एवं जाति उन्मूलन के प्रश्न पर विचार करते हुए भारतीय समाज में शक्ति और प्रभुत्व के स्रोत को भी तलाश करने की कोशिश की। अपने अनुभव, अध्ययन और पर्यवेक्षण से उन्होंने यह महसूस किया कि किसी समय या समाज विशेष के परिप्रेक्ष्य में शक्ति और प्रभुत्व के स्रोत भी अलग–अलग होते हैं। उन्होंने दलित और बहिष्कृत वर्ग को जाति की जकड़बन्दी से मुक्त कराकर समान मानवीय धरातल पर लाने के लिए एक ओर उनके सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक उत्थान की बात की दूसरी ओर उन्होंने उनके अधिकारों की रक्षा के लिए राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति को भी आवश्यक बताया। अपने जीवन के आखिरी दौर में यद्यपि इसकी पूर्व पीठिका उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही शुरु कर दी थी, वे बौद्ध धर्म के नैतिक, बौद्धिक और करुणाशील स्वरुप में एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के परिकल्पक बन गए थे जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूल्यों पर आधारित हो।

डॉ अम्बेडकर ने जन्म आधारित – असमानता परक जाति व्यवस्था के गहन विश्लेषण से इस बात को लक्षित कर लिया कि भारतीय जाति–प्रथा की जड़े धर्म समर्थित शास्त्रीय चिंतन पद्धति और रूढ़ सामाजिक परम्पराओं में गहरे धंसी हुई हैं जिसे भारत की परम्परागत राजव्यवस्था अपनी स्थानीय शासन प्रणाली एवं धर्म शास्त्रों व स्मृतियों पर आधारित न्याय पद्धति के जरिए दृढ़ता से लागू करती आयी है। अम्बेडकर ने धर्म एवं न्याय के अंतःसम्बन्ध और भारतीय संदर्भ में धर्म की नकारात्मक भूमिका को उद्घाटित करते हुए लिखा, 'कानून और धर्म, दो ऐसे तत्व

[6] बाबासाहेब अंबेडकर संपूर्ण वांगमय खंड–7, पेज–212

हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। कभी–कभी वे एक दूसरे के पूरक भी होते है और कभी–कभी वे एक दूसरे की खामियों को सुधारने का काम भी करते हैं। इन दोनों तत्वों में कानून का सम्बन्ध व्यक्ति से है जबकि धर्म निर्वैयक्तिक होता है। कानून क्योंकि व्यक्ति पर आधारित है, इसलिए अन्याय और असमानता का कारण हो सकता है। परंतु धर्म के साथ यह बात नहीं है, इसलिए वह निष्पक्ष रह सकता है। यदि धर्म निष्पक्ष होगा तो वह कानूनी असमानता को दूर करने की क्षमता रखता है। रोम में गुलामों के संबंध में ऐसा ही हुआ। इसी कारण धर्म के विषय में यह कहा जाता है कि वह मनुष्य को उद्दात बनाने के लिए है न कि उसे अवनत करने के लिए। हिन्दू धर्म एक अपवाद है। इसने अछूतों को अधःप्राणी बना दिया। इस अधःप्राणी की स्थापित व्यवस्था से और न ही अमानुषिकता से ही त्राण पाने का कोई उपाय दिखता है।[7] भारतीय संदर्भ में धर्म ने समाज के प्रभुत्वशाली–विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के हित में अन्याय और शोषण पर आधारित जिस चातुर्वर्ण्य व्यवस्था और जाति–प्रथा को जन्म दिया उसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूल्यों का समाज के कॉमन सेंस (आम मति) में कोई स्थान ही नहीं रह गया। धर्म के इस स्वरुप ने जहाँ बहिष्कृत–दलित वर्ग की अंतःचेतना को अन्याय एवं विषमता स्वीकार करने के प्रति अनुकूल बनाने का काम किया वहीं सामाजिक परम्पराएँ, न्याय और शासन पद्धति इस दलित वर्ग द्वारा अपनी स्थिति में सुधार के किसी भी प्रयास को दमित करती रहीं। डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म दर्शन एवं भारतीय सामाजिक व्यवस्था के गहन ऐतिहासिक विश्लेषण और वंचित वर्गों के हित में चलाए गए अपने सभी आंदोलनों और राजनीतिक गतिविधियों के अनुभवों से यह समझ लिया कि भारतीय समाज में व्याप्त शोषण, उत्पीड़न, असमानता और अन्याय से दलितों की मुक्ति तभी सम्भव है जब वे राजनीतिक सत्ता प्राप्त करें, किन्तु भारतीय संदर्भ में जहाँ दलित इतनी संख्या में नहीं हैं कि वे वर्तमान संसदीय प्रणाली में अपने बूते बहुमत प्राप्त कर लें, उन्हें नैतिकता, बौद्धिकता और करुणा पर आधारित एक ऐसे धर्म को आत्मसात करना चाहिए जो आम मानवीय अंतःचेतना (कॉमन सेंस) को रुढ़ सामाजिक परम्पराओं से परे जाकर एक ऐसी सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक व्यवस्था अपनाने के लिए प्रेरित कर सके जो

[7] बाबा साहब, अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–9, पेज–147–148

स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूल्यों पर आधरित हो। डॉ. अम्बेडकर ने धर्म के इस स्वरुप को बौद्ध धर्म में देखा जिसने अपने क्रांतिकारी स्वरुप में प्राचीन काल में प्रतिक्रांतिकारी ब्राह्मणवाद से टक्कर ली थी।[8] इस प्रकार डॉ अम्बेडकर ने एक ऐसी राजनीतिक पद्धति की परिकल्पना की जिसमें बौद्धिक और सांस्कृतिक गतिविधियों की अहम भूमिका थी ताकि भारत की बहुसंख्यक आबादी को ब्राह्मणवाद के मानसिक वर्चस्व से मुक्त करा कर नई व्यवस्था के लिए लामबंद किया जा सके।

डॉ अम्बेडकर भारतीय समाज को जिस मूलगामी ढ़ंग से बदलना चाहते थे उसमें बुद्धिजीवी वर्ग की अहम भूमिका होनी थी। डॉ. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक **जाति प्रथा–उन्मूलन** में लिखा है कि इस बात को लेकर मतभिन्नता हो सकती है कि इतिहास का निर्माण किसी महान व्यक्ति के प्रयत्नों की बदौलत सम्भव है किन्तु इस बात में कोई संशय नहीं कि देश का बुद्धिजीवी वर्ग इतना प्रभावशाली होता है कि अपने देश का भविष्य संवार दे। उनके शब्दों में, 'चाहे आप इस सिद्धांत को माने या न माने कि एक महान पुरुष इतिहास का निर्माता होता है, लेकिन आपको इतना अवश्य स्वीकार करना होगा कि प्रत्येक देश में बुद्धिजीवी वर्ग सर्वाधिक प्रभावशाली वर्ग रहा है, वह भले ही शासक वर्ग न रहा हो। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार भारतीय संदर्भ में ब्राह्मण जाति परंपरागत रुप से बुद्धिजीवी वर्ग का पर्याय रही है क्योंकि शिक्षा और ज्ञानोपार्जन का अधिकार केवल इसी जाति के पास था। किंतु एक बुद्धिजीवी वर्ग के रुप में ब्राह्मणों ने अपनी प्रज्ञा और बुद्धि का इस्तेमाल व्यापक समाज के हित में नहीं किया बल्कि वे सदा समाज में अपनी विशिष्ट स्थिति और विशेषाधिकारों को बनाए रखने के प्रति प्रयासरत रहे। अम्बेडकर की यह भी मान्यता है कि चूँकि ब्राह्मणों को परंपरागत रुप से शिक्षा का अधिकार था इसलिए उन्हें मनीषी या बौद्धिक मानलेना सही नहीं है। 1948 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **'अछूत कौन थे और वे अछूत कैसे बने'** की प्रस्तावना में वे लिखते हैं एक शिक्षित और मनीषी व्यक्ति में जमीन–आसमान का अंतर है। पहला वह जो वर्ग चेतना से अभिभूत है और अपने वर्ग के हित के लिए ही मरता है। दूसरा निश्छल व्यक्ति वह

[8] जाधव, नरेन्द्र, डॉ अम्बेडकर राजनीति, धर्म और संवैधानिक विचार; पेज–213–215

है जिसके मन में वर्ग भेद की चेतना नहीं होती।[9] इसी प्रकार अम्बेडकर ने अपने निबंध 'ब्राह्मणवाद की विजय' में बौद्धिक और शिक्षित वर्ग में विभेद को रेखांकित करते हुए लिखा कि शिक्षित वर्ग कोई बौद्धिक वर्ग नहीं होता, हालांकि उसमें तर्क करने, समझने और सोचने की अपनी शक्ति होती है। इसका कारण यह है कि शिक्षित वर्ग की दृष्टि का आयाम और नई विचारधारा के प्रति उसका रवैया उस वर्ग के हित में नियंत्रित होता है जिससे वह पहले से जुड़ा होता है।[10] अम्बेडकर के अनुसार बौद्ध भिक्षुओं के लिए अपनी निजी सम्पति रखना निषिद्ध था जबकि ब्राह्मण अपनी वैदिक प्रणाली के अंतर्गत अपनी निजी सम्पति रखने के लिए स्वतंत्र थे। इस अंतर ने बौद्ध भिक्षुओं और वैदिक ब्राह्मणों के आचरण और दृष्टिकोण को भी परिवर्तित कर दिया। इससे भिक्षुओं का वर्ग जहाँ बौद्धिक बन गया वहीं वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत ब्राह्मण एकमात्र शिक्षित वर्ग होने की वजह से अपनी बुद्धि और शिक्षा का प्रयोग जनसामान्य के हित में न कर अपनी स्वार्थसिद्धि में अपनी श्रेष्ठता और अपने विशेषाधिकारों को बनाए रखने में करने लगे।

इस प्रकार डॉ अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म के आधार पर जिस सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था की परिकल्पना की उसमें बुद्धिजीवी वर्ग को सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना था जो बौद्ध भिक्षुओं की तरह निजी सम्पति के मोह से मुक्त होकर स्वत़ंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए जनसामान्य को प्रेरित कर सके। इसीलिए अम्बेडकर ने दलितों को अपनी मुक्ति के लिए जो मूलमंत्र दिया उसमें उनके शिक्षित होने को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया था ताकि वे संगठित होकर नई व्यवस्था के निर्माण के लिए संघर्ष कर सकें। शिक्षा का व्यापक विस्तार ही किसी देश में बुद्धिजीवी वर्ग को जन्म देता है।

साहित्य अवलोकन

सुधा पई की पुस्तक **दलित एर्स्सन (2002)** यह पुस्तक खास तौर पर हाल के दशकों में भारत में अनुभव किए गए दलितों के अपने अधिकारों के प्रति दावे की

---

[9] बाबा साहब, अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–14, प्रस्तावना

[10] बाबा साहब, अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–7, पेज–212

घटना का विश्लेषण करती है। अपने अधिकारों के प्रति दलितों का यह अभिकथन आजादी के बाद लोकतंत्रीकरण की वृहत प्रक्रिया का एक हिस्सा है जो समाज के निम्न तबके से उमड़े एक उद्वेग के रुप में प्रतीत होता है। लेखिका का मत है कि इस प्रक्रिया ने दलितों की एक नई पहचान को जन्म दिया जो अम्बेडकरवाद की वैकल्पिक विचारधारा और ऐतिहासिक रुप से दलितों का उत्पीड़न करने वाले जाति व्यवस्था की मुखालफत पर आधारित है। यह पुस्तक उन तीन प्रारुपों को विश्लेषित करती है जो अपने अधिकारों के प्रति दलित अभिव्यक्ति की प्रक्रिया दर्शाती है यथा जमीनी स्तर के दावे, राजनीतिक दलों के माध्यम से अभिव्यक्ति और हाल के वर्षों की मध्यम वर्ग की अपने दावों की अभिव्यक्ति। दलित उभार की इस प्रक्रिया ने दलितों में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया और व्यापक राजनीतिक भागीदारी को सम्भव बनाया किंतु इससे देश के कई राज्यों एवं क्षेत्रों में सामाजिक एकजुटता के बजाए दलितों के प्रति समाज के उग्र वर्ग खास कर पिछड़ी जातियों के अत्याचार की घटनाएँ और बढ़ गयीं। दलित अभिव्यक्ति की प्रकृति और प्रकार्य उल्लेखनीय विवाद का विषय रहा है। यह पुस्तक दर्शाती है कि दलित आंदोलन अभी संक्रमण के दौर में है जिसने कुछ मात्रा में सफलता तो अर्जित किया है किंतु अगड़ी जातियों का प्रभुत्व और उत्पीड़न की प्रवृति अभी मुकम्मल तौर पर समाप्त नहीं हुई है। इस प्रकार इस पुस्तक में दलित दावे की उपलब्धियों पर प्रकाश डालने के साथ साथ इस आंदोलन की कमजोरियों, सीमाओं, और संभावनाओं पर भी चर्चा की गई है।

अभय कुमार दुबे द्वारा संपादित पुस्तक '**आधुनिकता के आइने मे दलित (2004)** यह पुस्तक विभिन्न विश्लेषकों तथा लेखकों द्वारा शुचिता पूर्वक लिखा हुआ है। समसमायिक समस्याओं तथा देश मे चल रहे मुददों को दलितो के साथ जोड़कर तुलनात्मक तरीके से लिखा गया है। उत्तर भारत के कई राज्यों पर विशेष रूप से उत्तर प्रदेश पर केंद्रित लेख है। इस पुस्तक में दलित बौद्धिकता, अभिजन तथा दलित महिला पर जो लेख है वे बड़े उपयोगी तथा नवीन हैं। पुस्तक में दलित समाजशास्त्र के साथ – साथ दलितों की राजनीति में भागीदारी का भी

अध्ययन किया गया है। वर्तमान भुमंडलीय व्यवस्था में दलित आन्दोलन के उद्देश्य को भी रेखांकित किया गया है।

गेल ओमवेट द्वारा लिखित पुस्तक **दलित और प्रजातान्त्रिक क्रांति उपनिवेशीय भारत में डॉ अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन (2009)** इस पुस्तक में गेल ओमवेट ने भारत के दक्षिण राज्यों में हुए दलित अन्दोलनों का वर्णन किया है। औपनिवेशिक काल में दलितों की स्थिति तथा उनके विद्रोह का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। यह पुस्तक दस अध्यायों में विभाजित है। गेल आमवेट का मुख्य फोकस अम्बेडकर के विचारों तथा अम्बेडकरवाद पर है। यह अध्ययन भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध परिषद द्वारा प्रदत परियोजना महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश ,कर्नाटक में दलित आंदोलनों का इतिहास 1850–1975 से अस्तित्व में आया। यह पुस्तक औपनिवेशिक काल में हुए मुख्य प्रजातान्त्रिक आन्दोलन जाति विरोधी अंक के मुख्य हिस्से की विवेचना करता है। इन आंदोलनों का मुख्य प्रयास यह था कि भारत कि मूल सामाजिक संरचना को स्थानांतरित कर सामाजिक समता को स्थापित किया जाए।

क्रिस्टोफ जेफरले द्वारा रचित पुस्तक **एनलाइजिंग एंड फाइटिंग कास्ट डॉ अंबेडकर एंड अनटचेब्लिटी (2003)** यह डॉ अम्बेडकर पर किया गया एक उत्कृष्ट शोध हैं। लेखक ने डॉ अम्बेडकर को आधुनिक समाजशास्त्र का एक पथप्रदर्शक माना है। इस पुस्तक में अम्बेडकर के सामाजिक विचारों पर तथा कार्यों पर ज्यादा ध्यान दिया गया है।

एलिनोर जेलियट की किताब **फ्रॉम अनटचेबल टू दलित मूवमेंटस (2001)** इस पुस्तक में डॉ अम्बेडकर के राजनीतिक तथा धर्म से जुड़े विचारो तथा कृत्यों पर फोकस किया गया है। हिन्दू वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध डॉ अंबेडकर के द्वारा बौद्ध धर्म का पुनरुद्भव हुआ। डॉ अंबेडकर के जीवनी एवं उनके संघर्षो को वर्णित किया गया है।

गेल ओमवेट की पुस्तक **दलित दृष्टि (2011)** में औपनिवेशिक भारत एवं स्वतंत्रता के बाद के दलित स्थिति पर लिखा गया है। इस पुस्तक में गेल ओमवेट

ने दलित आंदोलन तथा अन्य सामाजिक आंदोलनों के संघर्ष की व्याख्या की गई है। किस प्रकार इन आंदोलनों ने ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म तथा हिंदुत्ववादी संकीर्ण मानसिकता के उदारवादी रुपों से टकरा कर भी अपने संघर्ष को जारी रखा। हिंदू धर्म ब्राह्मणों द्वारा शोषण का एक मंच था, जिसने अपनी संरचना में पूरे समाज को प्रताड़ित एवं उलझा कर रखा था। लेखिका ने इसी व्यवस्था के विरुद्ध ज्योतिबा फुले, रमाबाई, ताराबाई, अम्बेडकर, पेरियार के संघर्ष की विवेचना की है। पुस्तक में यह भी बताया गया है कि दलितों के विद्रोह तथा दलित राजनीति का वर्तमान समय में क्या तर्क है। गेल ओमवेट ने अपनी इस कृति में महिला उत्पीड़न की ऐतिहासिक व्याख्या की है जिसमें सीता और ताराबाई के सामाजिक संघर्ष को दर्शाया गया है।

बद्रीनारायण की पुस्तक **कांशीराम (2014)** में उतरप्रदेश के दलित आंदोलन के घटनाक्रम को वर्णित करता है। कई समीक्षकों ने इसे कांशी राम पर लिखी सर्वोत्तम कृति माना है। चूंकि लेखक स्वयं दलित उत्थान के विचारों के प्रति जागरूक है इसलिए पुस्तक में उनकी सकारात्मकता दिखती है। कांशीराम के जीवन संघर्ष, अम्बेडकर के विचारों को कांशीराम के द्वारा राजनीति में आजमाना, बामसेफ से बीएसपी के बनने तक में कांशी राम के योगदान को इस पुस्तक में बहुत जीवंत तरीके से वर्णित किया गया है। दलित राजनीतिक चिंतन के व्यावहारिक पहलुओं को समझने में इस पुस्तक से काफी मदद मिलती है।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा लिखित पुस्तक 'गांधी और अछूतों का उद्धार' (1945) में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में गांधी जी का अछूतों के प्रति विचार एवं डॉ. अम्बेडकर के स्वयं के विचारों अभिव्यक्त किया गया है। डॉ. अम्बेडकर कांग्रेस एवं गांधी दोनों को दलितों के सच्चे हितैषी नही मानते थे।

अम्बेडकर : ए क्रिटीकल स्टडी (1973) डब्ल्यू, एन कुबेर इसके लेखक है। लेखक ने डॉ अम्बेडकर के जीवन का गहराई से विश्लेषण किया है। इस पुस्तक में डॉ. अम्बेडकर के जीवन में शिक्षा प्राप्त करने नौकरी में आई कठिनाईयों के साथ उनके जीवन की चुनौतियों एवं संघर्षों का अध्ययन है। इस संघर्ष में डा0 अम्बेडकर

ने समाज में व्याप्त भेदभाव, जातिवाद, धर्म, वर्ग–भेद, परंपरावादी रुढ़िवादी विचारधारा दलितों की शिक्षा एवं उनके अधिकारों के लिए किए गये प्रयास को लेखक द्वारा दर्शाया गया है।

वेलेरियन रोड्रीग्स द्वारा लिखित **द इशेंशियल राइटिंग्स ऑफ अंबेडकर (2002)** इस पुस्तक में लेखक ने धर्म लोकतंत्र जाति वर्ग के बीच संबंधों को बताया है। गांधी, रानाडे और जिन्ना के विचारों से अम्बेडकर के विचारों की तुलना की है। इसमें हिन्दू धर्म के गीता धर्म ग्रंथ (कृष्ण) के विचारों का डॉ अम्बेडकर द्वारा किया गया विश्लेषण है। जातिवाद की समस्या एवं उसके व्यवहार को रोकने के विचार का भी लेखक ने वर्णन किया है।

डॉ. अम्बेडकर के प्रशासनिक विचार (2004) के लेखक **डॉ धर्मवीर** ने मानवीय अधिकारों के संदर्भ में प्रशासनिक व्यवस्था की व्याख्या की है। लेखक ने डॉ अम्बेडकर के कानून मंत्री हुए, समाज के लिए अधिकारो की जो मांग की उसे भी वर्णित किया गया है। साथ ही यह भी बताए कि नौकरशाहों को कैसा व्यवहार अपनाना चाहिए।

डॉ. अम्बेडकर : एक प्रखर विद्रोही' (2004). डी.आर. जाटव द्वारा लिखित पुस्तक है। इस पुस्तक में डॉ अम्बेडकर को बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्तित्व बताया गया है। उन्हें संविधानविद क्रांतिदृष्टा व साहित्यकार के रुप में दर्शाया गया है। लेखक ने डॉ अम्बेडकर को दलित आंदालन का प्रणेता एवं शिक्षा का अग्रदूत माना है।

'अंबेडकर और दलित आंदोलन' (2016) पुस्तक के लेखक **आनंद तेलतुम्बडे अनुवादक कृष्ण सिंह** है। समसामयिक दलित आंदोलन पर लिखी हुइ यह किताब दलितों से जुडे. सभी मुददों की व्याख्या करता है। डॉ अंबेडकर के विचारों को दलितों के वर्तमान सामाजिक राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

क्रिस्टोफ जेफरले द्वारा लिखित पुस्तक **इंडियाज साइलेंट रिव्योल्यूशन–द राइज ऑफ द लोअर कास्टस इन इंडिया (2003)** है। उतर भारत के पिछडी एवं

दलित जातियों में आई राजनीतिक जागरूकता , उनकी राजनीतिक भागीदारी एवं सता के विकल्प बनने के प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। लेखक ने समाजवादी पार्टी एवं बहुजन समाज पार्टी जैसे पिछडी और दलित पार्टियों के उदभव का बहुत गहन एवं वास्तविक विश्लेषण किया हैं। स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस के प्रभुत्व वाली राज्य उत्तर प्रदेश में पार्टी के विरूद्ध कैसे कृषक, पिछडी एवं निम्न जातियां अपने को राजनीतिक रूप से मोबिलाइज करने लगी थी। यह जातीय आंदोलनों पर लिखी हुई प्रमाणिक पुस्तक हैं।

'दलित पैंथर :भूमिका एवं आंदोलन' (2017) डॉ. शरण कुमार लिंबाले द्वारा रचित पुस्तक है। उतर अंबेडकर काल में महाराष्ट्र में डॉ अंबडेकर के अनुयायियों का वैचारिक रूप से विफल होने एवं दलित राजनीति का विखंडन दलितों में हताशा भर रहा था। साठ के दशक के पढे लिखे दलित युवा दलितों पर हो रहे अत्याचार से क्षुब्ध एवं आक्रोशित थे। अमेरिकी ब्लैंक पैंथर आंदोलन से प्रभावित दलित पैंथर आंदोलन अपनी आक्रमकता के लिए बहुत लोकप्रिय हुआ। लेखक स्वयं दलित पैंथर के सदस्य थे। इस के कारण उन्होने महाराष्ट्र की तत्कालीन दलित आंदोलन का बहुत ही सजीव चित्रण किया है।

'भारत में दलित सामान्य लक्ष्य की खोज' (2011) सुखदेव थोरात, अनुवाद विजय कुमार पंत यह पुस्तक अखिल भारतीय तथा राज्य स्तर पर हुए मानव विकास के विभिन्न अध्ययनों तथा तत्संबंधित सामाजिक एवं आर्थिक संकेतकों के संदर्भ में भारत के दलितों की प्रस्थिति प्रस्तुत करती है। इसके साथ ही यह उन प्रक्रियाओं एवं परिवर्तनकारी शक्तियों की विस्तृत जानकारी प्रदान करती है जो दलितों को समाज की मूलधारा से अलग कर उनकी वर्तमान उपेक्षणीय व महत्वहीन स्थिति के लिए उतरदायी है। लेखक ने डाटा संकलनों के साथ इस पुस्तक को बहुत उपयोगी बना दिया है।

'अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर' (2005) जिसकी लेखिका **गेल आमवेट** है। **अनुवाद डॉ. पूरनचंद टंडन** ने किया है। डॉ अंबेडकर की जीवनी पर आधारित यह पुस्तक उनके संघर्ष गाथा का वर्णन है। संविधान निर्माता के रूप मे डॉ अंबेडकर

दलितों के ही नही संपूर्ण भारत के नेता हैं। लेखिका ने डॉ अंबेडकर को तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियों में दलितों के अधिकार के लिए संघर्ष करना पडा यह दर्शाया है।

'डॉ. अंबेडकर सामाजिक विचार एवं दर्शन' (2015) इस पुस्तक के **संपादक : डॉ नरेंद्र जाधव** है। लेखक ने पुस्तक में डॉ अंबेडकर के मूल भाषणों का संकलन किया है जिनमें सामाजिक विचारों का उल्लेख है।

नवीन दलित आंदोलन एवं वर्तमान नेतृत्व (2017) इस पुस्तक के लेखक **डॉ इफतखार अहमद अंसारी** है। इस पुस्तक में लेखक ने दलित राजनीति की वर्तमान दुर्दशा, दलितों, पिछड़ों, महिलाओं एवं अल्पसंख्यकों की चुनौतियों एवं दलितों की नई पीढियों द्वारा दमन का किए जा रहे विरोध का अध्ययन है। शिक्षित दलित युवा दमन के बावजूद अपने हक की लडाइ लड़ रहे हैं।

प्रो. विवेक कुमार द्वारा लिखित **पुस्तक इंडियाज रोअरिंग रिव्योल्यूशन दलित एर्स्सन एंड न्यू होरिजोन्स (2002)** है। इस पुस्तक में भारतीय लोकतंत्र के राजनीतिक समाजशास्त्र के साथ–साथ दलित आंदोलनों तथा नेताओं का अध्ययन हैं। बहुजन समाज पार्टी के बनने में उत्तर प्रदेश की सामाजिक पृष्ठभूमि की भी चर्चा की गई है। ब्राह्मणवाद या मनुवाद के खिलाफ कांशीराम द्वारा स्थापित बसपा की नीतियों की विवेचना की गयी है। उत्तर प्रदेश के दलित आन्दोलन का गम्भीर एवं सूचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

रिसर्च पेपर्स एवं आर्टिकल्स

'Early Dalit Reforms in Maharastra: Contribution of Jyotiba Phule and Ambedkar' नामक शोध पत्र में लेखक ने ज्योतिबा फुले एवं अम्बेडकर द्वारा किए गए दलित सुधारों पर प्रकाश डाला है। लेखक ने यह दर्शाया है कि महाराष्ट्र में हुए दलित चेतना जागृति एवं सुधारों का अन्य राज्यों जैसे छत्तीसगढ, पंजाब एवं बंगाल पर भी असर पड़ा एवं इन राज्यों में भी कुछ व्यक्तियों ने दलित चेतना जागृति करने का कार्य किया। लेखक ने महाराष्ट्र में हुए कई आंदोलनों का जिक्र किया है किंतु उन्होंने उन आंदोलनों एवं सुधारों पर ध्यान केंद्रित किया है जो

दलित विषयों से जुड़े थे। इन विषयों में भी फुले एवं अंबेडकर के प्रयासों पर खास ध्यान केंद्रित किया गया है। लेखक ने फुले के **'सत्यशोधक समाज'** नामक संगठन के स्थापित करने के प्रयासों से लेकर उनके द्वारा किए गए कुछ उच्च जातियों के संगठनों की कमियों को उजागर करने तक की घटनाओं का जिक्र किया है। लेखक ने अंबेडकर द्वारा की गई महाराष्ट्र में दलित चेतना के जागृति के प्रयासों का वर्णन किया है। लेखक ने अंबेडकर के कुछ प्रमुख कदमों का विस्तार से वर्णन किया है, जैसे बहिष्कृत हितकारिणी सभा (1924) की स्थापना, कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह, गोलमेज सम्मेलन में भागीदारी, पूना पैक्ट एवं 'महार वतन' में संशोधन इत्यादि का लेखक ने बखूबी वर्णन किया है।

Dalit Movement in Mainstream Sociology के लेखक **गोपाल गुरू** ने समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत दलित आंदोलन उदारवादी विचारकों को आकर्षित करता है। इस दलित आंदोलन की जड़ हिन्दू समाज में प्रचलित भेदभाव है जो छुआछूत के पूर्वाग्रह से ग्रस्त है। लेखक गोपाल गुरु ने बताया कि हाल के दो दशकों में बहुत सारे समाजशास्त्री भी दलित आंदोलन के अध्ययन की तरफ आकर्षित हुए हैं इसमें भारतीय एवं विदेशी समाजशास्त्री भी शामिल हैं। इन्होंने आगे बताया कि अंबेडकर जयंती के शताब्दी वर्ष के उपरांत अम्बेडकर, दलित राजनीति एवं दलित आंदोलन पर बहुत सारे अध्ययन प्रकाशित हुए हैं एवं इन प्रकाशनों से इन मुद्दों से संबंधित साहित्य में बढ़ोतरी हुई है। गोपाल गुरु लिखते हैं कि दलित आंदोलन के अध्ययन से संबंधित कई विचारधाराएं है जिनमें अंतर कर पाना संभव है। इन्होंने कहा कि ऐसी ही एक विचारधारा उदारवाद की है जो यह मानती है कि एक प्राचीन हिंदू प्रतिकारी परंपरा है। जिसमें उंच जाति के लोग शामिल है जो पूर्वाग्रहों से ग्रसित हैं एवं दलितों को उनके खिलाफ विरोध करने को प्रेरित करते हैं। इस तरह के विचारक दलित विरोध का कारण कट्टर रूढ़िवादी हिंदू परंपरा को मानते हैं। उनका कहना है कि उदारवादी समाजशास्त्री भी ये मानते हैं कि दलित आंदोलन का उद्देश्य केवल स्थापित व्यवस्था में दलितों की सामाजिक, आर्थिक, नागरिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में उनकी उपस्थिति को बढ़ाना है, इन्हीं विचारधारा के कारण उन्होंने (उदारवादी समाजशास्त्री) कुछ नये संकल्पनाओं का ईजाद किया है।

जैसे 'सामाजिक गतिशीलता' (Social Mobility), सापेक्षिक वंचना (Relative Deprivation) एवं इन्हीं संकल्पनाओं के ढांचे में उन्होंने दलित आंदोलन के अध्ययन का प्रयास किया है। गोपाल गुरु के अनुसार वास्तविक रूप में अगर दलित आंदोलन को समझना है तो समाजशास्त्रियों को इन अवधारणाओं एवं संकल्पनाओं से बाहर निकलकर गहन सोच विकसित करने की आवश्यकता है एवं दलित आंदोलन को बिल्कुल सतह से समझने की आवश्यकता है।

Dalit Politics in Maharashtra लेख में लेखक **हरीश एस वानखेड़े** ने महाराष्ट्र में हालिया संपन्न हुए म्युनिसिपल एवं जिला परिषद के चुनाव परिणामों के आधार पर महाराष्ट्र में दलितों की भूमिका का विश्लेषण किया है। इन्होंने इस बात का अध्ययन किया है कि चुनाव परिणाम कैसे दलित जातियां अब पूर्ववर्ती धर्मनिरपेक्ष पार्टियों का साथ छोड़ कर उग्र दक्षिणपंथी पार्टियों के साथ जा रही हैं। इन्होंने चुनाव परिणामों के आधार पर यह बताया है कि दलितों के लिए महत्वपूर्ण मानी जाने वाली 'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया' नामक राजनीतिक पार्टी कैसे दलितों की आकांक्षाओं एवं आशाओं को पूरा करने में असफल हो रही है एवं इसका जनाधार चुनाव–दर–चुनाव कम होता जा रहा है। इन्होंने समाजवादी पार्टी एवं बसपा जैसी पार्टियों का उभार महाराष्ट्र की राजनीति में महत्वपूर्ण माना है। इन्होंने ऐसी पार्टी की अनुपस्थिती जो दलितों के हितों की पूर्ति कर सके एवं आर.पी.आई. के घटते जनाधार को कारण मानते हुए कहा है कि दलित एक विकल्प के रूप में महाराष्ट्र नव निर्माण सेना एवं शिवसेना की तरफ आकर्षित हो रहे है। इन्होंने निष्कर्ष यह बताया है कि महाराष्ट्र में ये चुनाव यह दर्शाते हैं कि दलित इस प्रजातांत्रिक व्यवस्था में ऐसे मंच की तलाश में है जो उनके हितों की पूर्ति कर सके। आगे इन्होंने कहा कि दलितों को शक्ति संरचना में अभी शिवसेना एवं महाराष्ट्र नव निर्माण सेना के माध्यम से हिस्सा तो मिल जा रहा है लेकिन ये दलित चेतना को जो उग्र एवं तीव्र सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन के लिए प्रेरित करता है को क्षति पहुंचा रहा है।

लोकसभा में दलितों की दमदार आवाज क्यों सुनाई नहीं देती लेखक **अरविंद कुमार** ने भारतीय संसद में अनुसूचित जाति के 84 सांसद लोकसभा में

चुनकर आते हैं। अनुसूचित जनजाति के 47 सांसद हैं। अगर 10 साल का पिछला रिकॉर्ड देखा जाए तो यह सांसद अपने समाज से जुड़े मुददे को संसद में नहीं उठाते है। उनमें कौशल का अभाव है कि अपनी बात को किस प्रकार संसद में रखा जाए। ये सांसद सामाजिक न्याय से जुड़े जटिल मुद्दों को समझ ही नहीं पाते हैं। दलितों में से तेजतर्रार मुखर एवं विशिष्ट लोगों को विभिन्न राजनीतिक पार्टियों द्वारा टिकट न देना इसकी बड़ी वजह है। लोकसभा की शक्तियां ज्यादा होती है खासकर वित्तीय मामलों को लेकर जिनसे जनहित में नीतियों का निर्माण होता है। देश की अर्थव्यवस्था से संबंधित निर्णयों में दलित समाज के सांसदों की सहभागिता बहुत कम है। क्योंकि लोकसभा देश के वित्तीय संसाधनों पर अपना नियंत्रण संसदीय समितियों द्वारा करती है जिसमें अनुसूचित जाति के सांसदों की संख्या कम है नहीं के बराबर। संसद के बनाए कानून को यही संसदीय समितियां लागू भी करती हैं। दलित सांसद समितियों में बोलने एवं बैठकों में भाग लेने से भी कतराते हैं। इस आर्टिकल द्वारा लेखक दलित सांसदों के कर्तव्यहीनता एवं उनकी उदासीनता को व्यक्त करते है।

अम्बेडकर ज्योतिबा फुले को अपना गुरु क्यों माना? के लेखक **सिद्धार्थ ने** आधुनिक भारत के शूद्रों–अतिशूद्रों, महिलाओं और किसानों के मुक्ति संघर्ष के पहले नायक ज्योतिराव फुले हैं। डॉ अम्बेडकर ने गौतम बौद्ध और कबीर के बाद ज्योतिबा फुले को अपना तीसरा गुरु माना है। इन्होंने अपनी किताब 'शूद्र कौन थे' महात्मा फुले को समर्पित किया है एवं लिखा है कि जिन्होंने हिंदू समाज की छोटी जातियों को उच्च वर्णों के प्रति उनकी गुलामी की भावना के संबंध में जागृत किया और जिन्होंने सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना को विदेशी शासन से मुक्ति पाने से अधिक महत्वपूर्ण बताया उस आधुनिक भारत के महान शूद्र महात्मा फुले की स्मृति में सादर समर्पित। फूले ने जातिभेद विवेकानुसार (1865) में लिखा कि 'धर्मग्रंथों में वर्णित विकृत जाति–भेद ने हिंदुओं के दिमाग को सदियों से गुलाम बना रखा है। उन्हें इस जकड़न से मुक्त करने के अलावा कोई दूसरा महत्वपूर्ण काम नहीं हो सकता है। डॉ अंबेडकर ने अपनी चर्चित कृति 'एनीहिलेशन ऑफ कास्ट' में ठीक इसी सिद्धांत को आगे बढ़ाते हुए जाति व्यवस्था के स्त्रोत धर्मग्रंथों को नष्ट करने

का आह्वान किया है। ज्योतिबा फुले चिंतक लेखक और अन्याय के खिलाफ निरंतर संघर्षरत योद्धा थे। वे दलित बहुजनो, महिलाओं और गरीब लोगों के पुनर्जागरण के अग्रदूत थे। उन्होंने शोषण, उत्पीड़न और अन्याय पर आधारित ब्राह्मणवादी व्यवस्था की सच्चाई को सामने लाने और उसे चुनौती देने के लिए अनेक ग्रंथों की रचना की। उन्होंने ही किसानों की समस्याओं को दुनिया के सामने उजागर किया। 'किसान का कोड़ा' (1885) ग्रंथ में बताया कि किसानों को धर्म के नाम पर भट्ट, ब्राह्मणवाद का वर्ग, शासन–व्यवस्था के नाम पर विभिन्न पदों पर बैठे अधिकारियों का बड़ा वर्ग और सेठ साहूकारों का वर्ग लूटता–खसोटता है, असहाय सबकुछ बर्दाश्त करते हुए कुछ नहीं कर पाता है । ज्योतिबा फुले के बाद शूद्रों एवं महिलाओं के शोषण के खिलाफ उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले ने इस काम को बढ़ाया। फिर श्री साहू जी महाराज ने, उनके बाद डॉ अंबेडकर ने सामाजिक परिवर्तन की मशाल को ज्वाला में बदल दिया।

"Parties like SP, BSP & RJD Are Not the Future of Social Justice Politics in India, People are" के लेखक **गंगा सहाय मीणा** के द्वारा 2019 के आम चुनाव के परिणाम के बाद यह आर्टिकल लिखा गया है। इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी की अभूतपूर्व जीत एवं सपा, बसपा एवं राजद जैसी क्षेत्रीय एवं अस्मितावादी पार्टियों की बेहद निराशाजनक हार हुई। सामाजिक न्याय की अवधारणा पर आधारित इन पार्टियों की हार से क्या होगा, सामाजिक न्याय की राजनीति का भविष्य क्या है? समाजवादी पार्टी एवं बहुजन समाज पार्टी के महागठबंधन के बाद भी उनका प्रदर्शन काफी निराशाजनक रहा। बिहार में भी राष्ट्रीय जनता दल फेल रहा। जिसके पीछे दो स्पष्ट कारण नजर आते हैं पहला, वोटर्स को सामाजिक न्याय की राजनीति पर विश्वास नहीं रहा। दूसरा, सामाजिक न्याय पर आधारित पार्टी एवं उनके नेताओं के साथ गंभीर समस्या है जिसके परिणाम अब सामने आ रहे हैं। ये पार्टी एवं नेता खुद को सामाजिक एजिटेशन के मुद्दे से दूर कर लिए हैं। बसपा में आंतरिक लोकतंत्र नही है कमोबेश सामाजिक न्याय पर आधारित सभी पार्टियों का यही हाल है।

महिला आंदोलन और बाबा साहेब अंबेडकर के विचार दृष्टि के लेखक **डॉ मुख्त्वार सिंह,**ने इस आर्टिकल में यह बताया है कि डॉ अंबेडकर ने भारत में जाति की समस्या और महिलाओं की समस्या को जोड़ कर देखा है। आधुनिक महिला आंदोलन 1950 के दशक में यूरोप में शुरू हुआ, माना जाता है कि भारत में भी महिला आंदोलन लगभग इसी समय शुरू हुआ। भारतीय सामाजिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक है, पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का स्थान दोयम दर्जे का है। डॉ अंबेडकर ने 1916 में कोलंबिया यूनिवर्सिटी में एक पेपर प्रस्तुत किया जिसका शीर्षक था **'भारत में जातियां–संरचना, उत्पत्ति और विकास'** इस पेपर में उन्होंने लिखा कि जाति की मुख्य विशेषता अपनी जाति में ही विवाह करना है, कोई अपनी इच्छा से किसी से भी विवाह नहीं कर सके इसलिए प्रेम करने पर भी रोक लगाई गई। भारत में प्रतिलोम विवाह की अनुमति नहीं थी। भारत में महिलाओ से जुड़ी कुरीतियां जैसे सती प्रथा, बालिका विवाह, विधवा विवाह पर रोक, प्रेम पर रोक, आदि इसी से उत्पन्न हुई है। डॉ अंबेडकर ने नई व्याख्या की थी कि किसी भी समाज में स्त्री–पुरुष अनुपात लगभग समान रहता है, अतिरिक्त (सरप्लस) पुरुष व स्त्री होने पर अनुपात बिगड़ जाएगा। जिससे अवैध संबंध एवं जाति के बाहर विवाह संबंध बनेंगे। जाति संरचना की सफलता के लिए स्त्री पुरुष अनुपात समान रखनी होगी। अतिरिक्त औरतों की समस्या से बचने के लिए ही सामाजिक कुप्रथाएं विद्यमान हैं। डॉ आंबेडकर हिंदू कोड बिल द्वारा महिला को सशक्त करने के प्रयास किये।

पूना पैक्ट : दलित राजनीति में चमचा युग की शुरुआत ,अलख निरंजन, 14 सितंबर 2019, फारवर्ड प्रेस । कांशीराम का मानना था कि 24 सितंबर 1932 को गांधी ने अम्बेडकर को पूना पैक्ट के लिए बाध्य कर के अनुसूचित जातियों की राजनीति को चमचा युग में धकेल दिया। कांशीराम की एकमात्र किताब **'चमचा युग'** पूना पैक्ट के बाद की दलित राजनीति के चरित्र को सामने लाती है। पूना पैक्ट के दिन ही दलित समुदाय को अपने वास्तविक प्रतिनिधि चुनने के अधिकार से वंचित किया गया तथा हिंदुओं द्वारा नामित प्रतिनिधियों को दलितों पर थोपा गया। यह थोपे गए प्रतिनिधि हिंदुओं के चमचे के रूप मे कार्य करने के लिए मजबूर हैं।

दलितों के हित से इनका कोई मतलब नहीं है। 1956 तक अम्बेडकर भी पूना पैक्ट के दुष्परिणाम से वाकिफ हो गये थे। 'गांधी और अछूतों का उद्धार' 'कांग्रेस एवं गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया' एवं 'राज्य और अल्पसंख्यक में पूना पैक्ट पर डॉ अंबेडकर के विचारों का विस्तृत उदाहरण दिया है।

हमारे देश में दलित शब्द के इस्तेमाल से कौन डरता है? के लेखक **दिलीप सी. मंडल** कहते हैं कि दलित एक आंदोलनात्मक शब्द है, यह शब्द दलितों ने खुद को दिया है, इसमें सामूहिकता और विद्रोह दोनों ध्वनियां हैं। इस शब्द पर बैन लगाने की जगह, सरकार और पूरे समाज को जाति मुक्ति की दिशा में बढ़ना चाहिए। दलित शब्द में गत्यात्मकता है,यानि यह एक डायनेमिक अवधारणा है, जहां से आगे बढ़ना शब्द की व्याप्ति में ही है। कोई जब खुद को दलित कहता है तो इसमें उसके उत्पीड़ित होने की स्वीकृति के साथ इस स्थिति से मुक्ति की चाहत भी दर्ज है। इस आर्टिकल के लेखक सोशल मीडिया पर सक्रियता दिखाते हुए दलित युवाओं को नई दिशा प्रदान करते हैं।

साहब कांशीराम और बहुजन आंदोलन इस आर्टिकल के लेखक **सतविंदर मदारा** ने लिखा है कि कांशीराम का जन्म पंजाब के दलित परिवार में हुआ था। जब उन्होंने पढ़कर नौकरी की तब उन्होंने महाराष्ट्र में डॉ अंबेडकर के संघर्ष एवं विचार को जान पाया। उस समय की दलित पार्टी का हाल देखकर उन्होंने स्वयं लोगों को संगठित करने का कार्य शुरू कर दिया। 6 दिसंबर 1978 को बामसेफ, 1981 में डी एस 4 एवं 1984 में बहुजन समाज पार्टी का गठन किया। 1993 में समाजवादी पार्टी को समर्थन देकर बसपा और सपा की सरकार बनी। 1996 में हुए लोकसभा चुनाव में कांशीराम ने बसपा को राष्ट्रीय पार्टी के तौर पर महाराष्ट्र, जम्मू–कश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में मान्यता प्राप्त कर बसपा को राष्ट्रीय पार्टी का दर्जा दिलाया। कांशीराम का मानना था कि मजबूत नहीं मजबूर सरकार बहुजन के हित में कार्य करेगी। अपनी संगठनात्मक क्षमता के कारण 80 के दशक में बहुजन आंदोलन को ऊंचाइयों पर पहुंचाया।

Nuances of Dalit Emancipation and Empowerment इस आर्टिकल के लेखक **Vinod Bakka** ने इस शोध पत्र में दलितों की वास्तविक सशक्तिकरण की विधियों एवं एप्रोचेज को दर्शाया गया है। दलितों को सशक्त करने की आवश्यकता के पीछे जो ऐतिहासिक भेदभाव है उसको मिटाने के लिए क्या सही कदम उठा रहे हैं? ऐसा तो नहीं कि दलितों का दमन करने वाले ही आज सशक्त हो रहे हैं। राजनीतिक प्रतिनिधित्व देकर दलितों की अन्य सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक समस्याओं का हल हो जाएगा। दलितों के जीवन स्तर में सुधार उन्हें मानवीय गरिमा प्रदान कर एवं समाज के सभी लोगों के एक हित एवं सहजीविता की सोच द्वारा ही दलितोत्थान संभव है।

दलित राजनीति में हिंदुत्व का हस्तक्षेप मे **बद्री नारायण** इस आर्टिकल के लेखक कहते हैं कि कांशीराम एवं बहुजन आंदोलन में दलितों की कुछ जातियों का उत्थान हो पाया। अभी भी बहुत सी दलित जातियां जो राजनीति और भागीदारी से अछूती रही हैं, भारतीय जनता पार्टी उनको अपना वोटर्स बना रही है। भाजपा एवं राष्ट्रीय स्वयं संघ के संगठन का जमीनी स्तर पर गहरा कनेक्ट है। कनेक्ट बनाने के दो तरीके हैं, एक तो उनकी आइडेंटिटी को महत्व दीजिए, एवं उनके इतिहास को जोड़िए। इन जातियों को संसदीय राजनीति में जगह देना। भाजपा और आरएसएस ने दोनों कार्य किए। 2014 के बाद से लगातार बसपा का दलित आधार कमजोर हुआ है क्योंकि भाजपा वैसे दलितों को जोड़ने में सफल हुई जिसे बसपा नहीं जोड़ पाई।

दो पाटों में फंसे दलित आर्टिकल के लेखक **हरीश एस. वानखेडे** है। लेखक कहना चाहते हैं कि समकालीन राजनीति में डॉ अंबेडकर को अपना बनाने की सभी राजनीतिक पार्टियों में होड़ सी मची हुई है। ताकि वे ज्यादा से ज्यादा दलित हितैषी पार्टी दिख सके। ये दल डॉ अंबेडकर की राजनीतिक विरासत को कब्जाने की कोशिश में लगे हैं। 2017 में बेंगलुरु में आयोजित अंबेडकर और सामाजिक न्याय के विषय पर कर्नाटक सरकार द्वारा एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। जिसमें 300 बुद्धिजीवियों ने भाग लिया इस उम्मीद से **'बेंगलुरु घोषणा पत्र'** तैयार किया गया कि उससे समकालीन दलित राजनीति को एक नई

प्रगतिशील दृष्टि प्राप्त हो सके। तेलंगाना सरकार ने पहला दलित यूनिवर्सिटी खोलने की घोषणा की है। दलित राजनीति में उत्तर प्रदेश की बहुजन समाज पार्टी एवं महाराष्ट्र की रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया कुछ खास प्रभाव नहीं जमा पा रही है। बसपा ने भले ही डॉ अंबेडकर को केंद्रीय राजनीति में स्थापित कर दिया है। लेकिन स्वयं उनकी विचारधारा का त्याग करके एक जाति विशेष पर टिक गई है। महाराष्ट्र में आरपीआई एवं दलित राजनीति धीरे–धीरे मर रही है। महाराष्ट्र में भाजपा ऐसे दलित नेतृत्व को बढ़ा रही है जो आरएसएस के इशारे पर सक्रिय होते हैं । स्वतंत्र अंबेडकरवादी राजनीति हाशिए पर उपेक्षित पड़ी है।

संजय जोठे द्वारा लिखित **भारत का भविष्य और अम्बेडकर** इस आर्टिकल में लेखक डॉ अंबेडकर के बारे में यह कहना चाहते हैं कि उनको केवल संविधान निर्माता एवं समाज सुधारक की एक छवि में बांधना उनके व्यक्तित्व को बहुत कम करने जैसा है। अंबेडकर सर्वप्रथम एक आर्थिक चिंतक हैं जिन्होंने भारत में सामाजिक और आर्थिक शोषण को सबसे अधिक गहराई से समझाया। वे हिंदू धर्म सुधारक नहीं बल्कि एक नया धर्म देने वाले बने। उन्होंने बुद्ध के प्राचीन धर्म को अपने क्रांतिकारी दृष्टि में तपाकर उसमें दलितों के अनुकूल सुधार किए। जिसमें पारलौकिक और रहस्यमय कुछ भी नहीं है। फुले, कबीर, अंबेडकर का दर्शन, हिंदू दर्शन से बिल्कुल भिन्न है।

इन साहित्यों में डॉ अंबेडकर के जीवन उनके विचार, विचारों की प्रासंगिकता एवं जीवन की संघर्ष गाथा का उल्लेख मिलता है। उनके द्वारा किए गए प्रयासों एवं आंदोलनों से वर्तमान समय में दलितों की स्थिति में सुधार आया। डॉ अंबेडकर ने सर्वप्रथम सामाजिक सुधारों एवं हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के प्रयास द्वारा अस्पृश्यों को अधिकार दिलाने का प्रयत्न किया। जब इन सामाजिक प्रयासों द्वारा भी हिन्दुओं ने अस्पृश्यों को मानवीय अधिकार देने लायक नहीं समझा और दलितों के विरुद्ध अत्याचार एवं दमन होता रहा तब डॉ अंबेडकर ने अंग्रेजी सरकार से डिप्रेस्ड क्लास को राजनीतिक अधिकार देने के लिए दलीलें पेश की। डॉ अंबेडकर हिन्दू व्यवस्था को बदलकर बौद्ध धर्म पर आधारित समतामूलक समाज का निर्माण करना चाहते थे। इस शोध प्रबंध में सर्वप्रथम

महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस विषय को किसी भी साहित्य में तुलनात्मक ढ़ंग से विश्लेषित नही किया गया है। इस शोध प्रबंध में डॉ अंबेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार एवं प्रभाव, महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का अध्ययन, दलित आंदोलन में क्या–क्या खामियां है, दलित पार्टी एवं दलित नेतृत्व की विफलताओं का अध्ययन किया गया है। हिन्दू राष्ट्रवाद एवं दक्षिणपंथी विचारधारा ने दलित आंदोलन की कमियों का लाभ लेते हुए दलित आंदोलन को कमजोर कर दिया है। डॉ अंबेडकर के मूल विचारों की प्रासंगिकता इस दौर में सबसे ज्यादा है क्योकि दलितों में जो मध्यम वर्ग है, जो बुद्धिजीवी वर्ग है उन्हें ही बाकि के दलितों का उत्थान करना है। डॉ अम्बेडकर के प्रबुद्ध भारत का निर्माण में इन वर्गो की भूमिका महत्वपूर्ण है। डॉ अम्बेडकर इस वर्ग पर सबसे ज्यादा विश्वास करते थे। इस शोध में इन मौलिक बातों का विश्लेषण किया गया है।

शोध प्रश्न

- डॉ अम्बेडकर के विचारों एवं आन्दोलन का क्या प्रभाव पड़ा ?
- क्यों दलित राजनीति की मुख्यधारा में नही आ पाए?
- बौद्ध धर्म दलितों में आंदोलनात्मक स्वरूप क्यों नहीं प्राप्त कर पाया और दलितों को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से क्यों नहीं जोड़ पाया?
- उत्तर प्रदेश में दलितों की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक विकास हेतु महाराष्ट्र की तरह क्यों प्रयास नहीं किया गया ?
- अम्बेडकर के सदृश्य परवर्ती दलित नेता दलितों को वैचारिक रूप से नेतृत्व देने में क्यों विफल रहे?

शोध उद्देश्य

इस शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- डॉ अम्बेडकर के सामाजिक विचारों का अध्ययन करना
- राजनीतिक विचारों का अध्ययन करना
- महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आन्दोलन पर डॉ अम्बेडकर के सामाजिक व राजनीतिक विचारों के प्रभाव का अध्ययन करना
- महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना
- दलित आन्दोलन एवं राजनीति का भविष्य एवं चुनौतियों का अध्ययन करना

शोध परिकल्पना

- डॉ अम्बेडकर के दलित आन्दोलन का भारत के दलित समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।
- दलितों को संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा शैक्षणिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से सशक्त किया गया है।
- बौद्ध धर्म के प्रभाव से दलितों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध में ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक, तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है। साथ ही अध्ययन की सामग्री संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से जानकारी एक्त्र करने का प्रयास किया गया है।

प्राथमिक स्रोतों के रूप में बुद्धिजीवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं शोधार्थियों से उनके मंतव्य एवं जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया हैं। द्वितीयक स्रोत के रूप में प्राचीन एवं मध्ययुगीन इतिहास की पुस्तकों के अतिरिक्त दलित राजनितिक चिंतको अम्बेडकर, फुले, पेरियार, कांशीराम एवं अन्य समकालीन चिंतकों से सम्बंधित विभिन्न पुस्तकों, शोध–प्रबंधों, पत्र पत्रिकाओं, जर्नल, इन्टरनेट, एवं अन्य साधनों का प्रयोग किया गया है।

अध्यायों का सारांश

प्रस्तुत शोध का शीर्षक ' डॉ अंबेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों का प्रभाव : महाराष्ट्र एवं उतरप्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन' है। यह शोध सात अध्यायों में विभाजित है। जिसमें अध्यायों का विभाजन निम्न शीर्षक के अनुसार किया गया है।

अध्याय प्रथम, **'परिचय'** है। प्रथम अध्याय में शोध विषय का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। दलित आन्दोलन एवं डॉ अम्बेडकर का परिचय है। इस अध्याय में भारत में दलित आंदोलन के प्रादुर्भाव, प्रसार एवं दलित आंदोलन के बारे में संक्षिप्त परिचय दिया गया है। महाराष्ट्र में सर्वप्रथम दलितों में चेतना का संचार पाया गया। जातिगत दमन, हिन्दू ब्राहमणी वर्ण व्यवस्था के अंर्तगत दलितों की स्थिति पशुओं से भी बदतर थी। औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी शासनकाल में सरकारी नियमों के कार्यांवयन से दलितों के अंदर अपने अधिकार के प्रति जागरूकता आइ। शिक्षा एवं सैन्य सेवा में भर्ती के कारण दलितों मे से कई महापुरूषों एवं समाज सुधारकों का जन्म हुआ। जोतिबा फुले एवं डॉ अम्बेडकर का दलितों को सशक्त करने में उनका योगदान एवं प्रयास अभूतपूर्व है। डॉ अम्बेडकर एक दलित होने के कारण स्वयं दलितों के समस्या से ग्रसित थे। अस्पृश्य होने के कारण बाल्यकाल से ही उन्हें सामाजिक प्रताड़ना एवं उत्पीड़न को झेलना पड़ा था।

अध्याय द्वितीय – 'डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार एवं प्रभाव', इस अध्याय में उन सभी सामाजिक विषयों का विश्लेषण किया गया है जिनपर डॉ अम्बेडकर ने अपने विचार दिए है। जो भारतीय समाज में विद्यमान थे। वर्णव्यवस्था,

जातिव्यवस्था, जाति उन्मूलन के उपाय, शिक्षा पर विचार, डॉ अंबेडकर द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए किए गए प्रयास एवं बौद्ध धर्म पर उनके विचारों का अध्ययन किया गया है। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के उपायों का भी वर्णन किया गया है।

अध्याय तृतीय– 'डॉ. अम्बेडकर के राजनीतिक विचार एवं प्रभाव 'प्रस्तुत अध्याय डॉ अंबेडकर द्वारा भारतीय परिप्रेक्ष्य में जो विचार हैं एवं उसके प्रभाव का अध्ययन है। राष्ट्रवाद, लोकतंत्र, जाति, वर्ग और लोकतंत्र, लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्तों पर उन्होने जो विचार दिए हैं उसका वर्णन है। डॉ अंबेडकर को संविधान निर्माण की जिम्मेदारी दी गई ताकि समाज के प्रत्येक वर्ग को अधिकार संपन्न किया जाए। संविधान को लचीला होने के साथ साथ कठोर प्रावधानों का समन्वय बनाया। इकहरी नागरिकता, मजबूत केंद्र की व्यवस्था, मौलिक अधिकार, राज्य के नीति निर्देशक तत्व एवं अन्य प्रावधानों द्वारा भारतीय संविधान का निर्माण किए। राजनीतिक विचारों के प्रभाव में संवैधानिक आरक्षण से दलितों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा ।

अध्याय चतुर्थ– 'महाराष्ट्र में दलित आंदोलन' महाराष्ट्र भारत के विकसित राज्यों मे सें एक है। इस प्रदेश की अपनी सामाजिक सांस्कृतिक विशेषता है। महाराष्ट्र का भौगोलिक स्थिति देखें तो इसमें तीन क्षेत्र आते हैं। कोंकण, पश्चिमी महाराष्ट्र तथा पूर्व में पश्चिमी खानदेश आते हैं। गुजराती तथा कन्नड़भाषी जिलों के साथ औद्योगिक, राजनीतिक तथा समाजशास्त्रीय दृष्टि से ब्रिटिश भारत का यह सबसे प्रभावशाली प्रदेश था। 1885 में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन मुंबई में हुआ तथा यहां से कांग्रेस के कई नेता निकले। यह वह क्षेत्र तथा जिसमें से सबसे अधिक जुझारू तथा आमूल परिवर्तनवादी सामाजिक जन आंदोलनो का उदभव हुआ। जोतिबा फूले का सत्यशोधक समाज का आंदोलन उनमे से एक था।[11] मुंबई में ही प्रारंभिक पूंजीवाद तथा श्रमिक वर्ग संगठन बनने की शुरूआत हुइ। महाराष्ट्र में ही डॉ बी आर अम्बेडकर के नेतृत्व में एक मजबूत दलित आंदोलन उभर रहा था। जिसका फैलाव संपूर्ण भारत में हुआ। इस अध्याय में महाराष्ट्र में दलित

[11] आमवेट गेल, दलित और प्रजातांत्रिक कांतियां, पेज–134

आंदोलन की भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालखंडों का क्रमवार विश्लेषण किया गया है। डॉ अंबेडकर को केंद्र मानते हुए, महाराष्ट्र के दलित आंदोलन का विभाजन निम्न तीन चरण में किया गया हैः –1. डॉ अम्बेडकर के पूर्व महाराष्ट्र में दलित आंदोलन 2. डॉ अम्बेडकर एवं दलित आंदोलन (जीवनकाल) 3. डॉ अम्बेडकर के बाद के काल में दलित आंदोलन की दशा एवं दिशा ।

अध्याय पंचम– 'उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन' यह अध्याय मेरे शोध का पांचवा अध्याय है। जिसमें उत्तर प्रदेश की भूत वर्तमान एवं भविष्य में दलित आंदोलन के उभार एवं घटनाओं का अध्ययन किया गया है। उत्तर प्रदेश भारत देश की सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य है। यहां की दलित जनसंख्या 21.9 प्रतिशत है।[12] जनसंख्या के हिसाब से दलित अपेक्षाकृत ज्यादा है जो कि किसी भी आंदोलन के लिए आवश्यक शर्त है। जब महाराष्ट्र में डॉ अम्बेडकर अपने अधिकारों के प्रति दलित समुदाय को जागरूक कर रहे थे उस समय भी यहां के दलित अपने को डॉ अम्बेडकर से जोड़ते थे उनके द्वारा प्रकाशित दैनिक पत्र पत्रिकाओं का अध्ययन किया जाता था। संत रविदास, कबीर उतर प्रदेश की धरती पर जन्म लिए। इन भक्त कवियों ने जातिप्रथा, वर्ण व्यवस्था पर आधारित सामाजिक व्यवस्था पर दोहे लिखे, लोकोक्तियॉ बनाई। सामाजिक समानता, प्रेम और सौहार्द्र की बात कही। 1920 के दौरान लगभग पूरे देश में दलित शक्तियॉ अपने को सुदृढ कर रही थी जैसेः–आदि धर्म पंजाब में, नामशूद्र आंदोलन बंगाल में, आदि द्रविड़ आंदोलन तमिलनाडू में आदि हिन्दू आंदोलन उत्तर प्रदेश के कानपुर, आगरा के जिलो में संगठित हो रहा था। उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का अध्ययन करने में संपूर्ण दलित आंदोलन को तीन खंण्डों में विभाजित किया जा सकता है। डॉ अम्बेडकर को केन्द्र मानकर कालखंण्डों का निम्न विभाजन किया गया हैः– 1. डॉ अम्बेडकर के पूर्व का दलित आंदोलन 2. डॉ अम्बेडकर के जीवन काल के दौरान उतरप्रदेश में दलित आंदोलन एवं डॉ अम्बेडकर का प्रभाव 3. अम्बेडकरोतर कालखंड– जिसमें कांशीराम के जीवनी का अध्ययन, बीएसपी का गठन, बहुजन राजनीति एवं वर्तमान दलित आंदोलन की दशा एवं दिशा का अध्ययन है।

---

[12] जनगणना 2011

अध्याय षष्ठम् – 'महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन' सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक एवं बौद्ध धर्म के प्रभाव के आधार पर दोनों राज्यों के दलित आंदोलन का विश्लेषण किया गया है। शोध सर्वे का विश्लेषण भी इस अध्याय में किया गया है।

अध्याय सप्तम – निष्कर्ष, 'दलित आंदोलन की भावी दिशा' का अध्ययन किया गया है। दलित राजनीति पूरे देश में अभी वैचारिक, संगठनात्मक और नेतृत्वगत संकट से जुझ रही है। दलित समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा खास कर युवा वर्ग तेजी से हिंदुत्ववादी संगठनों की ओर आकर्षित हो रहा है। रिसर्च सर्वे में यह बात प्रकाश में आई कि दलित आंदोलन का केंद्र राजनीति को बना दिए जाने से दलित आंदोलन दिग्भ्रम का शिकार हो गया है। दलितों में शिक्षा की उपेक्षा हुई है जबकि डॉ अम्बेडकर ने शिक्षा को दलित जातियों को संगठित और संघर्षरत करने का माध्यम माना था। बौद्ध धर्म के मूल तत्वों को आत्मसात करने एवं इसके आधार पर समाज को पुनर्गठित करने के बजाए बुद्धिज्म को राजनीतिक प्रतीक मात्र बना दिया गया। दलित पार्टियों में व्याप्त व्यक्तिवाद और नायक पूजा की प्रवृति अम्बेडकर चिंतन के खिलाफ है। दलित आंदोलन में नए नेतृत्व कसमसाहट है।

अध्याय–द्वितीय

डॉ. अंबेडकर के सामाजिक विचार एवं प्रभाव

अध्याय–द्वितीय

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार एवं प्रभाव

डॉ अम्बेडकर के सामाजिक विचार न सिर्फ उनके गहन अध्ययन का परिणाम हैं, बल्कि इन विचारों को उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों एवं अपने परिवेश एवं घटनाक्रमों के विश्लेषण के जरिए विकसित किया है। वे परंपरागत भारतीय समाज की विषमता एवं अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के स्वयं भुक्तभोगी थे साथ ही वे ऐसे समाज के परिकल्पक भी थे जो स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व जैसे उद्दात मानव मूल्यों पर आधरित हो। अतएव उन्होंने भारतीय समाज की विसंगतियों की गहन पड़ताल की और इसके लिए इतिहास, नृविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र जैसे विविध अनुशासनों का सहारा लिया। उनका लेखन एक सोद्देश्य लेखन था, जिसका लक्ष्य था न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था की स्थापना करना। भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता, असमानता, अन्याय और अंधविश्वास की पड़ताल करने के लिए उन्होंने भारतीय समाज की जाति एवं वर्ण व्यवस्था, लैंगिक भेदभाव, धर्म, दर्शन आदि का ऐतिहासिक एवं समसामयिक तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म विश्लेषण किया और अत्यंत सारगर्भित रुप में जनमानस के सम्मुख प्रस्तुत किया। डॉ अम्बेडकर ने न सिर्फ गंभीर अध्येता के रुप में भारतीय समाज के बारे में अपने विचारों को प्रस्तुत किया बल्कि एक संविधान निर्माता एवं देश के प्रथम विधि मंत्री के रुप में सामाजिक न्याय और लैंगिक समानता सुनिश्चित करने की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। डॉ अम्बेडकर का विचार बहुत ही व्यापक और विस्तृत था। उनपर बौद्ध दर्शन तथा पश्चिमी चिंतकों का प्रभाव था। वे समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व को सर्वोपरि मानते थे । डॉ अम्बेडकर के अनुसार हर एक व्यक्ति को समाजिक गतिविधियों में इस तरह हिस्सेदार या भागीदार बनाया जाए, ताकि उसकी सफलता में उसे स्वयं अपनी सफलता और उसकी विफलता में अपनी विफलता दिखाई दें।[1]

[1] बाबासाहेब अम्बेडकर संपूर्ण वांग्मय, खंड–1, पेज– 70–71

फ्रेंच रिव्योल्यूशन से लेकर अभी तक स्वतंत्रता सामाजिक व्यवस्था के आवश्यक लक्षणों के बारे में कोई मतभेद नहीं हैं । किसी भी सामाजिक व्यवस्था के कई लक्षण होते हैं लेकिन दो तत्व अनिवार्य हैं, पहली यह हैं कि समष्टि में व्यक्ति का समावेश होता हैं और समाज का लक्ष्य उस व्यक्ति को बढाना तथा उसके व्यक्तित्व का विकास करना बन जाता हैं। समाज व्यक्ति से ऊपर नहीं होता और यदि व्यक्ति स्वयं को समाज के अधीन मान ले तो यह यही एहसास दिलाता हैं कि व्यक्ति को समाज की अधीनता में अपनी बेहतरी का आभास हैं।[2] दूसरी यह कि समाज के सदस्यों के बीच सामाजिक धरातल पर स्वतंत्रता, समानता तथा भाईचारे को महत्व दिया जाना चाहिए।

डॉ अम्बेडकर ने राष्ट्र निर्माण के लिए राजनीतिक सत्ता के बजाय संरचनात्मक परिवर्तन को ज्यादा महत्व दिया।[3] और उन्होंने अपने सामाजिक आंदोलन के अन्तर्गत समाज के सभी उपेक्षित वर्गो जैंसे– अस्पृश्य समाज, आदिवासी, अल्पसंख्यक एवं महिलाओं के अधिकारों के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष किया। इन सभी समाजों के लिए समता, समानता, सामाजिक न्याय से इतर विशिष्ट अधिकारों का प्रयोजन के लिए अम्बेडकर ने स्व प्रतिनिधित्व की नींव डाली।[4] जातिगत स्वार्थ से वशीभूत भारत में बहुसंख्यक लोगों को सत्ता, संसाधन एवं अन्य अधिकारों से वंचित कर दिया गया हैं। डॉ अम्बेडकर के व्यक्तित्व में वैज्ञानिक मस्तिष्क तथा मानववादी हृदय था। वे मानववादी मूल्यों के कट्टर समर्थक थे। प्राचीन हिन्दू समाज व्यवस्था जो कि असमानता पर आधारित हैं इस व्यवस्था में स्वतंत्रता, समता, प्रेम, सदभावना, ज्ञान, तार्किकता का कोई मूल्य नहीं हैं जिसे डॉ अम्बेडकर सदैव अनुचित मानते थे। डॉ अम्बेडकर ने हिन्दू समाज में व्याप्त असमानता को समझने के लिए सारे हिन्दू धर्म ग्रन्थों, उपनिषदों, सुक्तियों का अध्ययन किया एवं विश्व के अन्य धर्मों इसाई तथा मुस्लिम से तुलनात्मक अध्ययन भी किया। हिन्दू धर्म में व्याप्त कमजोरियों को व्याख्यायित भी किए एवं उनके

---

[2] बा.अ.सं.वा. खंड–6 पेज–123

[3] कुमार विवेक, प्रजातंत्र में जाति, आरक्षण एवं दलित, पेज–57

[4] वही

निराकरण के उपाय भी बताएं। उनके द्वारा लिखे गए अनेक ग्रंथों से डॉ अम्बेडकर की हिन्दू धर्म के प्रति असंतुष्टता स्पष्ट दिखती हैं ।

वर्ण व्यवस्था

हिन्दू समाज संगठन का मूलाधार वर्ण व्यवस्था हैं। डॉ अम्बेडकर की दृष्टि में यह व्यवस्था अव्यवहारिक हैं। उन्होंने इस व्यवस्था की उत्पत्ति का सूक्ष्म अध्ययन किया। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में तीन वर्ण व्यवस्था का वर्णन मिलता हैं। हिन्दू इस व्यवस्था को श्रम विभाजन का आधार मानते हैं जिसे वे गुण कर्म पर आधारित मानते हैं लेकिन सबसे बड़ी विडंबना यह हैं कि यह वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित हैं। वर्ण व्यवस्था का वर्णन गीता में भी मिलता हैं। डॉ अम्बेडकर ने अपने शोध से यह निष्कर्ष निकाला कि गीता में किसी नवीनता का प्रतिपादन नहीं किया गया। यह सांख्य दर्शन का अनुकरण हैं।[5] वर्ण व्यवस्था में श्रम विभाजन व्यक्ति की स्वेच्छा एवं स्वभाविक गुणों पर आधारित नहीं हैं। डॉ अम्बेडकर ने यह कहा कि वर्ण व्यवस्था में केवल श्रम विभाजन ही नहीं होता है वरन श्रमिकों का भी स्थायी विभाजन हो जाता हैं। हिन्दू समाज में जो व्यक्ति जैसा व्यवसाय करता हैं उसे वैसे ही ऊंच अथवा निम्न स्थान दिया जाता हैं। यहां तक कि ऊंच नीच पारिवारिक संपति के रूप में समझी जाती हैं, जो कि वर्ण व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष हैं।[6] एक व्यक्ति जिस परिवार में पैदा होता हैं उसे उसी का व्यवसाय अपनाना पड़ता हैं एवं यह प्रगति के सारे रास्ते बंद कर देती हैं। वर्ण व्यवस्था में श्रम विभाजन व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं पंसद पर आधारित नहीं हैं। इसके अंतर्गत व्यक्ति की भावनाओं एवं प्राथमिकताओं के लिए कोई स्थान नही है। पूर्वजों के व्यवसाय धंधें को ही करने के लिए बाध्य किया जाता है। डॉ अम्बेडकर यह मानते थे कि वर्ण व्यवस्था आर्थिक प्रगति तथा औधौगिक विकास के लिए भी अनुपयुक्त है क्यों कि इन क्षेत्रों में लगातार परिवर्तन होते रहते है।[7] इन परिवर्तनों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपना कार्य चुनने के लिए स्वतंत्र है एवं व्यक्ति के पसंद के अनुसार कार्य मिलता है तो वह मन भी लगायेगा और कार्य क्षमता भी प्रदर्शित करेगा। वर्ण व्यवस्था में व्यक्ति

---

[5] जाटव डी आर, डॉ अंबेडकर का समाजदर्शन, पेज–56

[6] अंबेडकर,एनिहिलेशन आफ कास्ट, पेज–19–20

[7] बा.अ.सं.वां. खंड–13, पेज–6

की स्वेच्छा का हनन किया जाता है। उसके प्राकृतिक गुणों को सामाजिक नियमों के अधीन बना दिया जाता है जिससे व्यक्ति अपना व्यक्तित्व खो बैठता है। प्लेटो जैसे महान विद्वान ने वर्ण व्यवस्था को आदर्श सामाजिक ढांचा माना किन्तु यूनान के लागों ने वर्ण व्यवस्था को एक वास्तविक वैधानिक सामाजिक संरचना नहीं माना। पुरूषसूक्त ही ऐसा उदाहरण है जिसमें वर्ण व्यवस्था को कानूनी जामा पहनाकर उसे वास्तविक बनाने का प्रयास किया और उसे प्राकृतिक माना। समाज के वर्ग के रूप में शूद्रों का प्रथम और एकमात्र उल्लेख ऋग्वेद के उन्नीसवें भाग में मिलता है।[8] जिसमें ब्रहमा द्वारा जन्मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का उल्लेख है। डॉ अम्बेडकर वर्ण व्यवस्था का गहन अध्ययन कर यह बताने की कोशिश करते रहे कि शूद्र क्षत्रिय है। जिसका उन्होंने अपनी रचना 'हू वेयर शूद्राज' में गहन विश्लेषण किया है। प्रो. राम शरण शर्मा जैसे इतिहासकारों ने इसे असत्य सिद्व करने का पूरा प्रयास किया है। शूद्रों के संबंध में एकमात्र प्रबंध रचना (1946) सुविख्यात भारतीय राजनीतिज्ञ डॉ अम्बेडकर की है। यह शुद्रो के उदभव के प्रश्न तक ही सीमित है। लेखक ने पूरी सामग्री अनुवादों से जुटाई है।[9] यहां आलोचनात्मक तरीके से प्रो. शर्मा डा अम्बेडकर पर आरोप लगाते हैं कि उन्होंने शूद्रों को उच्च वंश का सिद्ध करने का दृढ़ संकल्प लेकर अपनी यह पुस्तक लिखी है। व्यक्ति अपने में विलक्षण होता है जैसा कि डॉ अम्बेडकर ने प्लेटो के सामाजिक विचार की समीक्षा करते समय अपने ग्रंथ (एनिहिलेशन आफ कास्ट) मे माना है। मानव प्राणियों को चार कठोर वर्णो में विभाजित करना एक अप्राकृतिक तथा बनावटी कार्य है। अम्बेडकर ने वर्ण व्यवस्था को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं कि जैसा कि कई कृतियों–जाति का उन्मूलन, हिन्दुत्व का दर्शन, शूद्रों की खोज आदि से प्रमाणित है। उन्होंने उसका निषेध विशिष्ट अध्ययन एवं परीक्षा के आधार पर किया। चतुर्वर्ण व्यवस्था को रक्षक एवं रक्षित के रूप में भी व्याख्यायित किया गया है, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों वर्ण मिलकर शूद्र की रक्षा करते है जो उनकी सेवा करता है। किन्तु यदि रक्षक के बुरे कार्य से रक्षा का कोई प्रबन्ध नही है तो इसमें

---

[8] शर्मा रामशरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पेज–11
[9] वही

रक्षित व्यक्ति के हितों की हानि ही होगी।[10] जैसे– शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को मिलनी चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति को स्वरक्षा का अधिकार होना चाहिए।

डॉ अम्बेडकर ने वर्ण व्यवस्था को समाजशास्त्रीय ढंग़ से समझा और विश्लेषित किया और वर्ण व्यवस्था को किसी भी दृष्टिकोण से उपयुक्त नहीं माना। सामाजिक जीवन की सुव्यवस्था के लिए वर्ण विभाजन को भले ही उपयुक्त समझा गया हो, किन्तु कालांतर में उसका कोई सुनिश्चित स्वरूप और आदर्श नहीं रह पाया। उसका आधार रंग, चयन अथवा गुण माना गया किन्तु वह जन्मानुसार व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं योग्यता में सीमित हो गई। गुण कर्म की दृष्टि से वर्णो के आदर्श कर्तव्य तथा अधिकार सुरक्षित नहीं रह पाया,क्योकि सारी सत्ता, दिव्यता और कुशलता ब्रहमण वर्ण में ही मानी गयी जिनका उसके द्वारा दुरूपयोग किया गया। जिस के कारण सारा भारतीय समाज वर्ण विभाजन के स्थान पर जाति विभाजन की स्थिति में आ गया जिसके कारण हम सब ऊंच–नीच, भेद–भाव, अन्याय, शोषण एवं असमानता के शिकार हो गए और भारतीय समाज पिछड़ा ही रह गया।

विश्व के अन्य देशों में सामाजिक क्रांतियां हुई पर भारत जाति आधारित समाज में ही उलझ कर रह गया। वर्ण व्यवस्था अप्रसांगिक है। इस के सिद्वान्त में यह पूर्व कल्पना है कि लोगो को चार निश्चित वर्गो में बांटा जा सकता है। क्या यह संभव है? यह चतुर्वर्ण व्यवस्था प्लेटों के आदर्श की तरह लगता है। जिसमें प्लेटों ने लोगों को उन की प्रकृति के अनुसार तीन भागों में रखा था। श्रमिक, सैनिक और दार्शनिक, प्लेटों की सबसे बड़ी आलोचना यही होती है कि उन्होने वस्तु के समान मनुष्यों को बांट दिया जबकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विशिष्टता होती है। बिल्कुल यही कारण चर्तुवर्ण व्यवस्था पर भी सटीक बैठता है। प्लेटों इस बात को नहीं पहचान पाए कि एक ही व्यक्ति की सक्रिय प्रवृति में अनंत विविधता हो सकती है या उसमें प्रवृतियो का असंख्य योग हो सकता है। आधुनिक विज्ञान ने भी यह सिद्ध किया है कि व्यक्तियों को कुछ विशिष्ट वर्गो में निर्जीवों की तरह विभाजित कर देना, उनके प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित विचार का ही परिणाम है। अगर

---

[10] जाटव डी आर, डॉ अंबेडकर के समाजशास्त्रीय विचार, पेज–209

व्यक्तियों के गुणों का उपयोग करना है तो उनका वर्गो में विभाजन पूर्णतः असंगत होगा, क्योंकि व्यक्तियों के गुण और विशेषताएं एकदम विविध प्रकार के होते है। इसलिए जिस कारण से प्लेटो के गणराज्य की कल्पना असफल सिद्ध हुई, उसी कारण चातुर्वण्य व्यवस्था भी असफल होगी।

डॉ अम्बेडकर के अनुसार जो सामाजिक व्यवस्था स्वयं चार हजार जातियों में बंटे हो वहां चार वर्ण व्यवस्था कैसे संभव है। वर्ण व्यवस्था में दंड व्यवस्था भी पक्षपात पूर्ण है। स्त्रियों की स्थिति भी बहुत दयनीयं है। इसलिए वर्ण व्यवस्था मनुष्य एंव समाज में समानता तथा भाइचारे का प्रसार कभी नहीं कर सकता। गांधी जी जहां वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते थे क्योकि वह कर्म पर आधारित मानते थे, वहीं डॉ अम्बेडकर वर्ण व्यवस्था को एक ही समाज में रहने वाले शूद्रो अतिशूद्रों को कोई अधिकार नही देता उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीन वर्णो पर आश्रित बना देता है।

जाति व्यवस्था

डॉ अम्बेडकर ने भारत में जाति की उत्पत्ति का अध्ययन श्री एस घुर्ये (कास्टस एंड रेस इन इंडिया के लेखक 1932) के एक दशक पहले ही कर दिया था। एम एन श्रीनिवास, लुइस डयूमों ने अम्बेडकर के मत के साथ समान सोच भी रखा है। डॉ अम्बेडकर ने ए ए गोल्डनवाइजर के सेमिनार में कोलंबिया में 'कास्टस इन इंडियाः देयर मेकेनिज्म जेनेसिस एंड डेवेलपमेंट' पर अपना पहला लेक्चर 1913 में दे दिया था। जिसमें डॉ अम्बेडकर ने इंडियन कास्ट थ्योरी को एडवांस करने की बात कही थी।[11] सजातीय विवाह जाति को बनाए रखना जाति व्यवस्था का सबसे बड़ा कारण है।[12] डॉ अम्बेडकर ने जाति को क्लोजड क्लास कहा है। सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध आदि जाति व्यवस्था को मजबूत करने की ही कुप्रथाएं थी ताकि औरतें दूसरी जाति में विवाह न कर लें। वैसे ही विधुर पुरूषों के लिए नाबालिग लड़कियो से विवाह भी जाति प्रथा को बनाए रखने का एक प्रबल उपाय था। डॉ अम्बेडकर ने अपने द्वारा पठित लेख में बड़े ही स्पष्ट तरीके से कहा – मैं

---

[11] जेफरले क्रिस्टोफ, अंबेडकर एंड अनटचेब्लिटी, पेज–82

[12] वही

जाति जैसी संस्था की जटिलताओं के प्रति सजग हूं और मैं इतना निराशावादी नहीं हूं कि यह कह सकू कि यह पहेली अगम, अज्ञेय है क्योकि मेरा विश्वास है कि इसे जाना जा सकता है।[13] जाति की समस्या सैद्धांतिक और व्यवहारिक रूप से एक विकराल समस्या है। यह समस्या जितना व्यवहारिक रूप से उलझा हुआ है उतना ही इसका सैद्वान्तिक पक्ष इंद्रजाल है। यह ऐसी व्यवस्था है जिसके फलितार्थ गहन है। होने को तो यह एक स्थानीय समस्या है लेकिन इसके परिणाम बड़े विकराल है। जब तक भारत में जाति प्रथा विद्यमान है तब तक हिंदुओं में अंर्तजातीय विवाह और बाह्य लोगों से शायद ही समागम हो सके और यदि हिन्दू पृथ्वी के अन्य क्षेत्रों में भी जाते है तो भारतीय जांतपांत की समस्या विश्व की समस्या हो जाएगी। इस पंक्ति को डॉ अम्बेडकर ने अपने प्रथम लेख में केतकर को उद्धृत करते हुए लिखा था।[14]

जातितंत्र की विशेषताएंः– नृ–जाति विज्ञान के कुछ विद्वानों की परिभाषाएं

फ्रेंच विद्वान **एम. सेनार्ट** का सिद्वान्त– जाति व्यवस्था को एक ऐसी संकुचित संस्था बताते हैं जो प्रत्येक पक्ष में पैतृक है। इस संस्था का अधिकार क्षेत्र केवल अपने सदस्यों तक ही सीमित रहता है। कोई भी व्यक्ति समुदाय का विरोध नहीं कर सकता। यदि कोई बहिष्कार करे भी तो उसे बहिष्कृत करके सदस्यता सदा के लिए समाप्त कर दी जाती है ताकि वह जाति को दूषित न कर सके। सेनार्ट के बारे में डॉ अम्बेडकर ने कहा कि वह जाति को एक दूषित विचार के साथ जोड़ते है। दूषित विचार का जाति की उत्पति से कोई संबध नहीं है क्योकि ऐसे विचार का संबध केवल पुजारी वर्ग से है।[15]

सर रिज्ले के अनुसार – जाति व्यवस्था परिवारों का एक ऐसा समुदाय है जिसका एक सामान्य नाम तथा व्यवसाय होता है। डॉ अम्बेडकर ने इनके विचार को यह कहकर खंडित किया कि रिज्ले की परिभाषा में कोई नवीन बात नहीं है।

---

[13] बा.अ.सं.वा. खंड–1 पेज–17

[14] बा.अ.सं0वा.खंड–1, पेज–18

[15] जाटव डी आर, डा अंबेडकर का समाज दर्शन, पेज–49

नेसफील्ड के अनुसार – अर्न्तजातीय खान पान का न होना जाति व्यवस्था का कारण है। शादी से भी परहेज करना। डॉ अम्बेडकर ने खान पान की अनुपस्थिति को ही जाति का कारण मानने वाले नेसफील्ड को यह कहा कि यह अनुपस्थिति जातिवाद का परिणाम है न कि उसका कारण।

डॉ केतकर ने जाति की परिभाषा इस प्रकार दी है दो लक्षणों वाला जाति शब्द सामाजिक समूह (क) उसकी सदस्यता उन लोगों तक सीमित होती है जो जन्म से सदस्य होते हैं और जिनमें इस प्रकार जन्म लेने वाले लोग शामिल होते हैं (ख) कठोर सामाजिक कानून द्वारा सदस्य अपनी जाति से बाहर विवाह करने के लिए वर्जित किए गये हैं।[16] डॉ अम्बेडकर केतकर की परिभाषा का विश्लेषण करते हुए कहे हैं कि वह भारत के निवासी है, बल्कि उन्होंने विवेचनात्मक और पैनी दृष्टि से निष्पक्ष राय दी है जो जातिप्रथा के बारे में उनके अध्ययन के कारण हुआ है। उनकी परिभाषा विचारणीय है, क्योंकि उन्होने जातितंत्र का विश्लेषण जाति प्रथा के आधार पर किया है और अपना ध्यान केवल उन्हीं लक्षणों तक केंद्रित रखा है जो जातिप्रथा के अंतर्गत जाति के अस्तित्व में अनिवार्य है। डॉ केतकर के विचारों में थोड़ी भ्रांति है कि वह रोटी बेटी के व्यवहार में भेदभाव की बात कहते है। जब कि डॉ अम्बेडकर कहते है कि मूल बात एक ही है रोटी से भी परहेज है और बेटी व्यवहार पर पाबंदी लगाते है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि आप अपनी परिधि संकुचित कर लेते हैं । इस प्रकार ये दोनें लक्षण एक ही सिक्के के दो पहलू है मुख्य भाग तथा पृष्ठ भाग है।[17] डॉ अम्बेडकर के अनुसार सजातीय विवाह ही जात पांत का एकमात्र कारण है और जब जाति की मूल की बात होती है तो इसका अर्थ सजातीय विवाह प्रथा की क्रियाविधि के मूल से है।

भारत में विधि निर्माता जो अवतार कहलाते है ताकि आपातकाल में पापी समाज को सही दिशा दिखा सके। यही विधि निर्माता कानून और नैतिकता की प्रतिस्थापना करते है। भारत में विधि निर्माता के रूप में मनु और उनकी मनुस्मृति कुख्यात है। डॉ अम्बेडकर के अनुसार मनु ने जाति के विधान का निर्माण नही

---

[16] बा.अ.सं.वा. खंड–1, पेज–19
[17] बा.अ.सं.वा. खंड–1, पेज–20

किया और न वह ऐसा कर सकता है।[18] जाति प्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी। मनु तो जाति प्रथा के पोषक थे इसलिए उसने इसे एक दर्शन का रूप दिया परन्तु निश्चित रूप से हिन्दू समाज का वर्तमान रूप जारी नहीं रह सकता। समाज में प्रचलित जाति प्रथा को ही उसने संहिता का रूप दिया और जाति धर्म का प्रचार किया। जातिप्रथा का विस्तार और उसकी दृढ़ता इतनी विराट है कि यह एक व्यक्ति या वर्ग की पूर्णतता ओर बलबूते का काम नहीं हो सकता। तर्क में यह सिद्वान्त है कि ब्रहमणों ने जाति संरचना की।[19] यह प्रथा अपनी पूरी दृढ़ता के साथ केवल एक जाति अर्थात ब्राह्मणों में प्रचलित है जो हिन्दू समाज की संरचना में सर्वोच्च स्थान पर है और गैर ब्राह्मण जातियों ने इसका केवल अनुसरण किया, जहां इसके पालन में न तो उतनी दृढ़ता है और न ही संपूर्णता। यदि गैर ब्राह्मण जातियां इस प्रथा का अनुसरण करती है जैसा कि सर्वत्र देखा जा सकता है तो यह प्रमाणित करने की कोई आवश्ययकता नहीं रह जाती कि कौन सा वर्ग जाति व्यवस्था का जन्मदाता है।

जाति समस्या के सम्बन्ध में डॉ अम्बेडकर के अध्ययन के चार पक्ष है—

1. हिन्दू जनसंख्या में विविध तत्वों के सम्मिश्रण के बावजूद इसमें दृढ़ सांस्कृतिक एकता है।
2. जातियां इस विराट सांस्कृतिक इकाई अंग है।
3. शुरू में केवल एक ही जाति थी।
4. इन्हीं वर्गो में देखा देखी या बहिष्कार से विभिन्न जातियां बन गयी।

जाति व्यवस्था ने हिन्दुओं को बर्बाद किया है। हिन्दू समाज को चार्तुवर्ण्य के आधार पर पुनर्गठित करना असंभव है, क्योंकि वर्ण व्यवस्था रिसते हुए एक बर्तन की तरह है। उस आदमी की तरह है, जो नाक की एक सीध में दौड़ रहा है। यह अपने गुणों के कारण अपने को कायम रखने में अक्षम है। तथा इसमें जाति व्यवस्था के रूप में विकृत हो जाने की प्रवृति अंतर्निहित है। जब कि वर्ण का उल्लंघन करने

---

[18] बा.अ.सं.वा. खंड–1, पेज–29
[19] ब बा.अ.सं.वा. खंड–1, पेज–29

पर कानूनी रोक नहीं लगाती है।[20] हिन्दू समाज को ऐसे धर्म के आधार पर पुनर्गठित करना चाहिए, जिसमें स्वतंत्रता ,समानता और भातृत्व के सिद्वान्त को मान्यता दी जाय। इस लक्ष्य को पाने के लिए जाति और वर्ण के पीछे धार्मिक पवित्रता की भावना को नष्ट किया जाना चाहिए। जाति और वर्ण की पवित्रता केवल तभी नष्ट हो सकती, जब शास्त्रों की दिव्य सता को अलग कर दिया जाए।[21] डॉ अम्बेडकर ने वर्ण तथा जाति का पूर्णतः विरोध किया दोनो ही प्रथाओं में सामाजिक अन्याय तथा असमानता अन्तर्निहित है दोनों समाज के आर्थिक विकास में अवरोधक तत्व है। कुछ चितंको के अनुसार डॉ अम्बेडकर का हिन्दू धर्म सिद्धान्त में विश्वास था। हिन्दू धर्म के सिद्धान्त ईसाई और मुस्लिम धर्म के सिद्धान्तों की तुलना में कई गुणा समता के तत्व के लिए परिपोषक है। मनुष्य ईश्वर की संतान है इतने पर नही रुकते हुए वे सब ईश्वर के ही रूप हैं ऐसा बड़ा निर्भीकता से हिन्दू धर्म कहता है। जहां सब ईश्वर के ही रूप है वहां कोई उंच नीच नहीं इस तरह का भेदभाव करना संभव नहीं है। समानता का साम्रज्य स्थापित करने के लिए इससे बड़ा दूसरा आधार प्राप्त करना मुश्किल है।[22] हिन्दू धर्म की शक्ति जातिभेद और अस्पृश्यता के कारण लुप्त हुई। डॉ अम्बेडकर नियमबद्ध धर्म को नहीं चाहते थे लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह धर्म को नहीं मानते थे। वे एडमंड बर्क की भांति धर्म को समाज का आवश्यक अंग मानते थे।[23] सभ्य समाज एवं अच्छे सरकार का मूलाधार धर्म ही होता है। जब डॉ अम्बेडकर प्राचीन असभ्य रीति रिवाजों की आलोचना करते थे तो उनका तात्पर्य था मनुष्य को नवीन मूल्यों का अनुसरण करना चाहिए। उन्हें सिद्वान्त पर आधारित धर्म को ही ग्रहण करना चाहिए। ऐसा ही धर्म सबके लिए समान हो सकता है ।[24] हिन्दू धर्म में नवीन समाज की स्थापना के संदेश है लेकिन हिंदू समाज सुधारक स्वंय सही मार्ग को समझ नहीं पाते। डॉ अम्बेडकर ने हिन्दू समाज सुधारकों के लिए महत्वपूर्ण शब्द कहें कि तुम्हें अपने धर्म को एक सैद्वान्तिक आधार देना चाहिए एक ऐसा आधार जो स्वतंत्रता, समता भ्रातृत्व से मेल खाता हो। संक्षेप में, समाज सुधारको को प्रजातंत्र

---

[20] जाटव डी आर, डॉ अंबेडकर के समाजशास्त्रीय विचार ,पेज 36
[21] बा.अ.सं.वा. खंड–1, पेज–112
[22] कीर धनंजय,बाबासाहेब डॉ अंबेडकर का जीवन चरित, पेज–78
[23] जाटव डी आर, डॉ अंबेडकर का समाज दर्शन, पेज–65
[24] Ambedkar B.R., Annihilation of caste, page74

को आधार बनाना चाहिए। ऐसा धार्मिक सिद्वान्त जो स्वतंत्रता, समता एवं भ्रातत्व के अनुकूल हो। यह आवश्यक नहीं कि आप उन्हें विदेशी लोागों की सहायता से प्राप्त करें वे तो आपके उपनिषदों में ही मिल सकते है।[25] यह नवीन चेतना एंव आधार हिन्दू समाज में से जातीय भावनाओं का सरलता से अंत कर सकता है। स्पष्ट एव सीधे अर्थ में मौलिक परिवर्तन है अर्थात पूर्ण परिवर्तन।

डॉ. अम्बेडकर के जाति निर्मूलन के कारगर उपाय

जाति अपने को सजातीय परिधि में रखने वाला वर्ग है। भारत में जाति प्रथा निम्न वर्ग द्वारा उच्च वर्ग की नकल का प्रतिफल है। डॉ अम्बेडकर के अनुसार भारत में जातिप्रथा का अर्थ है समाज को कृत्रिम हिस्सों में विभाजित करना जो रीति–रिवाजों और सजातीय विवाह की विभिन्नताओं से बंधे हों। परिणाम स्पष्ट है कि सजातीय विवाह एक मात्र लक्षण है जो जातिप्रथा की विशेषता है।[26] आर्थिक सगठन के रूप में जातिव्यवस्था एक हानिकारक व्यवस्था है जो पेशे के पुनर्समायोजन की छूट न देकर अधिकतर बेरोजगारी फैलाती है। श्रम के विभाजन के रूप में जातिप्रथा में एक और गंभीर दोष है जातिप्रथा द्वारा उत्पन्न श्रम का विभाजन इच्छा पर आधारित विभाजन नहीं है। इसमें व्यक्तिगत भावना और वैयक्तिक वरीयता का कोई स्थान नहीं है इसका आधार पूर्व–नियति का सिद्धांत है।

डॉ अम्बेडकर इस बात के हिमायती रहे है कि सामाजिक व्यवस्था में बदलाव से ही प्रगति का पथ प्रशस्त होता है। जति तो एक धारणा है और एक मानसिक स्थिति है। अतः जातिव्यवस्था को नष्ट करने का अर्थ भौतिक रूकावटों को दूर करना नहीं है। इसका अर्थ विचारात्मक परिवर्तन से है। अम्बेडकर जाति व्यवस्था जैसी कुप्रथा का दोषी धर्म को मानते है जो मनुष्य के मन में डर पैदा करता है। डॉ अम्बेडकर अपने लोगों से यह अपील करते है कि वे धर्म की सता को चुनौती दें जैसा नानक और बुद्ध ने किया था। जातिवाद एवं छूआछूत का अंत करने के लिए डॉ. अंबेडकर ऐसे कार्यकर्ताओं को एकत्रित एवं बढ़ावा देने की बात करते हैं जो समाज सुधार को प्रिय एवं पवित्र कार्य मानते हों। डॉ अंबेडकर ने टाल्सटॉय के

---

[25] Ambedkar B.R., Annihilation of caste, page 76
[26] बा.अ.सं.वा. खंड–1, पेज–21

शब्दों को दोहराया कि 'केवल वे जो प्रेम करते है वे ही सेवा कर सकते है'। इसलिए किसी भी कार्य को सफल बनाने के लिए मानव भक्ति की अति आवश्यकता है। यह कार्य 'एक काम, एक लगन के सिद्वान्त के बिना संभव नहीं हो सकता।[27] भक्ति भाव, मानव प्रेम तथा कानून से ही जातिवाद एवं छुआछूत का अंत हो सकता है। एक ओर जहां महात्मा गांधी वर्ण व्यवस्था के समर्थक थे एवं जातिवाद एवं छुआछूत को मिटाने के लिए सर्वण हिन्दुओं के हृदय परिवर्तन की बात करते थे, और उन्हें ऐसा विश्वास था कि ऐसा जल्दी ही होगा। डॉ अंबेडकर इससे एकदम सहमत नहीं थे। गांधी जी ने राम की गरिमा पर बल देने के लिए अस्पृश्य जातियों के लिए – हरिजन' शब्द का प्रयोग सुझाया। तब डॉ अंबेडकर ने गांधी जी के बातों का खंडन करते हुए यह तर्क दिया कि टूटे–फूटे मकान की रंगाई–पुताई करके उसकी दुर्दशा तो छुपाई जा सकती है पर उसे सुधार नहीं कर सकते। डॉ अंबेडकर के अनुसार अस्पृश्यता की जड़े हिंदू वर्ण व्यवस्था में निहित है, अतः इस कुप्रथा को मिटाने के लिए वर्ण व्यवस्था का अंत जरूरी है।[28].

महात्मा ज्योतिबा फुले जिन्हें डॉ अंबेडकर अपना प्रेरणास्त्रोत मानते थे। उन्होंने भी जाति प्रथा छूआछूत का विरोध करते हुए ऐसी राजनीति का समर्थन किया जिसका ध्येय पददलित जातियों का उत्थान करना था जो शुद्रों और अतिशुद्रों को उच्च जातियों की दासता से मुक्त करा सके। अतः फुले ने हिदूं धर्म की उन पुराण कथाओं का खंडन किया जो वर्ण व्यस्था के क्रूर और अमानवीय नियमों का समर्थन करती थीं। फुले के अनुसार भारत में निम्न जातियों की स्थिति में जो थोडा बहुत सुधार हुआ था, वह ब्रिटिश सरकार की देन थी।

डॉ अम्बेडकर ने 1936 में प्रकाशित अपनी बहुचर्चित पुस्तक **'जाति का विनाश'** में भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद को राष्ट्रनिर्माण में मुख्य बाधा मानते हुए न सिर्फ इसके समर्थन में दिए जाने तर्को का विस्तार से खण्डन किया है बल्कि इस समस्या की समाप्ति के लिए सुधारवादियों, राष्ट्रवादियों और समाजवादियों के दृष्टिकोण की खामियों को भी समग्रता से उजागर किया है।

---

[27] Ambedkar B R, What congress and Gandhi have done to the untouchables.page 140
[28] गाबा ओ पी, राजनीति चिंतन की रुपरेखा, पेज– 340

अम्बेडकर के पश्चात दलित आंदोलन एवं दलित राजनीति की भूमिका एवं उसकी चुनौतियों के परीक्षण तथा समकालीन परिप्रेक्ष्य में हिन्दुत्व की राजनीति के उभार की परिघटना को विश्लेषित करने के लिए हम यहाँ डॉ अम्बेडकर के विचार के तीन तत्वों की संक्षेप में विवेचना करेंगे–

1. भारतीय समाज में शक्ति और प्रभुत्व का स्रोत
2. भारतीय समाज में बुद्धिजीवी वर्ग का स्वरुप और उसकी भूमिका
3. भारतीय समाज में जाति और धर्म का स्वरुप और उनका अंतःसम्बन्ध

भारतीय समाज में शक्ति और प्रभुत्व का स्रोत

डॉ अम्बेडकर के अनुसार किसी समय और किसी समाज में शक्ति और प्रभुत्व का स्रोत परिवर्तित होता रहता है। उन्हीं के शब्दों में 'किसी खास समय में या किसी खास समाज में शक्ति का स्रोत जब सामाजिक और धार्मिक दोनों है, तब सामाजिक सुधार और धार्मिक सुधार, दोनों को ही सुधार के आवश्यक स्वरुप के रुप में स्वीकार करना होगा।'[29] डॉ अम्बेडकर की रचनाओं और भाषणों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि उन्होंने समय और परिस्थति के परिप्रेक्ष्य में दलित वर्ग के हित में भारतीय समाज में शक्ति और प्रभुत्व के स्रोत को अलग–अलग रुपों में प्रस्तुत किया है। 8 अगस्त 1930 को अखिल भारतीय बहिष्कृत वर्ग कांग्रेस, नागपुर के अध्यक्षीय सम्बोधन में वे कहते हैं, 'सज्जनों, मैंने राजनीतिक शक्ति सुनिश्चित करने पर जोर दिया है। सम्भवतः मैंने इस पर काफी विस्तार से बल दिया, जितनी कि जरुरत नहीं थी। लेकिन अब मुझे इस अवसर पर अवश्य ही इस बात पर जोर देना चाहिए कि राजनीतिक शक्ति बहिष्कृत वर्गों की समस्याओं व तकलीफों के लिए कोई रामबाण नहीं साबित हो सकती। उनकी मुक्ति उनके सामाजिक उत्थान में निहित है। बहिष्कृत वर्गों को अपनी बुरी आदतों से अवश्य छुटकारा पाना चाहिए। उनके रहन–सहन के बुरे तरीकों में अवश्य ही सुधार होना चाहिए। जीने के अपने तरीके में बदलाव लाकर उन्हें अवश्य ही सम्मान और दोस्ती के काबिल बनना चाहिए। उन्हें अवश्य ही शिक्षित किया जाना चाहिए। सिर्फ साक्षर होने से काम नहीं

---

[29] अंबेडकर भीमराव, जाति का विनाश, फारवर्ड प्रेस, नई दिल्ली; पेज–55

चलने वाला है। उनमें से कईयों को शिक्षा के क्षेत्र में महान उँचाइयाँ हासिल करनी चाहिए, ताकि उनके साथ–साथ पूरा समुदाय भी ऊपर उठे। उनकी दयनीय संतुष्टि को भंग करने की अत्यधिक जरुरत है। उनमें वह दैवीय असंतुष्टि जगाई जानी चाहिए जो तमाम आत्मोन्नयन का स्रोत है। आखिर में बहिष्कृत वर्गों को उत्साहित करने और ऊर्जायुक्त करने की जरुरत है, ताकि वे अपने तमाम डरों से मुक्त हों और बाकी समुदायों की तरह अपने मानवाधिकारों का प्रयोग करें। हमारे हाथों में राजनीतिक शक्ति आ जाने भर से ये परिणाम अनुसरण नहीं करने लगेंगे।'[30] अम्बेडकर राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की सीमाओं को रेखांकित करते हुए और सामाजिक उत्थान और इसके क्रियान्वयन हेतु संगठनों के निर्माण की महत्ता पर बल देते हुए आगे कहते हैं, 'हमें अवश्य यह मानना चाहिए कि वह (राजनीतिक शक्ति) एक लक्ष्य का साधन भर है। मैं यह चेतावनी दे रहा हूँ, क्योंकि मैं इस घातक भूल से बचना चाहता हूँ। चूँकि हममें से कुछ लोग विधायिकाओं के सदस्य बन गए, इससे बहिष्कृत वर्ग अब बहिष्कृत नहीं रह जाएगा। यह सब सामाजिक उत्थान का काम है। यह काम अवश्य ही बहिष्कृत वर्गों के संगठनों द्वारा किया जाना चाहिए, जो कि स्वर्गीय गोखले के सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसायटी (भारत सेवक समाज) या स्वर्गीय लाला लाजपत राय के सर्वेंट्स ऑफ दी पीपुल सोसायटी (जन सेवक समाज) की तर्ज पर बनाए जाने चाहिए।'[31]

डॉ अम्बेडकर दलितों की मुक्ति उनके सामाजिक और धार्मिक उत्थान में मानते हुए भी सत्ता और प्रभुत्व के स्रोत के रुप में राजनीतिक सत्ता के महत्व को अपनी आँखो से ओझल नहीं होने देते। उन्होने वर्ष 1945 में 2 से 4 अक्तूबर के दौरान पूणे में आयोजित अखिल भारतीय अनुसूचित जाति फेडरेशन की कार्य समिति की सभा को संबोधित करते हुए कहा, 'मैं आपसे बार–बार कहता रहा हूँ कि जब तक हमें राजनीतिक शक्ति नहीं मिलेगी, हमारा सामाजिक और धार्मिक उद्धार नहीं होगा। हमें देश की सत्ता में भागीदार होना होगा। यदि हम सामाजिक बराबरी और आजादी पाकर सम्मान से जीना और प्रगति करना चाहते हैं, तो राजनीतिक सत्ता एक महत्वपूर्ण हथियार है तथा हमें इसकी भगवान् की तरह पूजा करनी

---

[30] जाधव, नरेन्द्र, डॉ अंबेडकर राजनीति, धर्म और संवैधानिक विचार, पेज–69
[31] वही, पेज–69–70

चाहिए।[32] डॉ अम्बेडकर भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म, सामाजिक स्थिति और राजनीतिक सत्ता को तो शक्ति और प्रभुत्व का स्रोत मानते हैं किन्तु आर्थिक हैसियत को इसका आधार मानते नहीं प्रतीत होते। खास कर वे समाजवादियों के इस तर्क को नहीं मानते कि आर्थिक असमानता भारत में सामाजिक विषमता का कारण है और सर्वहारा क्रांति के जरिए सम्पत्ति का समानीकरण देश में जातिप्रथा का उन्मूलन कर देगा। डॉ अम्बेडकर जातिप्रथा के उन्मूलन के प्रश्न पर समाजवादियों के दृष्टिकोण का खण्डन करते हुए यह कहते हैं कि 'भारत के समाजवादी यूरोप में अपने साथियों का अनुसरण करते हुए इतिहास की आर्थिक व्याख्या को भारत के तथ्यों पर लागू करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य एक आर्थिक प्राणी है। उसके क्रियाकलाप और आकांक्षाएं आर्थिक तथ्यों से परिबद्ध और संपत्ति सत्ता का एकमात्र स्रोत है। इसलिए वे इस बात का प्रचार करते हैं कि राजनीतिक और सामाजिक सुधार केवल भारी भ्रम है और संपत्ति के समानीकरण द्वारा आर्थिक सुधारों को अन्य हर प्रकार के सुधारों से वरीयता दी जानी चाहिए।'[33]

वस्तुतः वामपंथी जाति के मुद्दे को एक ऐसा मुद्दा मानते थे जो देश में समाजवाद की स्थापना से अपने आप हल हो जाएगा। कम्यूनिस्टों की मान्यता थी कि अम्बेडकर ऐसे छोटे मोटे मुद्दों को उठा कर लोगों को गुमराह कर रहे हैं। नेहरू और अन्य समाजवादी लोग भी जाति को गौण मानते थे। समाजवाद में जाति, लिंग और मौलिकता के आधार पर भेदभाव के अन्य स्वरुपों में आर्थिक आधार की प्राथमिकता इतनी गहरी थी कि भारतीय समाजवादियों के प्रति अम्बेडकर की आशंका बढ़ती चली गई।[34]

मार्क्सवादी अपने आर्थिक नियतिवाद के सिद्धांत के अन्तर्गत यह मानते थे कि किसी समाज में मनुष्य का व्यवहार और सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं का स्वरुप आर्थिक शक्तियों या प्रचलित आर्थिक प्रणाली के स्वरुप से निर्धारित होता है। मार्क्सवाद के अन्तर्गत भवन निर्माण का दृष्टांत देते हुए यह मान्यता रखी गई है कि समाज में प्रचलित उत्पादन– प्रणाली उसकी नींव या आधार की तरह है जिस

---

32 वही, पेज–186

33 बाबा साहब डॉ अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–1, पेज –62

34 ओमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–78

पर कानूनी और राजनीतिक ढांचा, धर्म, इत्यादि ऊपरी ढांचे या अधिरचना की तरह खड़े किए जाते हैं। सामाजिक विकास के दौरान उत्पादन–प्रणाली या आधार में जो परिवर्तन होते हैं, उनके परिणाम स्वरुप अधिरचना के सब हिस्सों में उनके अनुरुप परिवर्तन अपने आप हो जाते हैं।[35] डॉ अम्बेडकर ने 'जनता' में प्रकाशित (1936) अपने लेख में आधार और अवसंरचना के सिद्धांत पर प्रहार किया –

> "आधार इमारत नहीं है। आर्थिक संबंधों के आधार पर धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं की इमारत बनती है। ऐसी इमारत की वास्तविकता उसके आधार के अनुरुप होती है। यदि हम आधार बदलना चाहते हैं तो हमें उस बुनियाद पर बनी इमारत को गिराना होगा। इसी प्रकार यदि हम समाज के आर्थिक संबंधों को बदलना चाहते हैं तो पहले हमें विद्यमान सामाजिक, राजनीतिक और अन्य संस्थाओं को ध्वस्त करना होगा।"

आगे उन्होंने यह तर्क दिया कि कामगार वर्ग को सुदृढ़ करने के लिए धार्मिक दासता की मानसिकता को हटाना होगा।[36] डॉ अम्बेडकर ने ये पंक्तियाँ तब लिखी थीं जब रूसी क्रांति के बाद समूचे बौद्धिक जगत में मार्क्सवाद का परचम लहरा था और देश–विदेश के बड़े–बड़े अध्येता मार्क्सवादी दर्शन के प्रभाव से अभिभूत थे। ऐसी स्थिति में डॉ अम्बेडकर ने अपने जीवनानुभवों और अपने देश–काल की परिस्थितियों के सूक्ष्म पर्यवेक्षण से यह महसूस कर लिया कि अपने समय की अन्यायपरक सामाजिक परम्पराओं से बगैर टकराए, बिना उन धार्मिक मान्यताओं को ध्वस्त किए जो लोगों की चेतना को जकड़ कर अन्याय और शोषण के प्रति सहनशील बना देती हैं, बिना हासिए पर पड़े लोगों को राजनीतिक रुप से सशक्त किए, बगैर लोगों को शिक्षित और अपने हितों के प्रति जागरुक किए सर्वहारा की तथाकथित तानाशाही स्थापित करने के नाम पर निर्बल, शोषित और अशिक्षित जनता को वर्ग–संघर्ष के लिए प्रेरित करना नैतिक, रणनीतिक और व्यावहारिक तीनों दृष्टियों से अनुचित है। डॉ अम्बेडकर की यह मान्यता कि भारत

---

[35] पाश्चात्य राजनीतिक विचारक; ओम् प्रकाश गाबा; मयूर बुक्स, नई दिल्ली, पेज–302

[36] ओमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर; पेज–79

जैसे देश में धर्म, संस्कृति, सामाजिक परम्पराएँ और राजनीतिक सत्ता ही शक्ति एवं प्रभुत्व के स्रोत हैं और इनसे ही देश में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाएँ बनती है और व्यक्ति की हैसियत तय होती है। यह बात जितनी डॉ अम्बेडकर के काल में सही थी उतनी ही उनके पश्चात भी सही साबित हुई। यहाँ तक कि वर्ष 2019 के चुनावों में जिस प्रकार भाजपा ने हिन्दुत्व, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, सार्वजनिक जीवन में नैतिकता, राष्ट्रीय अस्मिता जैसे भावनात्मक मुद्दों को उठा कर भारी बहुमत प्राप्त कर लिया वह यह सिद्ध करता है कि देश के सभी दलित–बहुजन दल आम दलितों और पिछड़ों को वैकल्पिक सांस्कृतिक पहचान और बौद्धिक एवं नैतिक आधार देने में विफल रहे हैं।

भारतीय समाज में बुद्धिजीवी वर्ग का स्वरुप और उसकी भूमिका

डॉ अम्बेडकर ने एक न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था की स्थापना एवं जाति उन्मूलन के प्रश्न पर विचार करते हुए भारतीय समाज में शक्ति और प्रभुत्व के स्रोत को भी तलाश करने की कोशिश की। अपने अनुभव, अध्ययन और पर्यवेक्षण से उन्होंने यह महसूस किया कि किसी समय या समाज विशेष के परिप्रेक्ष्य में शक्ति और प्रभुत्व के स्रोत भी अलग–अलग होते हैं। उन्होंने दलित और बहिष्कृत वर्ग को जाति की जकड़बन्दी से मुक्त कराकर समान मानवीय धरातल पर लाने के लिए एक ओर उनके सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक उत्थान की बात की दूसरी ओर उन्होंने उनके अधिकारों की रक्षा के लिए राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति को भी आवश्यक बताया। अपने जीवन के आखिरी दौर में, यद्यपि इसकी पूर्व पीठिका उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही शुरु कर दी थी, वे बौद्ध धर्म के नैतिक, बौद्धिक और करुणाशील स्वरुप में एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के परिकल्पक बन गए थे जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूल्यों पर आधारित हो।

डॉ अम्बेडकर ने जन्म आधरित असमानता परक जाति व्यवस्था के गहन विश्लेषण से इस बात को लक्षित किया कि भारतीय जाति–प्रथा की जड़े धर्म समर्थित शास्त्रीय चिंतन पद्धति और रूढ़ सामाजिक परम्पराओं में गहरे धंसी हुई हैं

जिसे भारत की परम्परागत राजव्यवस्था अपनी स्थानीय शासन प्रणाली एवं धर्म शास्त्रों व स्मृतियों पर आधारित न्याय पद्धति के जरिए दृढ़ता से लागू करती आयी है। अम्बेडकर ने धर्म एवं न्याय के अंतःसम्बन्ध और भारतीय संदर्भ में धर्म की नकारात्मक भूमिका को उद्घाटित करते हुए लिखा, 'कानून और धर्म, दो ऐसे तत्व हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। कभी–कभी तो उनका चोली–दामन का साथ होता है और कभी–कभी वे एक दूसरे की खामियों को सुधारने का काम भी करते हैं। इन दोनों तत्वों में कानून का सम्बन्ध व्यक्ति से है जबकि धर्म निर्वैयक्तिक होता है। कानून क्योंकि व्यक्ति पर आधारित है, इसलिए अन्याय और असमानता का कारण हो सकता है। परंतु धर्म के साथ यह बात नहीं है, इसलिए वह निष्पक्ष रह सकता है। यदि धर्म निष्पक्ष होगा तो वह कानूनी असमानता को दूर करने की क्षमता रखता है। रोम में गुलामों के संबंध में ऐसा ही हुआ। इसी कारण धर्म के विषय में यह कहा जाता है कि वह मनुष्य को उद्वात बनाने के लिए है न कि उसे अवनत करने के लिए। हिन्दू धर्म एक अपवाद है। इसने अछूतों को अधःप्राणी बना दिया। इस अधःप्राणी की स्थापित व्यवस्था से और न ही अमानुषिकता से ही त्राण पाने का कोई उपाय दिखता है।'[37]

भारतीय संदर्भ में धर्म ने समाज के प्रभुत्वशाली–विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के हित में अन्याय और शोषण पर आधारित जिस चातुर्वर्ण्य व्यवस्था और जाति–प्रथा को जन्म दिया उसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूल्यों का समाज के कॉमन सेंस (आम मति) में कोई स्थान ही नहीं रह गया। धर्म के इस स्वरुप ने जहाँ बहिष्कृत–दलित वर्ग की अंतष्चेतना को अन्याय एवं विषमता स्वीकार करने के प्रति अनुकूल बनाने का काम किया वहीं सामाजिक परम्पराएँ, न्याय और शासन पद्धति इस दलित वर्ग द्वारा अपनी स्थिति में सुधार के किसी भी प्रयास को दमित करती रहीं। डॉ अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म दर्शन एवं भारतीय सामाजिक व्यवस्था के गहन ऐतिहासिक विश्लेषण और वंचित वर्गों के हित में चलाए गए अपने सभी आंदोलनों और राजनीतिक गतिविधियों के अनुभवों से यह समझ लिया कि भारतीय समाज में व्याप्त शोषण, उत्पीड़न, असमानता और अन्याय से दलितों की मुक्ति तभी

---

[37] बाबा साहब डॉ अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–9, पेज–147–148

सम्भव है जब वे राजनीतिक सत्ता प्राप्त करें, किन्तु भारतीय संदर्भ में जहाँ दलित इतनी संख्या में नहीं हैं कि वे वर्तमान संसदीय प्रणाली में अपने बूते बहुमत प्राप्त कर लें, उन्हें नैतिकता, बौद्धिकता और करुणा पर आधारित एक ऐसे धर्म को आत्मसात करना चाहिए जो आम मानवीय अंतःचेतना (कॉमन सेंस) को रुढ़ सामाजिक परम्पराओं से परे जाकर एक ऐसी सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक व्यवस्था अपनाने के लिए प्रेरित कर सके जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूल्यों पर आधरित हो। डॉ अंबेडकर ने धर्म के इस स्वरुप को बौद्ध धर्म में देखा जिसने अपने क्रांतिकारी स्वरुप में प्राचीन काल में प्रतिक्रांतिकारी ब्राह्मणवाद से टक्कर ली थी।[38] इस प्रकार डॉ अम्बेडकर ने एक ऐसी राजनीतिक पद्धति की परिकल्पना की जिसमें बौद्धिक और सांस्कृतिक गतिविधियों की अहम भूमिका थी ताकि भारत की बहुसंख्यक आबादी को ब्राह्मणवाद के मानसिक वर्चस्व से मुक्त करा कर नई व्यवस्था के लिए लामबंद किया जा सके।

डॉ अंबेडकर भारतीय समाज को जिस मूलगामी ढ़ंग से बदलना चाहते थे उसमें बुद्धिजीवी वर्ग की अहम भूमिका होनी थी। डॉ अंबेडकर ने अपनी पुस्तक जाति प्रथा–उन्मूलन में लिखा है कि इस बात को लेकर मतभिन्नता हो सकती है कि इतिहास का निर्माण किसी महान व्यक्ति के प्रयत्नों की बदौलत सम्भव है किन्तु इस बात में कोई संशय नहीं कि देश का बुद्धिजीवी वर्ग इतना प्रभावशाली होता है कि अपने देश का भविष्य संवार दे। उनके शब्दों में, 'चाहे आप इस सिद्धांत को माने या न माने कि एक महान पुरुष इतिहास का निर्माता होता है, लेकिन आपको इतना अवश्य स्वीकार करना होगा कि प्रत्येक देश में बुद्धिजीवी वर्ग सर्वाधिक प्रभावशाली वर्ग रहा है, वह भले ही शासक वर्ग न रहा हो। बुद्धिजीवी वर्ग वह है, जो दूरदर्शी होता है, सलाह दे सकता है और नेतृत्व प्रदान कर सकता है। किसी भी देश की अधिकांश जनता विचारशील और क्रियाशील जीवन व्यतीत नहीं करती। ऐसे लाग प्रायः बुद्धिजीवी वर्ग का अनुकरण और अनुगमन करते हैं। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि किसी देश का संपूर्ण भविष्य उसके बुद्धिजीवी वर्ग पर निर्भर होता है। यदि बुद्धिजीवी वर्ग ईमानदार, स्वतंत्र और निष्पक्ष है तो उस पर

[38] जाधव नरेन्द्र, डॉ. आंबेडकर राजनीति, धर्म और संविधान विचार, पेज–213–215

यह भरोसा किया जा सकता है कि संकट की घड़ी में वह पहल करेगा और उचित नेतृत्व प्रदान करेगा।'[39]

डॉ अंबेडकर के अनुसार भारतीय संदर्भ में ब्राह्मण जाति परंपरागत रुप से बुद्धिजीवी वर्ग का पर्याय रही है क्योंकि शिक्षा और ज्ञानोपार्जन का अधिकार केवल इसी जाति के पास था। किंतु एक बुद्धिजीवी वर्ग के रुप में ब्राह्मणों ने अपनी प्रज्ञा और बुद्धि का इस्तेमाल व्यापक समाज के हित में नहीं किया बल्कि वे सदा समाज में अपनी विशिष्ट स्थिति और विशेषाधिकारों को बनाए रखने के प्रति प्रयासरत रहे। अम्बेडकर की यह भी मान्यता है कि चूँकि ब्राह्मणों को परंपरागत रुप से शिक्षा का अधिकार था इसलिए उन्हें मनीषी या बौद्धिक मानलेना सही नहीं है। 1948 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'अछूत कौन थे और वे अछूत कैसे बने' की प्रस्तावना में वे लिखते हैं, एक शिक्षित और मनीषी व्यक्ति में जमीन–आसमान का अंतर है। पहला वह जो वर्ग चेतना से अभिभूत है और अपने वर्ग के हित के लिए ही मरता है। दूसरा निश्छल व्यक्ति वह है जिसके मन में वर्ग भेद की चेतना नहीं होती।'[40] इसी प्रकार अंबेडकर ने अपने निबंध 'ब्राह्मणवाद की विजय' में बौद्धिक और शिक्षित वर्ग में विभेद को रेखांकित करते हुए लिखा कि शिक्षित वर्ग कोई बौद्धिक वर्ग नहीं होता, हालांकि उसमें तर्क करने, समझने और सोचने की अपनी शक्ति होती है। इसका कारण यह है कि शिक्षित वर्ग की दृष्टि का आयाम और नई विचारधारा के प्रति उसका रवैया उस वर्ग के हित में नियंत्रित होता है जिससे वह पहले से जुड़ा होता है।[41] अम्बेडकर के अनुसार बौद्ध भिक्षुओं के लिए अपनी निजी सम्पति रखना निषिद्ध था जबकि ब्राह्मण अपनी वैदिक प्रणाली के अंतर्गत अपनी निजी सम्पत्ति रखने के लिए स्वतंत्र थे। इस अंतर ने बौद्ध भिक्षुओं और वैदिक ब्राह्मणों के आचरण और दृष्टिकोण को भी परिवर्तित कर दिया। इससे भिक्षुओं का वर्ग जहाँ बौद्धिक बन गया वहीं वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत ब्राह्मण एकमात्र शिक्षित वर्ग होने की वजह से अपनी बुद्धि और शिक्षा का प्रयोग जनसामान्य के हित में न कर अपनी

---

[39] बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–1, पेज–94
[40] बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–14, प्रस्तावना
[41] बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–7, पेज–212

स्वार्थसिद्धि में अपनी श्रेष्ठता और अपने विशेषाधिकारों को बनाए रखने में करने लगे।

इस प्रकार डॉ अंबेडकर ने बौद्ध धर्म के आधार पर जिस सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था की परिकल्पना की उसमें बुद्धिजीवी वर्ग को सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना था जो बौद्ध भिक्षुओं की तरह निजी सम्पति के मोह से मुक्त होकर स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए जनसामान्य को प्रेरित कर सके। इसीलिए अम्बेडकर ने दलितों को अपनी मुक्ति के लिए जो मूलमंत्र दिया उसमें उनके शिक्षित होने को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया था ताकि वे संगठित होकर नई व्यवस्था के निर्माण के लिए संघर्ष कर सकें। शिक्षा का व्यापक विस्तार ही किसी देश में बुद्धिजीवी वर्ग को जन्म देता है।

डॉ अंबेडकर के पश्चात बौद्धिक स्तर पर उनके विचारों को आगे बढ़ाने में महाराष्ट्र प्रांत में निसंदेह काफी अच्छा कार्य हुआ। बौद्ध धर्म, दलित कला, संस्कृति और साहित्य के विकास, विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं के निर्माण, दलित पैंथर आंदोलन और मराठवाड़ा विश्वविद्यालय का नामांतरण आंदोलन जैसी सामाजिक—सांस्कृतिक गतिविधियों ने पूरे देश में अम्बेडकर के विचारों और दलित चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। जहाँ तक राजनीतिक गतिविधियों का प्रश्न है 14 अप्रैल 1957 को अम्बेडकर के विचारों को आधार बना कर स्थापित हुई रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया ने शुरुआती सफलताओं के बावजूद जल्द ही व्यक्तित्वों के टकराव, राजनीतिक अपरिपक्वता और सत्ताधारी दल के प्रलोभन से फूट का शिकार होती चली गई। फिर भी महाराष्ट्र के दलित आंदोलन की जीवंतता और राजनीतिक गतिविधियों की विफलता ने अंबेडकर के बाद दलित राजनीति के दूसरे महत्वपूर्ण प्रणेता कांशीराम को अपनी भावी गतिविधियों के लिए महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि प्रदान की। कांशीराम ने रिपब्लकन पाटी ऑफ इंडिया के हश्र और इसके नेताओं की बिकाऊ प्रवृति से इस बात को भली—भाँति समझ लिया कि दलित समाज की राजनीति तब तक कारगर नहीं हो सकती जब तक कि इस समाज की गैर राजनीतिक जड़ों को मजबूत न किया जाए। कांशीराम का सम्बन्ध

चूँकि स्वयं सरकारी अधिकारी वर्ग से था अतएव वे इस बात को समझ सकते थे कि दलित और पिछड़े वर्ग के सरकारी अधिकारी और कर्मचारी अपनी शिक्षा की बदौलत न सिर्फ जातीय उत्पीड़न और भेदभाव के स्वरुप और कारणों को अच्छी तरह महसूस करने की स्थिति में है बल्कि वे इस स्थिति में भी हैं कि भावी दलित आंदोलन को बौद्धिक, सांगठनिक और आर्थिक आधार प्रदान कर सकें। अपने इसी विचार के दृष्टिगत कांशीराम ने शिक्षित कर्मचारियों के समक्ष 'पे बैक टू सोसायटी' का आह्वान किया और उन्हें डॉ अम्बेडकर की यह बात याद दिलायी कि शिक्षित कर्मचारी अपनी आमदनी का 20वाँ भाग अर्थात 5 प्रतिशत अपने समाज के उत्थान के लिए लगाएं। उन्होंने सर्वप्रथम पूना में कर्मचारियों को संगठित करने का निर्णय लिया जो दलित समुदाय के सबसे जागरुक और शिक्षित हिस्से थे। 1971 में उन्होंने एससी/एसटी/ओबीसी/मायनॉरिटी/कम्यूनिटी एम्प्लॉईज एसोसिएशन बनाने का निश्चय किया। आगे चल कर उन्होंने दिल्ली में कर्मचारियों के अखिल भारतीय संगठन 'बामसेफ' (ऑल इंडिया बैकवर्ड एंड मायनॉरिटी कम्युनिटी एम्प्लाईज फेडरेशन) की औपचारिक स्थापना की।

आरपीआई की विफलता से ही सबक लेकर कांशीराम ने यह भी महसूस किया कि दलित राजनीति तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि वह पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यक वर्गों को अपने दायरे में लाकर उच्च जातियों के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वर्चस्व के विरुद्ध व्यापक मोर्चा न बनाया जाए। यही वजह है कि उन्होंने डॉ अम्बेडकर के आंदोलन को ज्योतिबा फूले और शाहू जी महाराज जैसे पिछड़ी जाति के सामाजिक–सांस्कृतिक उन्नायकों के आंदोलनों के अनुक्रम में प्रस्तुत करने का प्रयास किया ताकि भारतीय समाज के उस बहुसंख्यक वर्ग को एकजूट किया जा सके जो हजारों वर्षों से ब्राह्मणवाद के उत्पीड़न और भेदभाव का दंश झेलती आई हैं। कांशी राम ने अपने एक सम्बोधन में कहा, 'मैंने गौर करना शुरु किया कि बाबा साहेब का मूवमेंट क्या था। 1920–22 से लेकर 1956 तक के मूवमेंट का मैंने अध्ययन करना शुरु किया। मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि बाबा साहब अम्बेडकर का मूवमेंट वही था, जो 1892 से लेकर 1922 तक छत्रपति शाहू जी महाराज का मूवमेंट था। छत्रपति शाहू जी महाराज ने जो मूवमेंट

चलाई, ब्राह्मणवाद/मनुवाद का जो विरोध किया, ब्राह्मणवाद से लोहा लिया, वही बाबा साहब ने किया। छत्रपति शाहू जी महाराज ने भी वही किया जो 1848 से लेकर 1891 तक महात्मा फुले ने किया। अपने समय में जो महात्मा फुले ने किया, शाहू जी महाराज ने किया और वही अपने समय में बाबा साहब अम्बेडकर ने किया।[42]

इस प्रकार कांशीराम ने बहुजन समाज पार्टी की स्थापना और इसकी राजनीतिक गतिविधियों की शुरुआत के पूर्व अपने बहुजन आंदोलन का गैर राजनीतिक आधार (बौद्धिक एवं पोषक संवर्ग और आंदोलन की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि) तैयार कर लिया था। कांशीराम ने उस सुशिक्षित दलित वर्ग को जिसे डॉ अम्बेडकर प्रबुद्ध भारत की स्थापना का सबसे बड़ा स्रोत मानते थे और जो अपने सामाजिक दायित्वों को भूल कर 'सभ्रांतों का अलगाववाद' की प्रवृति का शिकार हो गया था उसे पुनः अपने सामाजिक दायित्वों और उज्ज्वल युग की ओर ले जाने वाली ऐतिहासिक भूमिका के निर्वाह के लिए बामसेफ जैसे संगठन से जोड़ा जिसका मूल उद्देश्य था 'उत्पीड़ित और शोषित समाज को उनका देय वापस करो।'[43] कांशीराम ने अपनी पुस्तक 'चमचा युग' में लिखा था, 'बामसेफ ने सभ्रांतों के अलगाव पर आंशिक रोक लगा कर इस बीमारी का आंशिक इलाज कर दिया है। भविष्य में, संभावना है कि खरे और समर्थ नेतृत्व का सतत स्रोत बन कर, यह एक पूर्ण और स्थाई इलाज का रुप ले लेगा।' कांशीराम की यह टिप्पणी भावी दलित राजनीति में शिक्षित और बुद्धिजीवी दलित वर्ग की संभावित भूमिका पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है। किंतु बहुजन समाज पार्टी की स्थापना और इसकी चमत्कारिक चुनावी सफलताओं ने बसपा नेतृत्व को 'खरे और समर्थ नेतृत्व के इस सतत स्रोत' यानि शिक्षित और बुद्धिजीवी दलित वर्ग को उपेक्षित और निर्बल करने के लिए प्रेरित किया। कांशीराम अपने इस स्रोत को उस प्रकार का संगठनात्मक स्वरुप प्रदान नहीं कर पाए जो सवर्ण हिन्दुओं के एक वर्ग ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को दिया था। अपने आंदोलन के इसी गैर राजनीतिक आधार की बदौलत सवर्ण हिन्दुओं का यह वर्ग अपनी हिन्दुत्व और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की विचारधारा

[42] करिश्माई कांशीराम, सं. अशोक दास, दास पब्लिकेशन, पेज–117

[43] कांशीराम, चमचा युग, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, पेज–106

को समर्थ नेतृत्व की निरंतरता और अपने सतत प्रयासों की बदौलत भारतीय जनता के एक बड़े वर्ग में बद्धमूल करने में सफल हो गया। एक ओर जहाँ दलित राजनीति अपने आंदोलन के गैर राजनीतिक आधारों को खोने की वजह से नेतृत्व, विचारधारा और सांगठनिक स्तर पर कमजोर पड़ती गई वहीं हिन्दुत्व की राजनीति इन आधारों को सुदृढ़ कर भारतीय सत्ता तंत्र को अपने प्रभुत्व में लेने में सफल हो गयी।

भारतीय समाज में जाति और धर्म का स्वरुप और उनका अंतःसम्बन्ध

'जाति व्यवस्था का नाश और समतामूलक समाज की स्थापना' यह ऐतिहासिक रुप से वर्णाश्रम पर आधारित ब्राह्मणवादी सामाजिक संकल्पना के बर–अक्स वैकल्पिक चिंतन का आधार रही है। आज के इस भूमंडलीकृत पूंजीवादी दौर में जब कि एक ओर निरतंर विकसित होती अर्थव्यवस्था और बढ़ते नगरी करण के साथ–साथ परिवहन, संचार एवं सूचना तकनीक में क्रांतिकारी परिवर्तन आ रहे हैं और दूसरी ओर जहां संसदीय लोकतंत्र, सुदृढ़ न्यायपालिका एवं स्वतंत्र निर्वाचनों पर आधारित संवैधानिक प्रणाली अपने 70 वर्ष पूरे कर रही है हम पाते हैं कि अभी तक भारत में एक ऐसा नागरिक समाज प्रभावकारी रुप में विकसित नहीं हो पाया है जो कॉमन सेंस (आम मति) के स्तर पर जाति और धर्म की ब्राह्मणवादी संकल्पनाओं से मुक्त हो और जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को एक सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य के रुप में आत्मसात कर पाया हो। आज जिस तरह रुढ़िवादिता, कट्टरता, असहिष्णुता और अतार्किकता आदि प्रवृतियों का समाज में प्रसार होता जा रहा है उसने करुणा, उदारता, बौद्धिकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सहअस्तित्व जैसे मूल्यों को तिरोहित कर दिया है जिनकी स्थापना के लिए अम्बेडकर, उनके पूर्ववर्ती समाजसुधारक, मध्यकालीन संत कवि और महात्मा बुद्ध आजीवन प्रयासरत रहे। समाज में बढ़ती मॉब लिंचिंग की घटनाएँ, धर्म और जाति के आधार पर होने वाले उत्पीड़न, यौन हिंसा की बढ़ती प्रवृतियाँ, अभिव्यक्ति की आजादी पर निरंतर रोक, भ्रष्टाचार, अंधविश्वास और असमानता की चौड़ी होती खाई हमारे समक्ष एक ऐसे क्रूर, असहिष्णु और जाहिल समाज की छवि प्रस्तुत करतें हैं जिसका अम्बेडकर के प्रबुद्ध भारत की संकल्पना से दूर–दूर तक वास्ता नहीं है।

डॉ अंबेडकर, जिन्होंने स्वयं अपने जीवन में जातिगत भेदभाव का संत्रास सहा था, जाति–व्यवस्था के कारणों, दुष्प्रभावों एवं इसकी समाप्ति के मुद्दे पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब तक भारतीय जनता शास्त्रबद्ध हिन्दू धर्म के प्रभाव से मुक्त नहीं होगी तब तक जातिवाद का विनाश सम्भव नहीं है क्योंकि ये शास्त्र ही हैं जो हिन्दुओं की तार्किकता और नैतिकता को कुंठित कर उन्हें अमानवीय जातिप्रथा के प्रति अनुकूल बनाते हैं। डॉ अम्बेडकर के अनुसार एक ओर जातिप्रथा को धार्मिक आधार प्रदान कर तर्क और नैतिकता के दायरे से बाहर कर दिया गया और दूसरी ओर इसे सही ठहराने के लिए ब्राह्मणों के रुप में परम्परागत बुद्धिजीवियों की ऐसी फौज खड़ी कर दी गयी जो समाज का बौद्धिक नेतृत्व करने के बजाए हर हाल में इस व्यवस्था को कायम रखना चाहता था ताकि वे अपने विशेषाधिकारों को हर हाल में कायम रख सकें। डॉ अम्बेडकर के अनुसार, 'किसी भी सुधारक के शास्त्रागार में तर्क और नैतिकता–दो ही शक्तिशाली हथियार होते हैं। यदि उससे ये दोनों हथियार छीन लिए जाएं तो वह कार्य करने में अशक्त हो जाएगा। आप जाति–व्यवस्था को कैसे समाप्त कर पाएंगे जब लोगों को सोचने की स्वतंत्रता नहीं है कि क्या यह नैतिकता के अनुकूल है? जाति–व्यवस्था के चारों तरफ बनाई गई दीवार अभेद्य है और जिस सामग्री से इसका निर्माण किया गया है, उसमें तर्क और नैतिकता जैसी कोई ज्वलनशील वस्तु नहीं है।'[44] इसके आगे वे जाति–व्यवस्था के संरक्षक बुद्धिजीवी वर्ग के रुप में ब्राह्मणों की भूमिका को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, 'इसी (जाति–व्यवस्था की) दीवार के पीछे ब्राह्मणों की फौज खड़ी है–उन ब्राह्मणों की जो एक बुद्धिजीवी वर्ग है, उन ब्राह्मणों की जो हिन्दुओं के प्राकृतिक नेता हैं, उन ब्राह्मणों की जो वहाँ मात्र भाड़े के सैनिकों के रुप में नहीं हैं, बल्कि अपने देश के लिए लड़ती हुयी सेना के रुप में हैं।'[45] इस प्रकार ऐसी अवस्था में जबकि समाज का सर्वाधिक शिक्षित और जागरुक वर्ग ही यथास्थितिवाद का पोषक हो जाति–व्यवस्था की समाप्ति का कार्य दुष्कर ही नहीं अपितु असम्भव भी प्रतीत होता है किन्तु यदि हमें जाति–व्यवस्था का विनाश करना है तो हमें शास्त्र बद्ध हिन्दू धर्म से निजात पाना ही होगा। इसी बात

---

[44] बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–1, पेज–99

[45] वही

को अम्बेडकर इन शब्दों में व्यक्त करते हैं, 'आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि आप जाति–प्रथा में दरार डालना चाहते हैं तो इसके लिए आपको हर हालत में वेदों और शास्त्रों में डाइनामाइट लगाना होगा, क्योंकि वेद और शास्त्र किसी भी तर्क से अलग हटाते हैं और वेद और शास्त्र किसी भी नैतिकता से वंचित करते हैं। आपको 'श्रुति' और 'स्मृति' कं धर्म को नष्ट करना ही चाहिए। इसके अलावा और कोई चारा नहीं है। यही मेरा सोचा–विचारा हुआ विचार है।'[46] डॉ अम्बेडकर भले ही अध्यादेशीय संहिता अर्थात नियमों, आचारों और वर्जनाओं पर आधारित धर्म का विरोध करें किंतु वे धर्म मात्र के विरोधी नहीं थे बशर्ते वह विनिर्दिष्ट नियमों के अंधानुकरण के बजाए सिद्धांतों पर आधरित हो, 'यद्यपि मैं धर्म के नियमों की निंदा करता हूँ, इसका अर्थ यह न लगाया जाए कि धर्म की आवश्यकता ही नहीं। इसके विपरित मैं बर्क के कथन से सहमत हूँ जो कहता हैः सच्चा धर्म समाज की नींव है, जिस पर सब सरकारें टिकी हुयी हैं। परिणामतः जब मैं यह अनुरोध करता हूँ कि जीवन के ऐसे पुराने नियम समाप्त कर दिए जाएं, तब मैं यह देखने को उत्सुक हूँ कि इसका स्थान 'धर्म के सिद्धांत ले लें, तभी हम दावा कर सकते हैं कि यही सच्चा धर्म है। वास्तव में, मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि धर्म आवश्यक है।'[47] डॉ अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'जातिप्रथा–उन्मूलन' में उन सुधारों को भी प्रस्तावित किया जिन्हें अपना कर हिन्दूवाद को ब्राह्मणवाद से मुक्ति दिलाई जा सकती है। उनके अनुसार वर्तमान परिस्थितियों में धर्म को स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व अर्थात प्रजातांत्रिक मूल्यों के अनुरुप नया सैद्धांतिक आधार देना जरुरी है। किंतु धीरे–धीरे अंबेडकर की यह धारणा बलवती होती चली गयी कि उच्च वर्गीय हिन्दू खास कर ब्राह्मण वर्ग धर्म सुधार के द्वारा भारतीय समाज पर अपने परंपरागत वर्चस्व को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। अतएव उन्होंने बौद्ध घर्म की भौतिकवादी और क्रांतिकारी व्याख्या कर दलित और बहिष्कृत जनता का आह्वान किया कि वे एक न्यायपूर्ण सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए अपने प्राचीन धर्म यानि बौद्ध धर्म की ओर लौट जाएं। उन्होंने चातुर्वर्ण्य पर आधारित ब्राह्मण धर्म की समाज–व्यवस्था के बरअक्स स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित बौद्ध धर्म

---

[46] वही

[47] बाबा साहब डॉ अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–1, पेज–101

की समाज–व्यवस्था की संकल्पना को प्रस्तुत किया। वे अपनी पुस्तक **'भगवान बुद्ध और उनका धम्म'** में ब्राह्मणों के आदर्श धर्म और आदर्श समाज की परिकल्पना को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं, 'ब्राह्मणों के पास न केवल आदर्श धर्म की ही कल्पना थी, बल्कि उन्होंने अपनी एक आदर्श समाज की कल्पना भी गढ़ रखी थी। इस आदर्श समाज के ढाँचे का उनका अपना नाम चातुर्वर्ण था। वह वेदों में जड़ा हुआ है क्योंकि वेद तर्कातीत हैं और क्योंकि वेदों के किसी भी शब्द पर प्रश्नचिन्ह लग ही नहीं सकता, इसलिए एक आदर्श समाज के नमूने के रुप में चातुर्वर्ण भी तर्कातीत है और उस पर भी उंगली नहीं उठाई जा सकती।'[48] दूसरी ओर अम्बेडकर बौद्ध धर्म का उद्देश्य इसी धरती पर धम्म राज्य की स्थापना को मानते हैं। डॉ अम्बेडकर के अनुसार 'भगवान बुद्ध ने लोगों को यह नहीं कहा कि उनके जीवन का उद्देश्य किसी काल्पनिक स्वर्ग की प्राप्ति होना चाहिए। उनका कहना था कि धम्म का राज्य इस पृथ्वी पर ही है और वह धम्मपथ पर चल कर ही प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने लोगों से कहा कि यदि तुम अपने दुःख का अंत करना चाहते हो तो हर किसी को दूसरे के साथ न्यायसंगत, धम्मसंगत व्यवहार करना होगा। तभी यह पृथ्वी धम्म का राज्य बन सकेगी।'[49] इस प्रकार जहाँ ब्राह्मण धर्म में शास्त्रों और विधि–विधानों के अनुसरण को तर्क और नैतिकता से भी ऊपर स्थान दिया गया है बौद्ध धर्म मनुष्य की प्रज्ञा, शील, करुणा और मैत्री भावना को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

बौद्ध धर्म के सिद्धांत स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित एक न्यायपूर्ण समाज के निर्माण में किस प्रकार सहायक हो सकते हैं इसका उल्लेख उन्होंने अपने निबंध 'बुद्ध और कार्ल मार्क्स' में किया है। हम जानते हैं कि अम्बेडकर के जीवन काल में मार्क्सवाद अत्यंत प्रभावशाली विचारधारा थी। उस युग के अनेक विद्वान और राजनीतिज्ञ मार्क्सवाद के वैज्ञानिक समाजवाद होने पर यकीन करते थे जिसके अंतर्गत यह माना जाता कि इस समाजवाद का आना अपरिहार्य और अनिवार्य है। डॉ अम्बेडकर अपने इस निबंध में वैज्ञानिक समाजवाद का खण्डन करते हुए लिखते हैं कि दास कैपिटल के प्रकाशन के 70 वर्ष बाद 1917 में रुस में

---

[48] भगवान बुद्ध और उनका धम्म, प्रकाशक–डी.पी. वरुणबौद्ध, पेज–72

[49] वही, पेज–186–187

स्थापित साम्यवाद या सर्वहारा की तानाशाही सायास नहीं आयी बल्कि सोद्देश्य योजना के साथ काफी हिंसा और रक्तपात के द्वारा सम्पन्न हुयी। इसी प्रकार इतिहास की आर्थिक व्याख्या को वे इतिहास की एकमात्र परिभाषा स्वीकार नहीं करते। साथ ही यह भी नहीं मानते कि सर्वहारा वर्ग उत्तरोत्तर कंगाल बनता जा रहा है। अम्बेडकर मार्क्सवाद के जिन सिद्धांतों को बौद्ध धर्म से तुलनीय मानते हैं वे निम्नवत हैं–

1. दर्शन का कार्य विश्व का पुनर्निर्माण करना है, विश्व की उत्पति का स्पष्टीकरण देने या समझाने में अपने समय को नष्ट करना नहीं।
2. एक वर्ग का दूसरे वर्ग के साथ स्वार्थ व हित का टकराव व उनमें संघर्ष का होना है।
3. सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व से एक वर्ग को शक्ति प्राप्त होती है और दूसरे वर्ग को शोषण के द्वारा दुख पहुँचाया जाता है।
4. समाज की भलाई के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत सम्पति का उन्मूलन करके, दुःख का निराकरण किया जाए।[50]

इस प्रकार डॉ अम्बेडकर अपने विश्लेषण में मार्क्सवाद के साध्य की बुद्ध धर्म से साम्यता दर्शाते हैं किंतु अंतर और विषमता इस साम्यवाद को स्थापित करने के साधनों को लेकर है। मार्क्सवादी जहाँ अपने साम्यवाद को हिंसा और सर्वहारा वर्ग की तानाशाही से प्राप्त करना चाहते हैं वहीं बुद्ध ने जो साधन अपनाए वे स्वेच्छापूर्वक अनुसरण करके मनुष्य की नैतिक मनोवृति को परिवर्तित करने के लिए थे।[51] डॉ अम्बेडकर के अनुसार साम्यवाद की स्थापना के बाद जब राज्य समाप्त हो जाएगा तो धर्म ही वह चीज है जो इस व्यवस्था को कायम रख पाएगी। अम्बेडकर जब इन पंक्तियों को लिख रहे थे तो साम्यवादी सोवियत संघ एक महाशक्ति के रुप में स्थापित हो चुका था और चंद लोग ही ऐसे होंगे जो इसके विखंडित हो जाने की कल्पना कर पा रहे होंगे। आज जबकि आपार राजसत्ता से भरपूर सोवियत संघ तिरोहित हो चुका है विश्व में धर्म का प्रभाव अब भी बना हुआ है। डॉ अम्बेडकर की परिकल्पना थी कि जब घर्म अपने परंपरागत पारलौकिक, शास्त्रोन्मुख

---

[50] बाबा साहब डॉ अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–7, पेज–347
[51] वही, पेज–354

और ईश्वर केंद्रित स्वरुप में यथास्थितिवाद, उत्पीड़न, असमानता और वर्चस्वशाली वर्ग के हित में अपनी भूमिका निभा सकता है तो धर्म अपने बौद्धिक, नैतिक और करुणाशील स्वरुप में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित समाज कायम करने में सहायक क्यों नहीं हो सकता?

हमने अपने इस उपर्युक्त विश्लेषण में पाया कि डॉ अम्बेडकर भारतीय समाज में शक्ति और वर्चस्व का स्रोत धर्म और सामाजिक परम्पराओं को मानते थे जो मनुष्य की बुद्धि और उसके नैतिकता बोध को नियंत्रित कर उसे समाज की पूर्व नियोजित संरचना में अपनी भूमिका निभाने के लिए अनुकूल बनाता था। चातुर्वर्ण्य पर आधरित इस पूर्व नियोजित सामाजिक संरचना को समाज के एकमात्र बौद्धिक वर्ग के रुप में ब्राह्मण लोग धार्मिक शास्त्रों का हवाला देकर संबल प्रदान करते थे और जन सामान्य की नैतिकता और तार्किकता को नियंत्रित करते थे। एक बौद्धिक आंदोलन के रुप में बौद्ध धर्म ने शोषण और अन्याय पर आधरित ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना को तीव्र आघात पहुँचाया। प्रज्ञा, शील, करुणा, और मैत्री पर आधरित बौद्ध धर्म आज के इस प्रजातांत्रिक दौर में एक ऐसी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को स्थापित करने में सहायक हो सकता है जो सच्चे अर्थो में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित हो। आज संसदीय लोकतंत्र पर आधारित संवैधानिक प्रणाली में जातियाँ इस लिए कायम हैं क्योंकि धर्म का अतार्किक और अनैतिक स्वरुप इस अमानवीय व्यवस्था को अचेतन रुप से सम्बल प्रदान करता है और परम्परागत बुद्धिजीवी वर्ग के रुप में उच्च जाति के हिन्दू सचेतन या अचेतन रुप से जातिव्यवस्था को मजबूती प्रदान करते हैं। जाति चूँकि परिवार और सामाजिक सम्बन्धों का आधार होती है अतएव आज के इस प्रजातांत्रिक दौर में भी सामाजिक पूंजी का कार्य करती है। यही वजह है कि दलित और पिछड़ी जाति के लोग हर उस क्षेत्र में जो वांछित है और जहाँ संवैधानिक आरक्षण की व्यवस्था नहीं है प्रवेश करने में या टिके रहने में समस्या की अनुभूति करते हैं। अतएव डॉ अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म के माध्यम से मनुष्य की प्रवृतियों को और मनुष्य की प्रवृतियों के माध्यम से समूची सामाजिक संरचना को बदलने की परिकल्पना की। अम्बेडकर जिस आदर्श सामाजिक संरचना की परिकल्पना कर रहे थे वह केवल दलितों के बौद्ध धर्म के अंगीकरण से साकार नहीं होती बल्कि यह

तभी सकार हो पाएगी जब अधिकाधिक मानवता बौद्ध धर्म को अंगीकार कर ले। इस पूरी प्रक्रिया में दलितों और वंचितों को शिक्षित होकर और बौद्ध धर्म को सच्चे अर्थों में ग्रहण कर सामाजिक क्रांति के लिए एक आंगिक बुद्धिजीवी के रुप में उत्प्रेरक की भूमिका निभानी थी और समाज में कोई व्यक्ति तभी उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकता है जो अपने जीवन में उत्कृष्टता हासिल कर ले। डॉ. अम्बेडकर इस बात के ज्वलंत उदाहरण हैं कि कोई व्यक्ति अपने जीवन में उत्कृष्टता हासिल कर किस प्रकार सामाजिक क्रांति का उत्प्रेरक बन सकता है।

डॉ अम्बेडकर के बाद शिक्षित दलितों ने अपने जीवन में सफलताएँ तो अर्जित की किन्तु वे उनके सामाजिक क्रांति के संदेश को भूल गए। विशेष तौर पर महाराष्ट्र में बड़े पैमाने पर लोगों ने बौद्ध धर्म को अंगीकार किया लेकिन यह अंगीकरण केवल अपनी अस्मिता की अभिव्यक्ति तक ही केन्द्रित रहा। डॉ. अम्बेडकर न तो बौद्ध धर्म को केवल दलितों की सामाजिक–सांस्कृतिक अस्मिता की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना चाहते थे जिसके अंतर्गत दलितों को कतिपय बौद्ध रीति रिवाजों और संस्कारों को अपना कर अपनी सामाजिक पहचान को व्यक्त करना था न ही उनके लिए यह राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का एजेण्डा था बल्कि डॉ अम्बेडकर बौद्ध धर्म को आधार बना कर पूरी सामाजिक, आर्थिक ढाँचे को पुनर्गठित करना चाहते। बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को वास्तविक तौर पर ग्रहण न करने की वजह से अपने जीवन में अहं एवं प्रलोभन तक को तिलांजलि नहीं दे पाए और बिना किसी आदर्श और दीर्घकालीन रणनीति के फूट का शिकार होते चले गए।

डॉ अम्बेडकर के बाद यदि किसी राजनेता ने दलित आंदोलन को सार्थक दिशा देने का प्रयास किया तो वे कांशी राम थे। उन्होंने अपनी प्रखर बौद्धिकता, कुशल सांगठनिक क्षमता, दृढ़ लक्ष्यबद्धता के जरिए इस बात को बखूबी भाँप लिया कि पूना पैक्ट के बाद दलितों का जो नेतृत्व अस्तित्व में आया है वह अपने राजनीतिक वजूद के लिए सवर्ण नेतृत्व की चमचागिरी करने के लिए बाध्य है। एक ओर जहाँ अम्बेडकर और उनके पूर्ववर्ती सामाजिक आंदोलनों को समग्रता से न समझ पाने, पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यक वर्गों से राजनीतिक गठजोड़ न कर पाने और स्पष्ट राजनीतिक एजेण्डे के अभाव में दलित राजनीति सवर्ण राजनीति की पिछलग्गू बनने को मजबूर है वहीं दूसरी ओर दलित शिक्षित नौकरीपेशा वर्ग

किसी प्रेरणा और संगठन के अभाव में किसी भी सामाजिक दायित्व से रहित होकर 'सभ्रांतों के अलगाव' का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में कांशी राम ने सर्वप्रथम नौकरी पेशा दलित–पिछड़े शिक्षित मध्यम वर्ग को बामसेफ संगठन के माध्यम से एकजूट कर उन्हें अपने सामाजिक दायित्वों से जोड़ा ताकि दलित आंदोलन के लिए खरे और समर्थ नेतृत्व का स्रोत प्राप्त हो सके।

आज जबकि दलित राजनीति सिद्धांतहीनता, स्वार्थबद्धता और गतिहीनता का शिकार हो चुकी है और नैतिकता और तार्किकता की बातें वे कर रहे जिनका पारम्परिक रुप से इन दोनों चीजों से वास्ता नहीं रहा है समाज के नेतृत्व और उज्ज्वल युग की स्थापना का दायित्व दलित और वंचित वर्ग के बुद्धिजीवियों के कंधे पर आता है, जिन्हें अम्बेडकर ने शिक्षित बनो, संगठित रहो एवं संघर्ष करों का नारा दिया था और जिन्हें कांशी राम ने 'संभ्रांतों के अलगाववाद' की बीमारी से मुक्त करा कर खरे और समर्थ नेतृत्व के सतत स्रोत के रुप में संगठित किया था।

शिक्षा से सम्बन्धित डॉ. अंबेडकर के विचार

डॉ अंबेडकर भारत के प्रखर विद्वानों की श्रेणी में प्रथम पंक्ति में आसीन है। उन्होने कष्ट सहते हुए भी विश्वस्तरीय शिक्षा ग्रहण की। 1907 में उन्होने बम्बई से मैट्रिक की परीक्षा उर्तीण की एलिफिंस्टन कॉलेज में प्रवेश लिया। 1912 में बंबई विश्वविधालय से अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान में कला स्नातक की। इस स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने वाले अपने समुदाय से वे प्रथम व्यक्ति थे।

1913 में डा अंबेडकर 22 वर्ष की आयु में संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूयार्क शहर में स्थित कोलंबिया विश्वविद्यालय में स्नातकोतर की पढाई के लिए मौका मिला। बड़ौदा महाराज सयाजी गायकवाड़ तृतीय द्वारा दिए हुए फेलोशिप से अंबेडकर को भारत के बाहर विदेश में पढने का अवसर मिला। इस फेलोशिप में तीन साल के लिए 11.50 डालर प्रति माह उन्हें छात्रवृति मिलती थी। अपनी मेहनत लगन एवं थोड़े से आर्थिक मदद से 1915 में एमए परीक्षा पास कर ली। अंबेडकर ने स्नातकोतर के लिए' एंशिएंट इंडियन्स कामर्स' विषय पर शोध कार्य प्रस्तुत किया। अंबेडकर जॉन डेवी और लोकतंत्र पर उनके काम से प्रभावित थे। 1916 में

उन्होने अपना दूसरा शोध कार्य 'नेशनल डिविडेंड ऑफ इंडियाः ए हिस्टोरिक एंड एनलिटिकल स्टडी' के लिए दूसरी कला स्नात्तकोतर प्रदान की गई। 1916 में अपने तीसरे शोध कार्य 'इवोल्यूशन ऑफ प्रोविन्शियल फाइनेंश इन ब्रिटिश इंडिया' के लिए अर्थशास्त्र में पीएचडी की। शोध के प्रकाशन के बाद 1927 में उन्हे पीएचडी की डिग्री प्रदान की गई। अक्टूबर 1916 में लंदन के ग्रेज इन में बैरिस्टर कोर्स में प्रवेश लिया साथ ही लंदन स्कूल आफ इकोनोमिक्स में अर्थशास्त्र की डॉक्टरेट थीसिस पर काम करना शुरू किया। 1921 में एमएससी की जिसके लिए उन्होने 'प्रोविन्शियल डीसेन्ट्रलाइजेशन आफ इंपीरियल फायनेन्स इन ब्रिटिश इंडिया' पर शोध ग्रंथ प्रस्तुत किया। 1923 में 'द प्रोब्लम आफ रूपीः इट्स ओरिजीन एंड इटस सोल्यूसन' पर डीएससी की उपाधि प्राप्त की । 1953 में उस्मानिया विश्वविद्यालय ने डीलिट उपाधि से सम्मानित किया। इस प्रकार डॉ अंबेडकर ने अपने को शिक्षा ग्रहण कर स्वयं को सशक्त किया। ज्योतिबा फुले की तरह डॉ अंबेडकर शिक्षा पर बहुत जोर देते थे। वे दलितों को शिक्षित कर उनकी स्थिति को बेहतर बनाना चाहते थे। साथ ही शिक्षित दलितों एवं बुद्धिजीवियों का वर्ग बनाना चाहते थे जो अपने समाज को सही दिशा दिखाता रहे।

उनके अनुसार प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य यह सुनिश्चित करता है कि हरेक बच्चा जो प्राथमिक शाला में प्रवेश करता है वह एक ऐसी व्यवस्था में बाहर आए जब वह साक्षर हो चुका है और अपने भावी जीवन में निरन्तर साक्षर रहे।[52] डॉ अंबेडकर ने यह स्पष्ट किया कि शिक्षा से ही समता, स्वतन्त्रता, बन्धुता और देशप्रेम की भावना का जन्म होता है। शिक्षा के ब्राह्मणीकरण के कारण शूद्रवर्ण अशिक्षित ही रह गए न शस्त्र धारण कर पाये न शास्त्र का अध्ययन। देश की आधी आबादी स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार न देकर अशिक्षा का अन्धकार और फैला दिया गया। इसका सबसे प्रतिकूल प्रभाव महिलाओं, शूद्रों तथा अश्पृस्यों पर पड़ा जो एक दुखद इतिहास है। डॉ अंबेडकर ने बचपन से शिक्षा के महत्व को देखा तथा उनको यह एहसास था कि शिक्षा से ही मनुष्य के जीवन और समाज में प्रगति लाई जा सकती है। शिक्षा द्वारा ही मनुष्य अपने अधिकारों को जानकर कर्तव्यों का निर्वाह

[52] जाधव, नरेद्र, डॉ अंबेडकर के सामाजिक विचार एवं दर्शन, पेज–232

कर सकता है नही ंतो मनुष्य और पशु में अन्तर नहीं रह जाएगा। ज्योतिबा फुले तथा सावित्री बाई फुले के स्त्रियों, अश्पृस्यों और शूद्रो को शिक्षित करने के विचार से प्रेरित होकर डॉ अंबेडकर ने भी समाज के पिछड़े एंव वंचित वर्गों में शिक्षा का प्रसार किया। फुले ने ब्रिटिश शासन पर यह आरोप लगाया कि वह जनसाधारण की शिक्षा की अनदेखी करके बहुत सारा धन उच्च शिक्षा के विस्तार पर खर्च कर रहा था। डॉ अंबेडकर उच्च शिक्षा का समर्थन करते थे साथ ही उनका यह भी कहना था कि उच्च शिक्षा का लाभ उच्च जातियों तक सीमित नहीं रहना चाहिए निम्न जातियों को भी इसका लाभ मिलना चाहिए। शिक्षा के मामले में डॉ अंबेडकर ने असमानता के सिद्धांत का समर्थन किया।[53] डॉ अंबेडकर के अनुसार यह देश विभिन्न संप्रदायों से बना है। ये सभी संप्रदाय अपनी स्थिति और प्रगति में एक दूसरे से पृथक हैं। यदि उन्हें बराबरी के स्तर पर लाए जाने की बात है तो इसका एक ही उपाय है असमानता का सिद्धांत अपनाना और जिनका स्तर निम्न है उनके साथ विशेष व्यवहार करना।[54] डॉ अंबेडकर को विश्वास था कि शिक्षा द्वारा दलितों में जागरूकता आएगी एवं यह उन्हें आत्म मुक्ति के लिए प्रेरित करेगा। उनका मानना था कि निम्न जातियों में भोजन और वस्त्र की समस्या नहीं है बल्कि हीनता की भावना समस्या की जड़ है जो उनके विकास को कुन्द कर दिया है और दूसरों का गुलाम बना दिया है केवल शिक्षा एवं आत्मज्ञान ही उनमें आत्मविश्वास पैदा कर सकता है।

भारत के पिछड़े समाज में शिक्षा का प्रचार प्रसार करने के लिए डॉ अंबेडकर ने शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो का त्रयी सूत्र दिया। यह मंत्र डॉ अंबेडकर ने अपने समाज के लोगों में नवीन जागरूकता लाने के लिए किया। शिक्षा के प्रति उनका समर्पण इतना गहन था कि इसका प्रभाव उनके संपूर्ण जीवन तथा विचारों पर देखा जा सकता है। डॉ. अंबेडकर ने 1924 में **बहिष्कृत हितकारिणी सभा** एंव 1928 में **डिप्रेस्ड क्लासेज एजुकेशन सोसायटी** की स्थापना की।[55] अश्पृस्य छात्रों के लिए छात्रावास खोले। इन छात्रावासों ने अश्पृस्य छात्रों को प्राथमिक तथा माध्यमिक

---

[53] जाधव नरेंद्र, डॉ अंबेडकर के सामाजिक विचार एवं दर्शन, पेज–235

[54] वही, पेज–235

[55] च्वहाण शेषराव, अम्बेडकर की अन्तर्वेदना, पेज–94

शिक्षा प्राप्त करने हेतु वितीय सहायता प्रदान की जाती थी लेकिन यह वर्ग अभी तक उच्च शिक्षा से दूर ही थे। इन विधार्थियों को उच्च शिक्षा दिलाने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर डॉ अंबेडकर ने t|ykbl 1945 को **'पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी'** की स्थापना की।[56] सन 1946 को बम्बई में सिद्धार्थ कालेज खोला।[57] सन् 1950 में औरंगाबाद में मिलिंद महाविद्यालय की स्थापना जिसमें कला, विज्ञान तथा वाणिज्य की पढ़ाई शुरू की गई। 1958 में डॉ अंबेडकर ने मराठवाड़ा विश्वविद्यालय की नींव रखी। आजादी के बाद जब संविधान लागू हुआ तो आर्टिकल 46 के अनुसार दलितों के शिक्षा की जिम्मेदारी राज्यों को सौंपी गई। डॉ अंबेडकर राज्य प्रायोजित शिक्षा के पक्षधर थे। निजी विद्यालय तथा फ्री वाले शिक्षा के सख्त विरोधी थे। शैक्षणिक संस्थानों में 1965 में दलित छात्रों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया। दलितों के लिए छात्रवृतियों की व्यवस्था की गयी फिर भी शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर दलितों की भागीदारी संतोषजनक नहीं है। डॉ अंबेडकर ने कहा था 'पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी' का उद्देश्य केवल शिक्षा प्रदान करना ही नहीं है बल्कि छात्रों को ऐसी शिक्षा देना है जो बुद्धिमता, नैतिकता एवं सामाजिक लोकतंत्र के विकास में सहायक हो सके। आज के आधुनिक भारत को इसकी जरूरत भी है और भारत के सभी शुभचिन्तको को इसी लक्ष्य को आगे बढ़ाना चाहिए।[58] डॉ अंबेडकर चाहते थे कि प्रोफेसर, शिक्षक को हमेशा ज्ञान की तलाश में रहना चाहिए और सत्य की खोज करते हुए श्रेष्ठ आचरण करना चाहिए। डॉ अंबेडकर विश्वविद्यालयों को ज्ञान का पावन स्थल बनाना चाहते थे न कि क्लर्क तैयार करने वाली वर्कशॉप बन कर रह जाए। लेकिन आज के उच्च शिक्षण संस्थान राजनीति का केंद्र बन कर रह गए। विश्वविद्यालयों में शिक्षा देने का कार्य कुछ जाति विशेष तक ही सिमट कर रह गया है । जातिवाद का अड्डा बन गया है। जिन चीजों से डॉ अंबेडकर मुक्ति दिलाना चाहते थे उन्हीं चीजों ने अपना रूप और गहन गूढ़ कर लिया है। वर्तमान समय में शैक्षणिक संस्थाओं की उपलब्धि का विश्लेषण करे तो पाते है कि शैक्षणिक स्तरों के सम्बन्ध में अनुसूचित जाति के छात्रों की जनसंख्या की गुणवत्ता अपेक्षाकृत कम है। दलित वर्ग अन्य जातियों की तुलना में अर्थपूर्ण ढंग से पीछे हैं। समस्त

---

[56] वही पेज
[57] वही पेज
[58] च्वहाण शेषराव] डॉ अंबेडकर की अंतर्वेदना, पेज–101

साक्षर अनुसूचित जातियों में मात्र 16.3 % मध्य अथवा उच्चतर प्राथमिक कक्षाओं तक शिक्षित थे। विद्यालय में नामांकन एंव पढाई बीच में छोड़ने का दर दलितों में ज्यादा है। वहीं अगर दलितों में उच्च शिक्षा का दर देखा जाए तो केवल 5% से कुछ अधिक व्यक्ति ही उच्चतर माध्यमिक से आगे शिक्षा प्राप्त कर सके है। व्यावसायिक पाठयक्रम में दलितों की उपस्थिति बहुत कम है। दलितों में शैक्षणिक वंचना एंव सामाजिक पक्षपात, जिसके वे अधीन होते है उन ऐतिहासिक एंव संचयी सामाजिक आर्थिक एंव संरचनात्मक वंचनाओं पर अधिकांशतया आरोपित की जाती है जिसको उन्होंने सदियों तक झेला है। अनुसूचित जाति के छात्रों के कम स्कूल नामांकन के लिए अनुसूचित जाति परिवारों की निर्धनता मूलरूप से उतरदायी है।[59]

डॉ अंबेडकर एक प्रतिभाशाली एवं जुझारू लेखक थे। पढने तथा लिखने दोनों में उनकी रूचि थी। बंबई स्थित अपने आवास राजगृह में ही एक लाइब्रेरी बनाए हुए थे जिसमें 50 हजार से अधिक किताबें थी। अपने लेखन द्वारा उन्होने दलितों व देश की समस्याओं को उजागर किया। उनके साहित्यिक रचनाओं को उनके विशिष्ट सामाजिक दृष्टिकोण और विद्वता के लिए जाना जाता है जिनमें उनकी दूरदृष्टि स्पष्ट नजर आती है। डॉ अंबेडकर ने शोषित दलित समाज में जागृति लाने के लिए, समाज की दुर्दशा को व्यक्त करने के लिए पत्र ,पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं संपादन किए। मूकनायक(1920), जनता (1930), बहिष्कृत भारत (1927), समता (1928) एवं प्रबुद्ध भारत (1956) पाक्षिक पत्र का प्रकाशन मराठी में किए। दलितों की समस्याओं को अन्य पत्र महत्व नही देते थे। 11 अप्रैल 2017 को महात्मा फुले की जयंती के उपलक्ष्य में अंबेडकर के पौत्र प्रकाश अंबेडकर ने प्रबुद्ध भारत को नए सिरे से प्रकाशित की।

डॉ अंबेडकर के शिक्षा सम्बन्धी विचारों के अध्ययन के द्वारा मैने यह निष्कर्ष पाया कि जिस चीज को वे दलितो ंकी प्रगति का दुश्मन मानते है वही अशिक्षा, निर्धनता, मानसिक प्रताड़ना समाज में आज भी व्याप्त हैं। प्रो. विवेक कुमार ने अपनी पुस्तक में दलित साहित्य एव दलित लेखको का वर्तमान हाल का बड़ा ही तर्कपूर्ण विश्लेषण किया है। दलित लेखक एवं दलित साहित्य पर ये आरोप लगते

---

[59] थोराट सुखदेव, भारत में दलित सामान्य लक्ष्य की खोज ,पेज 143

है एवं निन्दा होती है कि वे अन्य सभी साहित्य में कमी निकालते है नकारात्मक दृष्टिकोण हावी है। दलित साहित्य में पुनरावृति हो रही है जबकि सच्चाई यह है कि लेखक या लेखन में वही झलक होती है जो उसकी चेतना का हिस्सा बनता है जो उसने अपने उपर झेला तथा देखा है। इस सन्दर्भ में समाज शास्त्री राबर्ट किंगमर्टन का यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि सामाजिक स्तरीयकरण के कारण सामाजिक समूह–समूहो, सामाजिक मूल्यों, नैतिकता, आचरण आदि की ओर भिन्न–भिन्न मात्रा मे उन्मुख होते है। सभी में इनके प्रति एक सी चेतना नहीं होती।[60] दलित समुदाय की चेतना का विकास सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में वंचनाओं के आधार पर होता है, इन वंचनाओं में सामाजिक वंचना अत्यन्त प्रभावशाली भूमिका अदा करती है। जो लेखको के साहित्य मे दिखाई देता है। दलित लेखक अनजाने में ग्राम्शी द्वारा प्रतिपादित वर्चस्वता के सिद्धान्त को रेखांकित करते है।[61] ग्राम्शी कमेरों को आगाह करते है कि अगर शासक वर्ग की वर्चस्वता को तोड़ना है तो शोषित वर्ग को वैकल्पिक 'वर्चस्वता' स्थापित करनी होगी।[62] इसलिए उन्हें स्थापित सामाजिक–मूल्यों, संरचनाओ तथा संस्थाओं को अपने दृष्टिकोण से विश्लेषित कर खंडित करना होगा। धार्मिक वर्चस्वता का उल्लेख दलित लेखक ज्योतिबा फुले के जीवनकाल से आरम्भ कर पेरियार, डॉ अंबेडकर, कांशीराम तक ले जाते है तथा हिन्दूवादी वर्तमान संगठनों के छद्म को अपनी पैनी दृष्टि से चिन्हित करते है और उसके वैशिष्ट्य ज्ञान संकुचन को भी उजागर करते है। साथ ही ब्राह्मण सता को वे अल्पमत में बताते है। ब्राह्मणवादियों से टकराते हुए तथा उसका विनाश करते हुए दलित लेखक फुले, पेरियार तथा अंबेडकर आदि दलित एवं पिछड़े समुदाय के चिन्तकों एवं मनीषियों के विचारों को प्रेषित करते है।

भारतीय राजनीति में जाति के इस्तेमाल को जहां सवर्ण ब्राह्मण लेखक मानवता का कलंक कहकर परिभाषित करते है वही दलित लेखक उसे जाति चेतना का राजनीतिकरण कहकर उसे वंचित जातियों का उत्थान तथा संरचनात्मक परिवर्तन का मार्ग कहकर परिभाषित करते है। दलित लेखक 'जैक्स डेरिडा की

---

[60] कुमार, विवेक, प्रजातंत्र जाति आरक्षण एवं दलित, पेज–105

[61] वही , पेज–111

[62] वही , पेज–111

डिस्ट्रक्शन विध्वंस के सिद्धान्त' के करीब पहुंच जाते है।[63] इसके अनुसार पश्चिमी विचार 'केन्द्र की धारणा' पर आधारित है और सभी अर्थ इस केन्द्र पर आधारित है। डेरिडा इसी केन्द्र के विध्वंस की बात करते है। दलित लेखक द्विज ब्रहमण जो केंद्र में है और दलित उपेक्षित दमित या उपान्त है। अयोग्य निष्क्रिय हैं, इसको खंडित करके दलितो शोषितों के नवीन केंद्र गढ़ने लगे है।

डॉ अंबेडकर ने दलितों को हर तरह के संवैधानिक अधिकार प्रदान कर दलितों को सशक्त बनाने का भरपूर प्रयास किये हैं। शिक्षा का अधिकार सम्पूर्ण भारतीय को प्राप्त है।

महिला सशक्तिकरण के लिए डॉ. अंबेडकर के विचार

डॉ अंबेडकर के सम्पूर्ण विचार मंथन के दृष्टिकोण में महिला सशक्तिकरण का उनका विचार उनके आधुनिक, दिव्यदर्शी एवं प्रगतिशील सोच को दर्शाता है। उन्होंने भारतवर्ष के तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का सूक्ष्म अध्ययन करके जाना कि सभी समस्या के समाधान की मूल शर्त सामाजिक न्याय और परिवर्तन की क्रान्ति में है। डॉ अंबेडकर के अनुसार किसी भी देश या समाज की प्रगति का निर्धारण वहां की महिलाओं की स्थिति से होता है।

20 जुलाई 1942 को आयोजित अखिल भारतीय दलित महिला सम्मेलन में डॉ अंबेडकर ने दलित महिलाओं से अपील की एवं दलित महिलाओं की प्रशंसा करते हुये कहा कि महिलाओं में जागृति का अटूट विश्वास है कि सामाजिक कुरीतियां नष्ट करने में महिलाओं का बड़ा योगदान हो सकता है। डॉ अंबेडकर ने दलित महिलाओं से अपनी बच्चियों की शादी कम उम्र में न करने, उनको शिक्षित कर अपने पैरों पर खड़ा होने की अपील की। कम बच्चे पैदा करने व साफ सफाई से रहने का सन्देश देते हुये महिलाओं का उनके परिवारों में समानता का स्तर हो।[64] इन सारी बातों का संग्रह उनकी लघुकृति 'भारत में नारी उत्थान और पतन' में है।

---

[63] वही, पेज–117
[64] वही, पेज

डॉ अंबेडकर के लिए केवल अशपृस्य ही दलित नहीं थे बल्कि हर वह व्यक्ति व वर्ग दलित है जिसे मानव अधिकारों से वंचित रखा गया। दलित वर्ग में वे सभी वर्गों के लोग आते है जो निर्धन तथा अशिक्षित है, चाहे वे किसी भी वर्ण के हों, कोई भी इंसान जो अपने मान सम्मान से वंचित रहता है। डॉ अंबेडकर जीवनपर्यंत मानव अधिकारों के लिए संघर्षशील रहें। डॉ अंबेडकर का संघर्ष मानववादी सिद्धांतों पर आधारित था।[65]

डॉ अंबेडकर को नारी जाति का उद्धारक कहा जा सकता है। पिछड़े दलित समाज को उन्होंने शिक्षा, संगठन और संघर्ष का नारा दिया है। नारी के पक्ष में अन्याय करने और नारी को अपमानित करने वाली मनुस्मृति को जाहिर तौर पर जलाकर डॉ अंबेडकर ने यह संदेश दिया कि उसे मिटा दो जो हमारे साथ अन्याय करता है। साथ ही यह भी संदेश दिया कि अन्याय करने वाले से अधिक अन्याय सहने वाला गुनहगार होता है। डॉ अंबेडकर के इन संदेशों से सदियों से पीड़ित नारी समाज में जागृति आई है। 25 दिसंबर जिस दिन मनुस्मृति जलाई गई उसी दिन को 'राष्ट्रीय स्त्री दिवस' के रूप में स्वीकृत किया गया ।[66] उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि शिक्षा के पाठयक्रम में ऐसे साहित्य को लाना है जिसके माध्यम से धर्मग्रंथों में चित्रित नारी के अबला रूप को हटाकर उसके स्थान पर प्रगतिशील नारी की यथार्थ स्थिति को रखा जाए। नई पीढ़ी को इस बात की अवश्य जानकारी मिलनी चाहिए ताकि भविष्य में सामाजिक सह रचना समता पर आधारित हो सके।

डॉ अंबेडकर जब बंबई विधान मंडल के सदस्य थे तब उन्होंने नारी अधिकार के लिए अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत किए एंव पारित करवाए। जिनमें बहुपत्नीवाद का विरोध, कोयला खान में व अन्य असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली मजदूर किसान महिलाओं के लिए 21 दिन की अवकाश, चोट आने पर मुआवजा, 20 साल की नौकरी होने पर हर एक महिला को 15 रू० मासिक पेंशन देने की योजना, स्वास्थ्य मनोंरजन के साधन तथा काम के घंटे निश्चित कर कामगार महिलाओं के हित में सुधार एंव कानून बनाने के प्रयास किए। मधनिषेध प्रस्ताव भी प्रस्तुत किए जिसका

---

[65] जाटव डी आर, डॉ अंबेडकर एक प्रखर विद्रोही, पेज–113
[66] वही , पेज–128

लाभ समाज की दलित महिलाओं को मिले।[67]डॉ अम्बेडकर ने अपने लेख **'द वुमेन एण्ड द काउंटर रिव्योल्यूशन'** नारी और प्रतिक्रांति में व्यक्त किए हैं। मनुस्मृति में नारियों पर लागू होने वाले विचार नारी को पशुतुल्य समझने के लिए पर्याप्त है तथा इन्हीं विचारों पर हिन्दू पुरूष प्रधान समाज आधारित है। बाल विवाह, विधवा विवाह पर रोक, नारी को निरीह अबला समझना, मारना पीटना, बल प्रयोग करना सब कुछ वर्णित है। डॉ अंबेडकर ने संविधान में मौलिक अधिकार के अंर्तगत अनुच्छेद 14 में लैंगिक समानता को संवैधानिक नियम बनाया। उन्होंने देखा कि हिंदू समाज के मुकाबले मुस्लिम समाज एवं इसाई समाज का अपना अपना पर्सनल लॉ है। हिन्दू नारी की स्थिति सुधारने एवं उनकी दुर्दशा को दूर करने के लिए महिलाओं को आर्थिक अधिकार प्रदान करने के लिए ही डॉ अंबेडकर ने हिन्दू कोड बिल का मसौदा तैयार किया। व्हेन आइ हैड कंसील्ड माय कास्ट इस कृति के प्रसिद्ध महाराष्ट्रीयन दलित लेखक बाबुराव बागुल कहते है 'हिन्दू कोड बिल महिला सशक्तिकरण का असली अविष्कार है'।[68] गंभीर राष्ट्रीय विमर्श की भावना से कहते हैं कि 'अश्पृस्यता को नकारने वाली भीमस्मृति और अश्पृश्यता का पालन करने वाली मनुस्मृति एक ही सभागार में है और एक ही धर में साथ–साथ राज करती है यानि देश एक ही समय में दो स्मृतियों, दो सत्ताओं और दो जीवंत पद्धतियो में जीता है। तात्पर्य यह है कि स्त्रियों की स्थिति केवल उपदेश और समाज सुधार करने से ठीक नहीं होने वाली, कानूनी रूप एवं संवैधानिक व्यवस्था करनी होगी।

महिलाओं को कानूनी रूप से अधिकार युक्त करने के लिए डॉ अंबेडकर ने हिंदू कोड बिल लाया जिसे 5 फरवरी 1951 को संसद में पेश किया गया । जिसमें मुख्य प्रावधान निम्न थेः–

1. यह बिल हिन्दू स्त्रियों की उन्नति के लिए प्रस्तुत किया गया था।
2. बिल में स्त्रियों को उत्तराधिकार का अधिकार (मां, बाप व पति की जायदाद में हिस्सा)

[67] जाधव नरेंद्र, डॉ अंबेडकर के सामाजिक विचार एवं दर्शन , पेज– 261
[68] Research paper Amol Nimsolkar, TISCO, Mumbai

3. स्त्रियों को तलाक का अधिकार, तालाक मिलने पर गुजारा भत्ता का अधिकार
4. एक पत्नी के होते दूसरी शादी न करने का अधिकार
5. महिलाओं को अपनी कमाई का अधिकार
6. अंतर्राजातीय विवाह करने का अधिकार
7. महिलाओं को अपना उत्तराधिकारी निश्चित करने की स्वतंत्रता मिले।

डॉ अंबेडकर ने बिल पेश करते समय संसद को संबोधित करते हुये कहा था कि यदि आप हिंदू व्यवस्था, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू समाज की रक्षा करना चाहते हैं तो उसमें जो दोष पैदा हो गया है उसको सुधारने में आपको तनिक भी झिझक नहीं होनी चाहिए। हिन्दू कोड बिल हिन्दू व्यवस्था के केवल उन्हीं अंशो का सुधार चाहता है जो विकृत हो गए है उनसे अधिक कुछ नहीं।[69] हिन्दू कट्टरपंथी पुरूष प्रधान सोच मानसिकता वाली गणमान्य नेताओं ने बिल पास नहीं होने दिया। हिन्दू संगठनों ने भी इस बिल का कड़ा विरोध किया। डॉ अंबेडकर पर व्यक्तिगत हमले किए गए। महिलाओं की कम क्षमताओं पर भी कई टिप्पणियां की गयी । सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद और संसद के कट्टर हिन्दू नेता इस बिल के सख्त विरोधी थे। इन विरोधियों ने प्रचार किया कि नारी को यदि सम्पत्ति का अधिकार दे दिया जाय तो उसका प्रबन्ध नही कर सकेगी।[70] डॉ अंबेडकर ने इनके सामने यह तर्क रखा कि मैं भी रूढिवादी हूं लेकिन प्रगतिशील रूढ़िवादी हूं ।[71] तब उन्होंने सदन के सामने एडमंड बर्क का तर्क रखा कि रूढ़िवादी होते हुये फ्रेंच क्रान्ति के विरूद्ध एक ग्रन्थ लिखा जिससे उन्होने बुनियादी सुधारवाद और क्रान्तिकारीवादी होने के कारण वे अपने रूढ़िवादी देशवासियों को एक महत्वपूर्ण सच्चाई बताना नहीं भूले। डॉ अंबेडकर भावुकता के साथ इस बिल से जुड़े हुये थे लेकिन जब मन माफिक तरीके से बिल पारित नहीं हो पाया तो उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

---

69 BAWS 14 [1], page 283

70 जाटव डी आर. डॉ अंबेडकर के सामाजिक दर्शन, पेज–115

71 BAWS 14[1], Page 283

नारी वर्ग के उत्थान हेतु जिन प्रावधानों का संयोजन हिंदू कोड बिल में था उन्हें विभिन्न रूपों में अन्ततः सरकार ने पेश किया। देश के पहले लोकसभा चुनाव के बाद प्रधानमंत्री नेहरू ने हिन्दू कोड बिल को कई हिस्सों में तोड़ दिया। जिसके बाद 1955 में हिंदू मैरिज एक्ट बनाया गया जिसके तहत तलाक को कानूनी दर्जा, अर्न्तजातीय विवाह एवं एक से ज्यादा विवाह को गैर कानूनी घोषित किया गया। 1956 में ही हिंदू उतराधिकार अधिनियम, हिंदू दत्तक ग्रहण और पोषण अधिनियम और हिंदू अव्यस्कता और संरक्षकता अधिनियम लागू हुए। इन सभी के द्वारा महिलाओं को संपति का अधिकार दिया गया। लड़कियों के गोद लेने पर जोर दिया गया। यह कानून हिन्दुओं के अलावा सिक्ख, बौद्ध और जैन धर्म पर लागू होता है। डॉ अंबेडकर की यही दूरदर्शी सोच वर्तमान में भी महिलाओं को सशक्त करने के कानूनी अधिकार दे रहे है। 2005 में आया यह कानून कि संयुक्त हिंदू परिवार में पुत्री को भी पुत्र के समान कानूनी रूप से बराबर का भागीदार माना गया। ये सारे कानून हिन्दू कोड बिल का ही विस्तार है।

दलितों की भांति देश की महिलाएं बाबा साहेब डॉ अंबेडकर को नारी समाज के उत्थान और सशक्त प्रबल पक्षधर के रूप में सदैव स्मरण करती रहेंगी लेकिन जैसा की भारतीय राजनीति एवं राजनीतिज्ञों की सोच है इन कानूनों का श्रेय उसे पारित करने वाले सरकार ले लेती है। डॉ अंबेडकर शिक्षा के प्रबल समर्थक है। जहां तक बालक बालिका के शिक्षा की बात हैं मैने अपने शोध के दौरान पाया कि डब्ल्यू एन कुबेर की पुस्तक अंबेडकरः ए क्रिटिकल स्टडी में पाया कि डॉ अंबेडकर बालिकाओं के उच्चतर शिक्षा को ज्यादा तवज्जो न देकर लड़कों के शिक्षा को महत्व देते थे। लड़कियों को होम साइंस तक की शिक्षा की ही बात किए। जो कि उनके इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की घोषण पत्र में था।[72] यह भी सम्भावना है कि उस समय के वक्त की मांग तथा समाजिक, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में ये बात कही हो।

डॉ अंबेडकर प्रगतिशील मानववादी विचारक थे। पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति के खुलेपन मे उन्होने ताजगी का एहसास महसूस किया। भारतीय समाज की बंद व्यवस्था को वे दुरूस्त करना चाहते थे। जिसमें से नारी उत्थान एंव शिक्षा

---

[72] वही, पेज–264

ही उनका मुख्य हथियार था। अंबेडकर की मान्यता थी कि सामाजिक क्रांति में नारी को भी पुरूष वर्ग का सहयोगी बनना चाहिए।[73] ज्योतिबा फुले एंव उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले से प्रेरणा ग्रहण करते हुए 1928 में बंबई महिला मंडल की स्थापना हुई थी जिसकी अध्यक्ष स्वयं डॉ अंबेडकर की पत्नी रमाबाई ने की थी।[74]

वर्तमान समय में भारत की पचास प्रतिशत आबादी महिलाओं की है। निःसंदेह महिलाओं की स्थिति में व्यापक परिवर्तन आया है। महिला सशक्तिकरण, शिक्षा, अधिकार, कानून में वृद्धि आई है लेकिन फिर भी प्रचलित कुरीतियां अभी भी विद्यमान है दहेज प्रथा, बाल विवाह, कन्या भ्रूण हत्या, गैर बराबरी अत्याचार हिंसा, ग्रामीण और शहरी दोनों समाज में विद्यमान है। दलित महिलाओं का तो दोहरा शोषण हो रहा है एक दलित होने के नाते दूसरी महिला होने के नाते। दलित इसाई महिला रूथ मनोरमा के अनुसार यह वर्ग तिहरे उत्पीड़न का शिकार है जिसके लिए ब्राह्मणवाद मुख्य रूप से जिम्मेदार हे।[75] डॉ अंबेडकर यही प्रयत्न करते रहे कि महिला अपने अधिकारों एंव शक्ति को पहचाने और उनका प्रयोग करे। अपनी मुक्ति का मार्ग महिलाओं को स्वयं खोजना होगा। विश्व में पहला महिला मुक्ति का मेनिफेस्टो देने वाली मेरी वालस्टोनक्राफ्ट और बाद में बेट्टी फेडेन वैश्विक जगत को महिला सशक्तिकरण की प्रेरण स्त्रोत रही । डॉ अंबेडकर के अवलोकन में स्त्री प्रश्न भारत में किसी भी दूसरे विकसित या पिछड़े मुल्क की तुलना में अधिक जटिल था। यह जटिलता परिवार, समाज, संस्कृति, कानून रोजगार हर स्थल पर मौजूद था। जिसे केवल स्त्री स्वतंत्रता से ही तोड़ा जा सकता था।

डॉ. अंबेडकर का बौद्ध धर्म परिवर्तन

डॉ अम्बेडकर धर्म को सामाजिक जीवन का एक आवश्यक अंग मानते थे। धर्म मनुष्य जीवन की उत्तम वस्तु है नैतिकता के साथ–साथ इसमें सम्मान की भावना निहित है। उनके अनुसार धर्म का तात्पर्य मनुष्य–मनुष्य के बीच शुभ सम्बन्धों से है। वे धर्म को मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास से जोड़ कर देखते है।

[73] बाबासाहेब ने कहा था, आनंद साहित्य सदन, अलीगढ, पांचवा संस्करण, पेज–59
[74] दूबे अभय कुमार, आधुनिकता के आइने में दलित, पेज–231
[75] आमवेट गेल, दलित दृष्टि, पेज 86

धर्म का मतलब है समाज के रख रखाव के लिए बनाये गये नियम।[76] एक व्यक्ति के उत्थान के लिए तीन तत्व जरूरी है। वे हैं सहानुभूति, समानता, और स्वतन्त्रता लेकिन हिन्दू धर्म में एक व्यक्ति के लिए कोई जगह नहीं है क्योंकि यह वर्ग के आधार पर बना है। हिन्दू धर्म के अंतर्गत मनुष्य धर्म के लिए है जबकि अंबेडकर का मानना था कि धर्म मनुष्य के लिए है। ऐसे धर्म का कोई मतलब नहीं जिसमें मनुष्यता का कोई मूल्य नही है। छुआछूत जो कि असमानता का ठोस कारण है, हिन्दू धर्म का जीवंत उदाहरण है। शिक्षा प्राप्त करने और अपना आध्यात्मिक विकास करना यह वर्ग विशेष तक ही मतलब हिन्दू समाज में सीमित है। शूद्रों की स्थिति समाज में पशुओं से भी बदतर है। ऐसे धर्म में जिसमें मनुष्य को मनुष्य नहीं समझा जाए उससे जन्म के आधार पर भेदभाव किया जाए अपमानित और घृणा की नजर से देखा जाए। ऐसे धर्म का त्याग करके ही आत्मसम्मान का जीवन व्यतीत किया जा सकता है। हिन्दू धर्म पूरी तरह से अवैज्ञानिक और अमानवीय है।

डॉ अम्बेडकर ने हिन्दू सवर्ण नीतियों से उनके अविश्वसनीय रवैये से क्षुब्ध होकर 13 अक्टूबर 1935 में ही येवला' में एक सम्मेलन में घोषित किया था कि' मैं हिन्दू के रूप में जन्मा हूं लेकिन हिंदू के रूप से मरूंगा नहीं।[77] जिसकी वास्तविक परिणिति 14 अक्टूबर,1956 को नागपुर के दीक्षा भूमि में हुई जहां डॉ अम्बेडकर ने अपने लाखों समर्थकों के साथ नव बौद्ध धर्म को विधिवत् तरीके से ग्रहण किया ।[78] यह इस समय की बहुत ही महत्वपूर्ण घटना थी। डॉ अंबेडकर बौद्ध धर्म को इसलिए उपयुक्त मानते थे क्योंकि उसमें तीन सिद्धांतों का समंवित रूप मिलता है जो किसी अन्य धर्म में नहीं मिलता है। बौद्ध धर्म प्रज्ञा (अंधविश्वास तथा अतिप्रकृतिवाद के स्थान पर बुद्धि का प्रयोग), करूणा (प्रेम) और समता की शिक्षा देता है। यह वैज्ञानिकता, नैतिकता एवं बौद्धिकता पर आधारित हैं। बौद्ध धर्म को आचार के सिद्धांत के रूप में व्यवहार में लाना है। धर्म का कार्य विश्व का पुनर्निमाण करना होना चाहिए ना कि उसकी उत्पति और अंत की व्याख्या करना।

---

[76] जाधव नरेंद्र, डॉ अंबेडकर के सामाजिक विचार एवं दर्शन, पेज–119
[77] वही।
[78] वही।

बौद्ध धर्म वर्तमान की बात करता है, मानवीय व्यवहार में बंधुत्व करूणा एवं समतामूलक समाज को स्थापित करता है।

मैंने अपने शोध के दौरान पाया कि बहुत से लेखक जैसे नन्दू राम, एलिनोर जेलिएट, गेल ओमवेट, क्रिस्टोफ जेफरले इस धर्मान्तरण को राजनीतिक और सामाजिक उपेक्षा से प्रेरित मानते है क्योंकि हिंदू धर्म के सवर्ण जो कि शासक वर्ग थे उनको दलितों और अछूतों के समानता और अधिकार से विशेष सरोकार नहीं था। वे केवल इन लोगों की बातें तो करते थे लेकिन किसी भी तरह की सशक्तिकरण के लिए जमीनी कार्यवाही नही किये। डॉ अम्बेडकर अब तक आश्वस्त हो गये थे कि हिन्दू धर्म के अन्तर्गत दलित केवल वोट बैंक बनकर रह जायेंगे, समाज में इनकी स्थिति गुलामों से भी बदतर बनी रहेगी, आजादी का इनके लिए कोई मायने नहीं रह जायेगा। डॉ अम्बेडकर ने कहा था कि अश्पृस्य को धर्म की उतनी ही आवश्यकता है जितनी भारत को स्वराज की आवश्यकता है। धर्मान्तरण और स्वराज का अन्तिम उददेश्य स्वतन्त्रता प्राप्त करना है।[79] डॉ अम्बेडकर ने धर्मान्तरण के लिए दो दृष्टिकोणों पर विचार किया—समाजिक तथा धार्मिक और भौतिक तथा आध्यात्मिक। पहले समाजिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत उन्होंने यह बताया कि हिन्दू धर्म के अन्तर्गत अस्पृश्य चाहे अपने को कितना भी ऊपर उठाने की कोशिश करें, बराबरी का दर्जा प्राप्त करना चाहे, उन्हें द्विजजनो द्वारा अपमान और तिरस्कार ही मिलेगा। चूंकि हिंदू धर्म का मूल ही असमानता, जाति प्रथा और वर्ण व्यवस्था है अतः यह कभी भी आध्यात्मिक सुख नहीं दे सकता। यह पाखंड है। हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता स्थाई है, स्पृश्य और अस्पृश्य का संघर्ष नित्य का है।[80] धर्म आध्यात्मिक कल्याण के लिए होता है। व्यक्ति का कल्याण और विकास ही धर्म का सही उद्देश्य होना चाहिए। लेकिन हिंदू धर्म वर्ग संकल्पना पर बनाया गया हैं, एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से कैसा व्यवहार हो यह नहीं सिखाता है। मनुष्य के लिए भौतिक स्वतंत्रता के साथ साथ मानसिक स्वतंत्रता की आवश्यकता है। मन की स्वतंत्रता किसी के अस्तित्व की पहचान है जो हिन्दू धर्म में है ही नही। धर्मांतरण इसलिए आवश्यक है कि बौद्ध धर्म हमें हर तरह की स्वतंत्रता

---

[79] BAWS 17[3] page- 136
[80] सोनटक्के यशवंत ,बाबासाहेब डॉ अंबेडकर के विचार, पेज–323

देगा, भावी पीढ़ियो का उद्धार का मार्ग प्रशस्त करेगा। नैतिक मूल्य पर आधारित धर्म बौद्ध धम्म ही है और सामान्य व्यक्ति की अच्छाई और खुशहाली के लिए कैसा कार्य करना चाहिए इसकी शिक्षा देता है।

डॉ अंबेडकर ने विश्व के सभी धर्मो का गहन अध्ययन किया। अध्ययनोपरांत उन्होंने पाया कि बौद्ध धर्म सबसे ज्यादा तार्किक, वैज्ञानिक, और प्रेम करूणा पर आधारित धर्म है। बौद्ध धर्म एक साथ तीन सिद्धान्त प्रतिपादित करता है, जो कोई भी अन्य धर्म नही करता। बौद्ध धम्म प्रज्ञा (अंधविश्वास और देवी चमत्कार के विरूद्ध समझ) की शिक्षा देता है। यह करूणा (प्रेम) की शिक्षा देता है। यह समता की शिक्षा देता है।[81] इस धरती पर अन्य सभी धर्म ईश्वर आत्मा या मरणोपरांत जीवन की चिंता में लिप्त है। केवल बुद्ध ने ही मनुष्य के इसी जीवन के कल्याण, सुख और प्रगति की बात की है। बौद्ध धर्म अनिश्वरवादी अनात्मवादी धर्म है। न तो ईश्वर न ही आत्मा समाज को बचा सकता है केवल मानव से मानव का प्रेम ही शाश्वत है।

डॉ अंबेडकर ने नागपुर में धम्म दीक्षा कार्यक्रमों में अपनें लोगों को 22 प्रतिज्ञाओं का संकल्प करवाया। जिसमें हिन्दू धर्म, देवी देवताओं, कर्म कांड का त्याग करना और बौद्ध धम्म ही सधम्म है। इसकी प्रतिज्ञा करवाया। डॉ अंबेडकर ने इस अति हर्षित और भावुक क्षण पर अपील की कि बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति और भूमि से उपजा है। मेरे इस धर्मांतरण से इस देश की परम्परा, संस्कृति और इतिहास को ठेस नहीं पहुंचेगी। जो धर्म विषमता और शोषण के लिए था मैंने उस पुराने धर्म को छोडकर नया पुर्नजन्म लिया है। मैं बुद्ध के आष्टांगिक मार्ग का कड़ाई से पालन करूंगा। बौद्ध धर्म उत्कृष्ट धर्म है और प्रज्ञा शील ,करूणा इन तीन तत्वों के मार्ग दर्शन के अनुसार मेरी जीवन होगा। सर विलियम हंटर ने 1881 में भविष्यवाणी की थी भारत में बौद्ध धम्म के पुर्नजीवन की सम्भावनाए है। उनकी इस भविष्यवाणी को डॉ अंबेडकर ने पूरा किया।

---

[81] BAWS-17[3], page- 515

डॉ अंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार किया जाना देखा जाए तो दलितों को अधिकार स्वतंत्रता प्रदान करने के साथ–साथ उन लोगों के सशक्तिकरण के लिए भी था। यह मानववाद से प्रेरित धर्म है। मानव प्रेम ही इस धर्म का सार है। डॉ अंबेडकर बौद्ध धर्म को मिशनरी धर्म के रूप में भारत में पुनः स्थापित करना चाहते थे। उनका मानना था कि बौद्ध भिक्खु संख्या में कम तथा उच्च शिक्षित हों। ईसाई धर्म के पादरी जैसी विशिष्टता होनी चाहिए, जिस प्रकार क्रिश्चियन धर्म शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के माध्यम से एशिया में प्रसारित हुआ वैसे ही बौद्ध भिक्षुओं को भी समर्पित और कर्तव्यनिष्ठ होना होगा। करीब दो हजार वर्ष पहले जिस धर्म का इतना व्यापक रूप से पूरे भारत एंव मध्य एशिया, चीन तथा पूर्व एशिया में प्रसार हुआ, उसमें जरूर कुछ क्रांतिकारी तत्व होगें। जहां ब्राह्मणवाद के उदय ने भारत में बौद्ध धम्म को नष्ट किया मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद वहीं भारत पर मुस्लिम आक्रमण द्वारा विहारों को बर्बाद किया गया, भिक्खुओं का कत्ल किया गया। जिसके कारण भारत देश से बौद्ध धम्म विलुप्त होने की स्थिति में आ गया। जो भी बौद्ध भिक्खु भागने में सफल हुए उन्होने पूर्वी एशिया मंगोलिया, चीन, जापान आदि देशों में इस धर्म को बचाए रखा।

डॉ अंबेडकर के अनुसार प्रचार प्रसार द्वारा धर्म का फैलाव होता है। बौद्ध भिक्खुओं को अपने को आम जनता के बीच जाकर धर्म को प्रचारित करना चाहिए। बौद्ध विहार, विद्यालय एंव स्तूपों का निर्माण बड़े पैमाने पर करना होगा। इसाई मिशनरी की तरह बौद्ध संघ बौद्ध भिक्खु भी समाज सेवा से जुड़े सामाजिक कार्यकर्ता प्रचारक बने। देखा जाए तो डॉ अंबेडकर ने एक विधिवत बौद्ध ग्रंथ तैयार किया था तथा उन सारी बातों पर अपने विचार दिए जिससे बौद्ध धर्म का पुनः प्रचार प्रसार व्यापक रूप में हो। **बुद्ध और कार्ल मार्क्स**, **भगवान बुद्ध और उनका धम्म** एंव **प्राचीन भारत में कांति और प्रतिक्रांति** जैसे ग्रंथ बौद्ध धर्म को पूर्ण रूप से समझने के लिए उपयोगी होगा।

डॉ अंबेडकर पर लगाए जाने वाले सारे आरोप कि धम्म परिवर्तन उन्होने राजनीति, सामाजिक शक्ति एंव सता प्राप्त करने के लिए की। दूसरा आरोप यह भी लगा कि उन्होने हिंन्दुओं को विभाजित किया घृणा, अशांति एंव विद्रोह फैलाया।

हिन्दू महासभा एंव अन्य हिन्दूवादी धार्मिक संगठन धर्मांतरण से सख्त नाराज थे। हिन्दू महासभा को यह डर था कि बौद्ध धर्मांतरण से हिन्दुओं की जनसंख्या कम न हो जाए, जिसका असर इलेक्टोरल पोलिटिक्स पर भी होगा।[82] परंपरागत बौद्ध भिक्षु डॉ अंबेडकर के प्रति नाराज रहते है क्यो कि उनका आरोप है कि डॉ अंबेडकर द्वारा बनाया हुआ नवयान बौद्ध आंदोलन आध्यात्मिक उत्थान के लिए नहीं वरन राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए था।[83].

डॉ अंबेडकर के मरणोपरांत बौद्ध आंदोलन कैसे लोगों के हाथों में आ गया जो केवल व्यक्तिगत फायदे एंव राजनीतिक स्वार्थ के लिए ही बौद्ध बने रहते है। इन तथाकथित बौद्ध दलित नेताओं ने डॉ. अंबेडकर के विचार को सबसे ज्यादा चोट पहुंचाए है, जिससे बौद्ध धर्म के प्रचार का विस्तार नहीं हो पाया। डॉ अंबेडकर का धर्म परिवर्तन न तो आकस्मिक था और नही राजनीतिक था, न ही आर्थिक लाभ के लिए था। उनके अनुसार भौतिक उपलब्धियों की अपेक्षा आत्म सम्मान अधिक महत्वपूर्ण है। हमारा संघर्ष इज्जत, आत्मसम्मान के लिए है न कि मात्र आर्थिक प्रगति के लिए।[84] डॉ अम्बेडकर कानूनी अधिकार से ज्यादा जरूरी सामाजिक अधिकार को मानते थे एवं सामाजिक समानता न्याय को स्थापित करना चाहते थे।

निःसन्देह बौद्ध आन्दोलन के अन्तर्गत खामियां आयीं है इसका व्यापक प्रचार प्रसार नहीं हो पाया जैसा डॉ अम्बेडकर की प्रबल इच्छा थी कि प्रबुद्ध भारत बने। इस आन्दोलन को सफल एवं संचालित रखने के लिए दलित बुद्धिजीवियों,बौद्ध भिक्क्षुओं, बौद्ध विद्वानों और शिक्षक उपासकों को अपने जीवन में रोजाना धर्म की विवेचना करनी चाहिए। डॉ अम्बेडकर के अनुसार दलित समाज के ज्ञानी पुरूषों का यह कर्तव्य है कि वे बौद्ध धम्म एवं उसके सिद्धान्तों की व्याख्या करना। यदि धम्म के ग्रन्थों से सम्बन्धित अच्छे विद्वान नहीं होंगे तो धर्म प्रायः नष्ट हो जाता है। बौद्ध धर्म का प्रसार महाराष्ट्र के दलित जातियों में मुख्यतः महारों में सबसे ज्यादा रहा वहां बौद्ध धर्म एवं संस्थाओं का अच्छा प्रचार प्रसार हुआ ।

---

[82] Jafferlot Christophe, Dr. Ambedkar and untouchability, page 125

[83] जाटव डी आर, डॉ अंबेडकर के आलोचक, पेज 76

[84] वही

निष्कर्षतः डॉ अंबेडकर आधुनिक युग के उन विरले महापुरूषों में हैं जिन्होने अपने समय एवं समाज की स्थापित व्यवस्था एवं वैचारिकी की न तो अधीनता स्वीकार की और न ही उनसे समझौता किया। वे परंपरागत रूढिवादी समाज की अन्याय एवं शोषणकारी शक्तियों के विरूद्ध जीवन पर्यंत संघर्ष करते रहे। संविधान का निर्माण कर उन्होने एक बेहतर युग एवं बेहतर समाज की आधारशिला रखी। भारतीय महिलाओं के लिए हिन्दू कोड बिल का निर्माण कर परंपरात्मक हिंदू समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किए। शिक्षा को वे सर्वांगीण विकास के लिए महत्वपूर्ण मानते थे। डॉ अंबेडकर ने बौद्ध धर्म को वैज्ञानिक, बौद्धिक एवं व्यवहारिक माना क्योंकि सैद्धांतिक रूप से यह आनुभाविक और परिक्षणीय है। बौद्ध धर्म में न्याय आधार है, एवं नैतिकता इसको निर्देशित करती है।

अध्याय-तृतीय
डॉ. अंबेडकर के राजनीतिक विचार एवं प्रभाव

अध्याय–तृतीय

डॉ. अंबेडकर के राजनीतिक विचार एवं प्रभाव

डॉ अंबेडकर के संपूर्ण विचारों की प्रतिध्वनि राजनीतिक है। उनका राजनीतिक विचार एक ऐसे राजनीतिक व्यवस्था पर जोर देता है, जो सामाजिक न्याय की स्थापना तथा मानवाधिकार की रक्षा के प्रति समर्पित है। डॉ अंबेडकर राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति को ही हर वर्ग का अंतिम लक्ष्य मानते थे। क्योंकि शासक वर्ग अपने हितों को साधने में तथा समाज की उन्नति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। बिना सत्ता प्राप्त किए भारतीय परिवेश में अस्पृश्य समाज का उत्थान संभव नहीं था। एक ऐसा राजनीतिक तंत्र जो सबल वर्गों के शोषण एवं अन्याय से निर्बल वर्गों को सुरक्षा प्रदान करता हो, साथ ही निर्बल वर्गों के लिए विशेष संवैधानिक सुरक्षा तथा सुविधा का प्रावधान भी करता हो जिससे निर्बल, कमजोर, हाशिए पर पड़े लोगों की स्थिति में सुधार हो और वे राष्ट्र समाज के विकास में भागीदार बन पाएंगे। डॉ अंबेडकर ने भारतीय राजनीतिक के हर एक पहलू पर अपने विचार रखे। डॉ अंबेडकर के अनुसार ''हमें (अस्पृश्य, दलित) अपना रास्ता स्वयं बनाना होगा और स्वयं की राजनीतिक शक्ति से शोषितों की समस्याओं का निवारण हो सकती है, उनका उद्धार समाज में उनका उचित स्थान पाने में निहित है।'' राष्ट्र, राष्ट्रवाद, अधिकार, लोकतंत्र, संविधान राजनीतिक दल, आरक्षण, भारत विभाजन इन सभी विषयों पर डाॅ. अंबेडकर के विचारों का क्रमबद्ध विश्लेषण इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। राजनीति डॉ अंबेडकर के बहुआयामी व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण भाग था। डॉ अंबेडकर द्वारा दिए गए तमाम व्याख्यानों में एक तिहाई से भी ज्यादा यानि कि 36 फीसदी राजनीतिक मामलों से जुड़े थे।[1] गोलमेज सम्मेलन (1930) में भाग लेने से जीवन के अंतिम वर्षों तक डॉ अंबेडकर राजनीतिक रुप से सक्रिय रहे तथा विभिन्न विषयों पर विचार दिए। सक्रिय राजनीति में भाग लेते हुए उन्होने अपनी पार्टी का गठन किया। चुनाव लड़ना, मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा मुहैय्या कराना, स्त्रियों को प्रसूति सुविधायें प्राप्त करवाने का नियम बनवाया।

---

[1] जाधव, नरेंद्र, डॉ. अंबेडकर के राजनीतिक विचार, पेज–21

भारतीय राजनीति को सर्वसमावेशी बनाने के लिए डॉ अंबेडकर ने संविधान का निर्माण किया।

डॉ अंबेडकर समाज के वंचित वर्गों के राजनीतिक अधिकार के लिए सदा सक्रिय रहे। उनके राजनीतिक अधिकार के लिए दृढ़ थे। डॉ अंबेडकर ने कहा था 'अगर स्वराज आ रहा है तो हमें इसमें अवश्य ही समान राजनीतिक अधिकार मिलना चाहिए।[2] डॉ अंबेडकर ने बहिष्कृत वर्ग एवं अछूतों की एकता पर बल दिया जो कई उपजातियों में बंटे हुए थे जिसके कारण ये वर्ग राजनीतिक रुप से सशक्त नही हो पाया था।

डॉ.अंबेडकर के राजनीतिक विचार

राष्ट्रवादः डॉ अंबेडकर के अनुसार आत्मनिर्णय का सिद्धान्त समान आदर्श और समान प्रयोजन वाले लोगों की इच्छा व्यक्त करता है जिस पर बाह्य दबाव न हो। इसकी राजनीतिक हैसियत चाहे स्वतंत्र हो या परस्पर निर्भर या संसार के अन्य लोगों के संघ से मिलकर बने इसको राष्ट्रवाद कहते हैं।[3] डॉ अंबेडकर मानते थे कि राष्ट्र स्वयं कुछ नहीं होता उसे बनाया जाता है। वहां के नागरिक राष्ट्र का निर्माण करते हैं इसलिए वे यह मानते थे कि एक समुदाय विशेष का दमन और पृथक्करण राष्ट्र निर्माण का कोई तरीका नहीं है। संघीय सरकार में राष्ट्र का उदय हो सकता है डॉ अंबेडकर का ऐसा मानना था। जिसमें सभी नागरिकों की समान भागीदारी हो। सही मायने में डॉ अंबेडकर सच्चे देशभक्त और राष्ट्रवादी थे। वे संपूर्ण भारत एवं भारतीयों की प्रगति एवं विकास में यकीन रखते हैं ना कि कुछ ही लोगों की स्वतंत्रता एवं स्वराज। स्वराज के स्थान पर भारत के लिए राष्ट्रीय लोकतंत्र अधिक उपयुक्त है। अतः लोकतंत्र हासिल करने के लिए निरंतर संघर्ष करते रहना चाहिए।[4]

---

[2] वही पेज–93

[3] बा.अ.सं.वा.–18 पेज–31

[4] जाटव डॉ डी आर, डॉ अंबेडकर एक प्रखर विद्रोही, पेज–93

डॉ. अंबेडकर के लोकतंत्र संबंधी विचार

डॉ अंबेडकर के अनुसार लोकतंत्र समानता का दूसरा नाम है। आधुनिक लोकतंत्र का उद्देश्य केवल तानाशाह को नियंत्रित करना ही नहीं, अपितु लोगों का कल्याण करना भी है।[5] डॉ अंबेडकर के अनुसार लोकतंत्र द्वारा लोगों के आर्थिक और सामाजिक जीवन में बिना रक्तपात के क्रान्तिकारी परिवर्तन किऐ जाते हैं।[6] यह समाज का सांगठनिक स्वरूप है। लोकतंत्र के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं, पहला समाज को वर्गों में विभक्त न किया जाए, दूसरा लोगों और वर्गों की सामाजिक प्रवृत्ति जो निरंतर समायोजन और सहयोजन को तत्पर हो।[7] डॉ अंबेडकर लोकतंत्र को समाज के सभी वर्गों को साथ–साथ जीने का तरीका मानते थे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के प्रति आदर तथा सम्मान का भाव हो। डॉ अंबेडकर की लोकतंत्र में अगाध आस्था थी क्योंकि वे मानवीय स्वतंत्रता और गरिमा के लिए लोकतंत्र को आवश्यक मानते थे। उनके लिए लोकतंत्र का आशय मात्र औपचारिक या राजनीतिक नहीं था क्योंकि भारतीय समाज श्रेणीगत विशेषाधिकार पर आधारित जाति व्यवस्था से ग्रस्त था। इस जाति व्यवस्था में दलितों की स्थिति अमानवीय थी। इसलिए डॉ अंबेडकर ने वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था के समूल विनाश के लिए आजीवन प्रयत्न किया, क्योंकि उनका मानना था कि जबतक समाज में छुआछूत और जाति व्यवस्था प्रचलित है तबतक एक व्यक्ति एक मत का कोई अर्थ नही रह पाएगा । इसलिए डॉ अंबेडकर के लिए लोकतंत्र का आशय स्वतंत्रता के साथ समानता एवं बंधुत्व के प्रयोग से है। डॉ अंबेडकर ने महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए हिन्दू कोड बिल का समर्थन किया। श्रमिकों के जीवन के उत्थान के लिए अनेक प्रयास किए जिसमें खोती प्रथा के खिलाफ आंदोलन सबसे महत्वपूर्ण है।

खोती प्रथा मुंबई प्रांत के कोंकण क्षेत्र में एक किस्म की जमींदारी प्रथा प्रचलित थी। किसानों का जमींदारों द्वारा शोषण किया जाता था जिनमें ज्यादातर निम्न जाति के थे। खोती प्रथा के खिलाफ डॉ अंबेडकर ने तमाम समुदायों के

---

[5]बा.अं.सं.वां. – 17 (III), पेज– 474
[6]बा.अं.सं.वां. – 17 (III), पेज– 475
[7]बा.अ.सं.वा. खण्ड–8, पेज–284

किसानों की अनेक सभाएं आयोजित कर एक जोरदार आंदोलन छेड़ दिया। खोती प्रणाली के तहत किसानों के हितों की सुरक्षा के लिए कानूनी प्रावधान होना चाहिए।

इसके साथ ही श्रमिकों के उत्थान के लिए अनेक प्रयास किए। 1930 के दशक में डॉ अंबेडकर एक प्रमुख श्रमिक नेता के रूप में जाने जाते थे। डॉ अंबेडकर ने सन् 1934 में बांबे म्यूनिसिपल वर्क्स यूनियन के अध्यक्ष के तौर पर इस क्षेत्र में गतिविधियां शुरू की और बाद में उन्होंने सन 1936 में इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी नामक एक राजनीतिक दल बनाया। डॉ अंबेडकर ने मजदूरों को गुमराह करने के लिए कम्यूनिस्टों की कड़ी आलोचना की।

उनके लिए लोकतंत्र का अभिप्राय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तक सीमित नहीं थी अपितु समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उसकी न्यूनतम आवश्यकताएं प्रदान करने की थी मतलब रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा एवं स्वास्थ्य। इसलिए डॉ अंबेडकर कल्याणकारी राज्य का समर्थन करते थे।[8] डॉ अंबेडकर मानते थे कि लोकतंत्र चार स्तंभों पर निर्भर रहता है :–

1. व्यक्ति अपने आप में एक सिद्धि है।
2. व्यक्ति के कुछ अहरणीय अधिकार हैं, जिनकी गारंटी उसे संविधान द्वारा दी जाए।
3. कोई विशेषाधिकार प्राप्त करने की पूर्व शर्त के रूप में किसी व्यक्ति से यह अपेक्षा न की जाए कि वह अपने संवैधानिक अधिकारों में से किसी का परित्याग करे।
4. राज्य दूसरों पर शासन करने के लिए गैर सरकारी लोगों को शक्तियां प्रत्यायोजित न करें।[9]

डॉ अंबेडकर ऐसा लोकतंत्र चाहते थे जो कुछ शर्तों पर आधारित हो। पहला, दलों की आपस में प्रतिर्स्पद्धा सत्ता की प्राप्ति के लिए होनी चाहिए। दूसरा, राजनीतिक जीवन में सदैव एक न्यूनतम सदाचार का पालन करना चाहिए। तीसरा,

---

[8] बा.अं.सं.वा. खण्ड–2, पेज–194
[9] बा.अं.सं.वा. खण्ड–2, पेज–194

आवश्यक शर्तों के हेतु अनेक संस्थाओं का होना आवश्यक है। चौथा, अल्पसंख्यकों के अधिकारों का भी समान महत्व हो। पांचवा, डॉ अंबेडकर निष्पक्ष सिविल सेवा को आवश्यक मानते थे।

डॉ अंबेडकर के लिए लोकतंत्र का अभिप्राय मूलतः सामाजिक आर्थिक लोकतंत्र से है। उन्होंने लोकतंत्र के साथ साथ सामाजिक न्याय स्थापित करने पर बल दिया। इसलिए वर्ग संघर्ष और साम्यवाद के आदर्श के बजाय डॉ अंबेडकर ने लोकतांत्रिक समाजवाद को स्वीकार किया।[10] डॉ अंबेडकर का समाजवाद एक दूसरे के पूरक हैं विरोधी नहीं। फेबियन समाजवाद या राज्य समाजवाद कल्याणकारी राज्य के द्वारा समाजवाद की प्राप्ति का प्रयास करते हैं। डॉ अंबेडकर ने संवैधानिक लोकतांत्रिक सरकार का समर्थन करते हुए कहा कि इसकी सफलता के लिए संवैधानिक नैतिकता की आवश्यकता है। मैंने शोध अध्ययन के दौरान पाया कि डॉ अंबेडकर ने विचार आदर्शवादी एवं व्यवहारिक रूप से भारतीय राजनीतिक–सामाजिक परिप्रेक्ष्य के लिए बहुत ही उपयोगी है। इनके विचारों की उपयोगिता आज भी भारत में उतने ही प्रासंगिक है जितनी उस समय थी।

जाति, वर्ग और लोकतंत्र

भारत में जाति, वर्ग से ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसलिए डॉ अंबेडकर ने समाजवादी एवं साम्यवादी विचारों को महत्व नहीं दिया क्योंकि इन विचार धाराओं में वर्ग है। डॉ अंबेडकर समाज के हिंसक परिवर्तन के विरोधी थे। इसलिए वे मार्क्स के बजाय बुद्ध से ज्यादा प्रभावित थे। भारत के लिए उन्होंने लोकतंत्र का स्पष्ट समर्थन किया तथा यह कहा कि स्वतंत्रता के बाद भारत में राजनीतिक लोकतंत्र स्थापित हुआ है। जबतक सामाजिक, आर्थिक लोकतंत्र स्थापित नहीं होगा, तब तक राजनीतिक लोकतंत्र आंशिक एवं अपूर्ण होगा। स्वतंत्रता के पहले डॉ अंबेडकर ने मजदूरों, दलितों और अछूतों को मिलाकर ब्राह्मणवादी व्यवस्था एवं पूंजीवाद को दलितों का मुख्य शत्रु कहा।[11] डॉ अंबेडकर भारतीय समाज तथा इसमें उपस्थित जातिवाद के दंश से अच्छी तरह वाकिफ थे। इसलिए वे ऐसा लोकतंत्र चाहते थे,

---

[10] सोनटक्के यशवंत, बाबासाहेब डॉ अंबेडकर केविचार, पेज–

[11] गताडे सुभाष, बीसवीं सदी में डॉ अंबेडकर के सवाल,पेज–

जिसमें सभी लोगों को समानता का अधिकार हो। सबको बराबर प्रगति विकास और शिक्षा का अवसर मिले। डॉ अंबेडकर लोकतंत्र को केवल एक प्रशासन की एक व्यवस्था या पद्धति ही नहीं मानते थे बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक माध्यम भी मानते थे। इसलिए वे अब्राहम लिंकन द्वारा दी गई लोकतंत्र की परिभाषा ''लोकतंत्र जनता की, जनता द्वारा, जनता के लिए सरकार है'' संतुष्ट नहीं थे। लोकतंत्र सरकार का एक स्वरूप एवं पद्धति है, जिसके माध्यम से लोगों के सामाजिक आर्थिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए जाते हैं। लोकतंत्र के उद्देश्य और प्राथमिकताओं में समय और समाज के साथ परिवर्तन होता है।[12]

लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें

पहली आवश्यक बात है कि समाज में व्यापक विषमता नहीं होना चाहिए। समाज में दलित पीड़ित वर्ग नहीं होना चाहिए। डॉ अंबेडकर, लिंकन के गर्टिसबर्ग के भाषण का उल्लेख करते हुए लिखते हैं :– ''स्वयं के विरूद्ध विभाजित घर खड़ा नहीं रह सकता है''।[13] इस वाक्य में बहुत गहरा अर्थ समाया हुआ। डॉ अंबेडकर कहते हैं: वर्ग–वर्ग का जो महती भेद है, वर्ग संघर्ष है, वह लोकतंत्र की सफलता के मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा बनता है। इसका कारण स्पष्ट है, लोकतंत्र में दलित पीड़ित के अधिकार छिन जाते हैं। वे भारवाहक बने रहते हैं और जिन्होंने सभी अधिकारों का समुच्चय अपने पास केंद्रीभूत कर लिया है, ऐसे दोनों प्रकार के लोगों को मतदान का समान अधिकार प्राप्त होता है। सुविधा संपन्न वर्ग अधिकतर पीड़ित वर्ग की अपेक्षा संख्या में कम होता है और निर्णय लेने के समय हम बहुमत के सिद्धांत को स्वीकार करने के कारण यदि इस सुरक्षित वर्ग ने सुख सुविधा और स्वेच्छा से अपने अधिकार नहीं छोड़े तो फिर उनमें और निम्न वर्ग में अंतर बढेगा। यह लोकतंत्र के विनाश और किसी राजतंत्र को जन्म देने के लिए जिम्मेदार होगा। सामाजिक असमानता विषमता, वर्ग की असमानता ही लोकतंत्र की असफलता के कारण है।[14] लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक दूसरी बात है। विरोधी या विपक्षी पार्टियों का अस्तित्व। वंश, पंरपरागत सत्ता और तानाशाही के बिलकुल

---

[12] सिंह राम गोपाल, डॉ अंबेडकर का विचार दर्शन,पेज–172

[13] सोनटक्के यशवंत, डॉ अंबेडकर के विचार, पेज–181

[14] वही पेज

विपरीत अर्थ का शब्द है लोकतंत्र। सत्ता रूढ़ पार्टी के निरंकुश सत्ता पर किया गया नियंत्रण।[15] लोकतंत्र में राज्य की सत्ता पर केवल जनमत का ही नियंत्रण रहे वह तत्काल और सतत होना चाहिए। डॉ अंबेडकर के अनुसार लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक तीसरी शर्त है वैधानिक और कामकाज विषय के क्षेत्र में पालन की जाने वाली समानता है। चौथी बात है संविधानात्मक नीति का पालन है। लोकतंत्र यानि स्वतंत्र सरकार अर्थात वह शासनतंत्र जिसमें अधिकाधिक सामाजिक क्षेत्र के लोगों को कानून के हस्तक्षेप के अलावा मुक्तरूप से जीवन जीना आता है और यदि कानून बनाने की जरूरत हुई तो वैसे कानून का पालन किया जाना चाहिए जिसमें जितनी सामाजिक नीति समाज में पैदा होने का विश्वास कानून प्रिय लोगों को होना चाहिए। लोकतंत्र के इस पहलू पर केवल प्रोफेसर लास्की ने ही वक्तव्य दिया है। अपने एक ग्रंथ में वे स्पष्ट रूप से बताते हैं कि लोकतंत्र में नैतिक जीवन गृहित समझा जाता है। सामाजिक नीति के अभाव में लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता वह छिन्न–भिन्न हो जाएगा।[16] डॉ अंबेडकर अपने देश में ऐसा ही अनुभव कर रहे थे। लोकतंत्र के लिए एक और बात है विचार, जनमत। हमारे देश में सामाजिक चेतना का अभाव है। सार्वजनिक विवेक बुद्धि के प्रार्दुभाव से ही अन्याय का खात्मा तथा पीड़ितों को सहयोग के लिए खड़ा रहना पड़ेगा। स्वराज लोकतंत्र का सर्वोच्च्य सिद्धांत है। स्वराज के लिए जरूरी है कि सभी मसलों पर अंतिम निर्णय जन निर्वाचित सदस्यों के द्वारा किया जाए न कि विशेषज्ञों के द्वारा।[17] डॉ अंबेडकर अपने द्वारा लिखित अनेकों ग्रंथ में अपने विचारों को स्पष्ट तरीके से रखते हैं। भारत की राजनीति से संबंधित हर पहलू पर उनकी अपनी सोच थी। समस्याएं और उनका क्या उचित हल हो सकता है। भारतीय सामाजिक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में इसका उन्होंने लिखित चर्चा किया है। उन्होंने लोकतंत्र की असफलता के कारणों एवं भारत में लोकतंत्र का क्या भविष्य है? इसका भी विश्लेषण अपनी रचनाओं में किया है। डॉ अंबेडकर मानते थे कि लोकतंत्र समानता का दूसरा नाम है। ससंदीय लोकतंत्र ने स्वतंत्रता की चाह का विकास किया परंतु समानता के प्रति कोई भी सकारात्मक प्रयास नहीं किया, जिससे स्वतंत्रता ने समानता को पनपने ही नहीं

---

[15] वही पेज–182

[16] बा.अं.सं.वां. (17) (III), पेज – 475

[17] बा.अ.सं.वा. खण्ड–4, पेज–54

दिया।[18] संसदीय लोकतंत्र लोकप्रिय सरकार का ताना बाना होते हुए भी वास्तव में एक वंशानुगत शासक वर्ग द्वारा वंशानुगत प्रजा वर्ग की सरकार है जिसे पावर इलिट वर्ग भी कहा जा सकता है जो शासन करने के लिए ही बने हैं।

लोकतंत्र को यथार्थ बनाने में आवश्यक बातें

डॉ अंबेडकर के विचारानुसार सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हम संवैधानिक रीतियों को दृढ़तापूर्वक अपनाएं। सविनय अवज्ञा असहयोग और सत्याग्रह की रीति का परित्याग करें।[19] डॉ अंबेडकर ने जॉन स्टुअर्ट मिल के बातों का उद्धरण देते हुए कहा कि मिल ने जो सावधानी बरतने के लिए कहा कि ''जो लोकतंत्र को बनाए रखने में रूचि रखते हैं वह यह है 'किसी भी महान व्यक्ति के चरणों में अपने स्वातंन्त्र्य को चढ़ा न दें या उसे वे शक्तियां न सौंपे जो उसे उन्हीं की संस्थाओं को मिटाने की शक्ति दे। महान व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञ होने में कोई बुराई नहीं है पर कृतज्ञता की सीमा होनी चाहिए।[20] आयरलैंड के डेनिय ओ कोनैल ने भी कहा है कि अपने सम्मान को खोकर कोई पुरूष कृतज्ञ नहीं हो सकता, अपने सतीत्व को खोकर कोई स्त्री कृतज्ञ नहीं हो सकती और अपने स्वातंन्त्र्य को खोकर कोई राष्ट्र कृतज्ञ नहीं हो सकता।[21]

डॉ अंबेडकर नायक पूजा खासकर राजनीति में, को पतन का जरिया मानते थे। जो अंततः तानाशाही का एक निश्चित मार्ग है। अंधभक्ति लोकतंत्र के लिए अभिशाप है। डॉ अंबेडकर के मन में हमेशा ये आशंका बना रहा कि क्या भारत में लोकतंत्र अपने मूलस्वरूप में स्थापित हो पाएगा। उनका मानना था कि भारत में लोकतंत्र एक छोटे पौधे के समान है। सामाजिक एकता के बिना इस पौधे की जड़े मतबूत नहीं की जा सकती। यदि सामाजिक एकता नहीं हो सकी तो यह लोकतंत्र का पौधा गर्मी में आए तूफान के झटके में ही उखड़ जाएगा।[22] भारतीय भूमि स्वभावतः ही अप्रजातंत्रात्मक है और यहां प्रजातंत्र केवल उपरी आवरण है। हिन्दू

---

[18] बा.अ.सं.वा. खण्ड–18, पेज–97–98
[19] सोनटक्के यशवंत, बाबा साहेब डॉ अंबेडकर के विचार, पेज–196
[20] सोनटक्के यशवंत, बाबा साहेब डॉ अंबेडकर के विचार, पेज–196
[21] सोनटक्के यशवंत ,बाबा साहेब डा0 अंबेडकर के विचार, पेज–196
[22] वही, पेज–197

समाज व्यवस्था आलेकतांत्रिक है, वर्ण और जातियों में और जातियों, उपजातियों ने समाज का विभाजन यह केवल सिद्धांत ही नहीं बल्कि आदेश एवं जीवन शैली है। लोकतंत्र भारत में बौद्ध काल से ही प्रचलित था, गणतंत्रात्मक शासन के भारत में प्राचीन काल से ही साक्ष्य मिलते है। लोकतंत्र मुख्यरूप से एक सह जीवन का तरीका है। लोकतंत्र की जड़ें लोगों की सहजीवन की शर्तें, जिनसे समाज बनता है, उन सामाजिक संबंधों में खोजनी चाहिए। लोक कल्याण, उद्देश्य एवं चाहत, लोक कल्याण के प्रति निष्ठा, आपसी सहानुभूति, सहयोग ये विशेषताएं जों इस एकता के साथ है प्रशंसनीय है।

डॉ. अंबेडकर के संवैधानिक विचार

संविधान कानून का संग्रह है जो सरकार के स्वरूप, रचनाविधि एवं कार्यों को निर्धारित करता है। सरकार (या कार्यपालिका) के साथ संविधान, राज्य के अन्य निर्णायक अंगों विधायिका एवं न्यायपालिका के स्परूपों का भी निर्धारण करता है। राज्य को संचालित करने वाले अंग विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका, संविधान से ही शक्ति ग्रहण करते हैं। संविधान के स्वरूप एवं उसकी विशेषताओं के संबंध में डॉ अम्बेडकर के विचार निम्न हैः–

डॉ. अंबेडकर के संवैधानिक विचार की पृष्ठभूमि– डॉ अंबेडकर के विचारों में उनकी पश्चिमी शिक्षा एवं बुद्धिमता की स्पष्ट झलक दिखती है। उन्होंने लन्दन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स एण्ड पालिटिकल साइंस से अर्थशास्त्र में ही एम.एस.सी (1921) एवं डी.एससी.(1923) की उपाधियां अर्जित कीं।[23] एक अस्पृश्य जाति में पैदा होने के कारण अम्बेडकर को समाज में अनेक प्रकार के तिरस्कार एवं अपमान सहन करने पड़े। यथार्थ एवं कटु अनुभवों के दौरान ही अम्बेडकर के जीवन का लक्ष्य निर्धारित हुआ। उन्हें सोचने एवं कार्य करने की एक खास दिशा मिली। छुआछूत के कलंक को मिटाना, भारत के करोड़ों दलितों को सामाजिक एवं धार्मिक दासता से मुक्ति दिलाना, उनमें शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार करना, उनमें जागृति एवं आत्मविश्वास का भाव पैदा करना तथा उन्हें खोये हुये सम्मान एवं अधिकारों की

[23] jaffrelot Christophe , Dr.Ambedkar and untouchability, Page-29

प्राप्ति के लिये संघर्ष हेतु एकजुट करनाः संक्षेप में भारत के करोड़ों दलितों को शास्त्रीय निर्योग्यताओं, सामाजिक उत्पीड़नों एवं आर्थिक शोषणों से मुक्ति दिलाना डॉ अम्बेडकर के जीवन का लक्ष्य बना। जो खुद गुलाम है वह किसी दूसरे को गुलामी से आजाद नहीं करा सकता। डॉ अंबेडकर ने आजीविका के लिये वकालत का पेशा चुना और नौकरी छोड़ दी। वकील के रूप में अम्बेडकर को जहां काम करने की स्वतंत्रता थी वहीं दलितों के वैधानिक अधिकारों की पैरवी करने की सहूलियत भी थी। वे अब दलितों के मुक्ति–संघर्ष में खुलकर सक्रिय रूप से भाग ले सकते थे और उनके सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों की अगुआई कर सकते थे। सार्वजनिक जलाशय से दलितों को पानी लेने का मसला हो, मंदिर प्रवेश का मामला हो, खोती व्यवस्था समाप्त करनी हो, श्रमिकों की मजदूरी और उनकी कार्य–दशाओं में सुधार का सवाल हो, अस्पृश्यता निवारण तथा दलितों को वैधानिक अधिकार व संरक्षण प्रदान किये जाने का प्रश्न हो, न्यायालय में पैरवी करने से लेकर बंबई एसेम्बली में सदस्य के रूप में भाग लेते हुये, साउथ बोरो समिति के सम्मुख बयान देते हुये, साइमन कमीशन के सम्मुख दलितों के हितों के लिये संघर्ष करते हुये, गोलमेज सम्मेलनों में दलितों के प्रवक्ता के रूप में बोलते हुये, वायसराय कौंसिल में लेबर मेम्बर के रूप में कार्य करते हुये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से डॉ. आम्बेडकर के कानूनी एवं संवैधानिक विचार शनैः शनैः अधिक स्पष्ट और मुखर होते गये।

जब भारत का आजाद होना लगभग तय हो गया और संविधान–निर्माण के लिये संविधान सभा के गठन का सवाल उठा तो अंबेडकर के सामने एक कठिन समस्या उपस्थित हुई। उनकी समस्या यह थी कि वे किस प्रकार संविधान सभा में प्रवेश पायें। उस समय देश में कांग्रेस पार्टी की लोकप्रियता थी। कांग्रेस द्वारा विरोध किये जाने पर संविधान सभा में सदस्य के रूप में चुना जाना बहुत कठिन था। अम्बेडकर कांग्रेस और गांधी के मुख्य विरोधी थे। आम कांग्रेस जनों में उनकी छवि यदि गद्दार की नहीं तो देश भक्त की भी नहीं थी। वे अंग्रेजों के पिट्ठू और मुस्लिम लीग के रहनुमा कहलाते थे किन्तु यह स्थिति सदा नहीं बनी रही। राजनीतिक परिदृश्य में बदलाव के साथ डॉ अम्बेडकर के रूख में भी बदलाव आया। तदनन्तर

उनके प्रति लोगों में व्याप्त भ्रांति भी दूर हुई और वे एक अग्रणी राजनेता, समाज सुधारक तथा महान देशभक्त के रूप में माने जाने लगे।

वैसे यह जानते हुये भी कि डॉ अंबेडकर जिन्ना की तुलना में कांग्रेस और उनके कहीं अधिक मुखर विरोधी थे गांधी ने उनको पहचानने और उनका मूल्यांकन करने में कोई गलती नहीं की। ब्रिटिश शासन के दौरान भी गांधी को डॉ अंबेडकर की योग्यता और देशभक्ति पर पूरा भरोसा था। इसी प्रकार कटु आलोचक होने के बावजूद अंबेडकर गांधी का बहुत सम्मान करते थे। पूना पैक्ट उनके इसी आपसी समझ और विश्वास का परिणाम था। बाद के घटनाक्रमों से अंबेडकर के प्रति गांधी के पुख्ता विश्वास की अभिपुष्टि हुई।

कैबिनेट मिशन की सिफारिश के आधार पर अविभक्त भारत की संविधान सभा के लिये जुलाई 1946 में चुनाव सम्पन्न हुआ। इसमें कुल 296 सदस्य थे जो प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा एकल संक्रमणीय मतदान के द्वारा चुने गये। डॉ. अम्बेडकर मुस्लिम लीग के समर्थन पर बंगाल से संविधान सभा के सदस्य चुने गये। ब्रिटिश संसद ने 15 जुलाई 1946 को 'भारतीय स्वाधीनता एक्ट' पारित किया। परिणामस्वरूप संविधान सभा अब देश का शासन चलाने के लिये संप्रभुता सम्पन्न हो गई किन्तु देश के विभाजन के साथ बंगाल का भी विभाजन हो गया। जिसकी वजह से अनेक सदस्यों सहित डॉ अंबेडकर को भी संविधान सभा की सदस्यता खोनी पड़ी किन्तु इस दौरान डॉ अंबेडकर के रूख में परिवर्तन तो आया ही साथ ही संविधान सभा में उनकी भूमिका भी बहुत ही साकारात्मक रही। संविधान सभा में डॉ अंबेडकर ने कांग्रेस के साथ रचनात्मक सहयोग प्रदर्शित किया। जिसके कारण विभाजनोपरांत संविधान सभा में उनके पुनर्प्रवेश का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस सन्दर्भ में 15 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा में डॉ अंबेडकर द्वारा दिया गया वक्तव्य बहुत कारगर सिद्ध हुआ। 13 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा में पंडित नेहरू ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव में स्वतंत्रता, संप्रभुता सम्पन्न गणराज्य भारत का लक्ष्य घोषित किया गया। पुरूषोत्तम दास टण्डन ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। 15 दिसम्बर 1946 को डॉ एम.आर. जयकर ने नेहरू के प्रस्ताव में संशोधन प्रस्तुत करते हुये कहा कि इस प्रस्ताव को तब तक पारित न किया जाये जब तक

कि मुस्लिम लीग और देशी रियासतों के प्रतिनिधि संविधान सभा की बैठक में सम्मिलित नहीं होते। फ्रैंक एन्थोनी ने कतिपय वैधानिक व तकनीकी मुद्दों के आधार पर जयकर द्वारा प्रस्तुत संशोधन से सहमति जताई किन्तु कांग्रेसियों सहित संविधान सभा के अधिकांश सदस्य नेहरू द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के पक्ष में थे। डॉ अंबेडकर ने नेहरू के भाषण की प्रशंसा की। संविधान निर्माण के लिए डॉ अंबेडकर का नाम नेहरू को गांधी जी द्वारा प्रस्तावित किया गया था। डॉ अंबेडकर कांग्रेस के सहयोग से संविधान सभा में गए लेकिन किसके कहने पर उन्हे चुना गया इसमें स्पष्टता नही है।

डॉ अंबेडकर ने पंडित नेहरू के प्रस्ताव के दूसरे भाग को जिसमें देश के भावी संविधान के उद्देश्यों की कल्पना की गई थी को अविवादास्पद किन्तु निराशाजनक निरूपित किया क्योंकि इसमें मौलिक अधिकारों की बात कही गई है किन्तु उन पर अतिक्रमण के विरूद्ध उपचार (रिड्रेस) की कोई व्यवस्था नहीं है। यहां तक कि किसी व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता एवं सम्पत्ति को कानून की उपयुक्त प्रक्रिया अपनाये बिना नहीं लिया जा सकता, जैसे सामान्य सिद्धान्त का भी इसमें उल्लेख नहीं है। डॉ अंबेडकर के अनुसार प्रस्ताव के प्रथम भाग जो भारत को एक संप्रभुता सम्पन्न गणराज्य घोषित करता है जिसमें संप्रभुता जनता में निहित बताई गई है को पारित करना जैसा कि डॉ जयकर ने कहा है कि संविधान सभा में मुस्लिम लीग एवं देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में उचित नहीं है। डॉ अंबेडकर का कहना था कि यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है कि मुस्लिम लीग व देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में संविधान सभा को यह प्रस्ताव पारित करने का अधिकार है या नहीं महत्वपूर्ण तो यह है कि क्या ऐसा करना उचित और बुद्धिमत्तापूर्ण है? आज हम सब राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से विभाजित हैं और परस्पर युद्धरत समूहों में बंटे हुये हैं जिसमें ऐसे एक समूह का नेता मैं भी हूं किन्तु मैं इस बात से पूरी तरह आश्वस्त हॅू कि समय और परिस्थितियों के आने पर भारत को एक होने से विश्व में कोई रोक नहीं सकेगा। मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि भारत के विभाजन के लिये लीग द्वारा

आंदोलन किये जाने के बावजूद किसी दिन मुसलमान यह महसूस करेंगे कि संयुक्त भारत सब के लिये अच्छा है।

डॉ अंबेडकर ने आगे कहा कि शक्ति एक चीज है और बुद्धिमत्ता उससे बिल्कुल भिन्न चीज है। इसलिये इस प्रस्ताव को पारित करते समय यदि हम इस सभा की शक्ति एवं अधिकार की ही बात करते हैं तो यह बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि किसी प्रकार इन विभिन्न खेमों के लोगों को किसी सामान्य निर्णय पर पहुॅचने और एकता की ओर बढ़ने के काबिल बनाया जाये। कठिनाई अंतिम लक्ष्य बिन्दु की नहीं है कठिनाई यह है कि, वहां तक पहुॅचने की शुरूआत कैसे की जाये? इस दृष्टि से यह बहुमत दल की जिम्मेदारी है कि वह अपने विरोधियों को जो उनसे अलग और दूर होना चाहते हैं, को अपने साथ चलने का मौका दें न कि अपनी बहुमत शक्ति के आधार पर उनका दमन करें। जब हम राष्ट्र के भाग्य के निर्धारण के बारे में निर्णय ले रहे होते हैं तो व्यक्तियों, नेताओं और दलों की प्रतिष्ठा का प्रश्न बेमानी हो जाता है। अंबेडकर का कहना था कि मेरी दृष्टि में इस प्रश्न का हल तीन प्रकार से हो सकता है। एक हल तो यह है कि एक पक्ष दूसरे पक्ष के सम्मुख पूर्णतया समर्पण करे, दूसरा तरीका है शांति के लिये दोनों पक्षों के बीच मध्यस्थता (नेगोशिएशन) की जाये और तीसरा व अंतिम मार्ग है, दूसरे पक्ष के साथ खुला युद्ध किया जाये। यदि हम युद्ध का रास्ता अपनाते हैं तो यह युद्ध अंग्रेजों से नहीं वरन् मुसलमानों से अथवा अंग्रेजों और मुसलमानों से संयुक्त रूप से होगा। डॉ अंबेडकर ने एडमंड बर्क के मशहूर वक्तव्य की ओर सदन का ध्यान आकृष्ट करते हैं जो उन्होंने इंग्लैण्ड की संसद में अमेरिका के साथ युद्ध के स्थान पर शांतिपूर्ण समझौते की पेशकश करने के संबंध में दिए थे बर्क का कहना था कि शक्ति का प्रयोग अस्थायी होता है। शक्ति कुछ समय के लिय विपक्षी को पराजित कर सकती है किन्तु यह उसे निरन्तर पराजित किये जाने की आवश्यकता को समाप्त नहीं कर सकती है और एक राष्ट्र जिसे निरन्तर पराजित किये जाने की आवश्यकता हो, को शासित नहीं किया जा सकता। शक्ति के विरूद्ध दूसरी आपत्ति है अनिश्चितता। यदि बल प्रयोग में आपको सफलता नहीं मिलती है तो आपके पास कोई अन्य साधन नहीं बचता। समझौते के प्रयास में असफल होने

पर शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु बल प्रयोग में असफल होने पर समझौते की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। शक्ति और सत्ता कदाचित विनम्रता से क्रय की जा सकती है किन्तु हिंसा या बल प्रयोग में पराजित हो जाने पर वे भीख में नहीं मिलतीं। इस संदर्भ में तीसरी आपत्ति यह है कि युद्ध अथवा बल प्रयोग से जो चीज हासिल की जाती है वह, वह नहीं होती जिसे हम हासिल करना चाहते हैं। युद्ध के दौरान वह बर्बाद व अवमूल्यित हो गई होती है।

डॉ अंबेडकर ने कहा कि यदि कोई व्यक्ति यह सोचता है कि हिन्दु मुस्लिम समस्या बल प्रयोग अथवा युद्ध से हल की जा सकती है जिसमें कि मुसलमानों को उनकी सहमति के बिना बनाये गये संविधान के अधीन रहने के लिये विवश किया जा सके तो यह गलत है क्योंकि ऐसा करने से इस देश को उन्हें निरन्तर पराजित करते रहना पड़ेगा। एक बार की विजय सर्वदा की विजय नहीं होगी। उन्होंने बर्क की इस युक्ति को उद्धृत करते हुये कि ''किसी को शक्ति देना आसान है किन्तु ज्ञान देना कठिन है'' यह सुझाव दिया कि हमें अपने व्यवहार से यह सिद्ध करना चाहिये कि यदि यह सभा संप्रभुता सम्पन्न शक्ति बन जाती है तो वह शक्ति का प्रयोग बुद्धिमत्तापूर्वक करेगी। यही एक मात्र रास्ता है जिसके द्वारा हम देश के सभी वर्गों को एक साथ लेकर चल सकेंगे। इसके अलावा हमें एकता की ओर ले जाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। डॉ अंबेडकर द्वारा राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर कांग्रेस के साथ सहमति तथा संविधान सभा में रचनात्मक सहयोग को दृष्टिगत रखते हुये अतीत में उनसे जो मतभेद थे उन्हें भूलाकर गांधी ने उनकी योग्यता एवं क्षमता का राष्ट्र हित में उपयोग करना श्रेयष्कर समझा। डॉ भीमराव अम्बेडकर, डॉ एम आर जयकर के त्याग पत्र देने से रिक्त हुये स्थान के लिये बंबई से कांग्रेस लेजिस्लेटिव पार्टी के समर्थन द्वारा संविधान सभा के लिये चुने गये । डा अंबेडकर के लिए डॉ राजेंद्र प्रसाद ने अपना मंतव्य दिया था।[24] महात्मा गांधी से परामर्श के उपरांत पंडित नेहरू ने 3 अगस्त 1947 को स्वतंत्र भारत के मंत्री परिषद की घोषणा की जिसमें डॉ भीमराव अंबेडकर को कैबिनेट स्तर का मंत्री बनाया गया।[25] 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। डॉ अंबेडकर पंडित जवाहर लाल नेहरू के मंत्रिमंडल

---

[24] Jefferlot christophe,From untouchables to dalit An essay on Ambedkar movement,page no-100

[25] वही।

में देश के प्रथम कानून मंत्री बने। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राष्ट्रीय नेतृत्व के सम्मुख अहम सवाल यह था कि स्वतंत्र भारत के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक ढॉचे को मूर्त रूप देने के लिये राष्ट्रीय संविधान के निर्माण का गुरूतर दायित्व किसके कन्धे पर रखा जाये। इस समस्या के समाधान के लिये पंडित नेहरू और श्रीमती सरोजनी नायडू एक दिन महात्मा गांधी के पास परामर्श के लिये गये। पंडित नेहरू ने संविधान बनाने के लिये आइवर जेनिंग्स जिन्हें कई एशियाई देशों का संविधान बनाने का अनुभव था का नाम सुझाया। गांधी ने नेहरू के सुझाव को अनसुना करते हुये कहा कि मैं एक भारतीय संविधान विज्ञ को जानता हूॅ जिसका नाम भीमराव राम जी अंबेडकर है को संविधान सभा ने संविधान का मसौदा तैयार करने के लिये जिस सात सदस्यीय समिति की नियुक्ति की घोषणा की, डॉ. अंबेडकर उसके अध्यक्ष बनाये गये। एन. गोपाल स्वामी अय्यर, सैयद मोहम्मद सादुल्ला, अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर, के.एम.मुंशी, बी.एल. मित्तर तथा डी पी खोतान इसके सदस्य थे। बाद में मित्तर के स्थान पर एन. माधव राव तथा खोतान की मृत्यु से रिक्त हुये स्थान पर टी.टी. कृष्णामचारी सदस्य मनोनीत हुये।[26] यद्यपि संविधान की प्रारूप समिति में डॉ अंबेडकर के अतिरिक्त 6 सदस्य थे तथापि संविधान की रचना के दायित्व का निर्वाह मुख्य रूप से डॉ अम्बेडकर ने ही किया। दूसरे शब्दों में डॉ अम्बेडकर स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री ही नहीं अपितु संविधान के प्रमुख शिल्पी भी थे। संविधान सभा के ड्राफ्ट समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ अम्बेडकर ने संविधान का प्रारूप संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ राजेन्द्र प्रसाद को 21 फरवरी 1948 को प्रस्तुत किया। संविधान का प्रारूप राज्य विधान मण्डलों और सामान्य जनता का मत जानने के लिये जारी किया गया। 4 नवम्बर 1948 को डॉ अम्बेडकर ने प्रारूप संविधान को संविधान सभा में विचारार्थ प्रस्तुत किया। इसमें 315 अनुच्छेद व 8 अनुसूचियां थीं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना

हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण, संप्रभुता सम्पन्न, समाजवादी, धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिये तथा उसके समस्त नागरिकों को

[26] जाटव डी आर, डॉ अंबेडकर संविधान के मुख्य र्निमाता, पेज–39

सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा व अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिये तथा उनमें व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता के विकास के लिये दृढ़ संकल्प लेकर अपनी इस संविधान सभा में 26 नवम्बर 1949 को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित व आत्मार्पित करते हैं।

मूल संविधान की प्रस्तावना में समाजवादी एवं धर्मनिरपेक्ष शब्द नहीं थे। संविधान में ये शब्द संशोधन के उपरान्त बाद में जोड़े गये। डॉ अम्बेडकर ने 15 नवम्बर 1948 को संविधान की उद्देशिका में भारतीय शब्द के साथ धर्म निरपेक्ष, संघीय व समाजवादी शब्दों के जोड़े जाने संबंधी एक प्रस्ताव का संविधान सभा में विरोध किया। उनका तर्क था कि ऐसा करने से लोगों की स्वतंत्रता और उनके लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन होगा। सामाजिक संगठन और आर्थिक ढॉचे का स्वरूप क्या हो ? यह तय करने की स्वतंत्रता लोगों को होनी चाहिये जिसे वे अपने मताधिकार के प्रयोग के माध्यम से कर सकते हैं। अम्बेडकर के शब्दों में सविधान का कार्य लोगों को एक खास प्रकार के समाज में बांधकर रखने का नहीं है। संविधान का उद्देश्य राज्य के विभिन्न अवयवों के कार्यों को नियमित करना है। यह किन्हीं विशेष व्यक्तियों या दलों को सत्ता में बैठाने का यंत्र नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि राज्य की नीति क्या हो ? सामाजिक व आर्थिक विषयों में समाज को कैसे संगठित किया जाए यह ऐसे विषय हैं जिन्हें लोगों द्वारा समय व परिस्थितियों के अनुसार तय करना चाहिये। संविधान निर्माण के अपने उददेश्यों को रेखांकित करते हुए डॉ अम्बेडकर अपनी पुस्तक **'व्हाट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव डन टू द अनटचेबल्स'** में डॉ. अम्बेडकर ने यह बताया कि ''यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि प्रत्येक देश में शासित और सताधारी दो वर्ग हुये हैं। इन दो वर्गों में सत्ता के लिये निरन्तर संघर्ष होता रहा है। व्यस्क मताधिकार पर आधारित संविधान के लागू हो जाने मात्र से समाज में स्वशासन व लोकतंत्र की वास्तविक रूप से स्थापना नहीं हो जाती। लोकतंत्र एक ठोस यथार्थ तब बनता है जब सत्ताधारी वर्ग अपनी सत्ता हथियाने की शक्ति खो बैठता है। तात्पर्य यह है कि लोकतांत्रिक संविधान का प्रमुख उद्देश्य सत्ताधारी वर्ग की स्थिति एवं प्रभुत्व को समाप्त करना और उसे सदा

के लिये सत्ता में बने रहने से रोकना है। सत्ताधारी वर्ग का अस्तित्व स्वशासन एवं लोकतंत्र के असंगत है। स्थायी सत्ताधारी वर्ग लोकतंत्र के लिये सबसे बड़ा खतरा है। संविधान का उद्देश्य स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व के सिद्धांतों पर आधारित एक नई सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था की स्थापना करना है जिसमें सत्ता पर किसी वर्ग विशेष का सदा आधिपत्य नहीं बना रहे। प्रत्यक्ष रूप से संविधान का उद्देश्य अपने सभी नागरिकों के लिये सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता तथा व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता सुरिक्षत करना है।

भारतीय संविधान विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का सबसे बड़ा लिखित संविधान है। संविधान सभा के सम्मुख 4 नवम्बर 1948 को डॉ अंबेडकर ने संविधान का जो प्रारूप विचारार्थ प्रस्तुत किया उसमें 20 भाग 315 अनुच्छेद व 8 अनुसूचियां सम्मिलित थीं।[27] संविधान के ड्राफ्ट पर लगभग 8 महीने बहस हुई। इस दौरान इसमें कई संशोधन हुए। 26 जनवरी 1949 को संविधान सभा ने भारत की जनता की ओर से भारत की स्वतंत्रता के घोषणा पत्र के रूप में भारत का संविधान स्वीकार किया और लागू किया। दो वर्ष ग्यारह महीने तथा अठारह दिन के परिश्रम के उपरान्त जो संविधान अंतिम रूप से तैयार होकर कार्यरूप में लागू हुआ। आज भारतीय संविधान 22 भागों में विभक्त है। इसमें 395 अनुच्छेद तथा 10 अनुसूचियां हैं, अब तक इसमें 100 से अधिक संशोधन हो चुके हैं। इसकी विशालता का कारण यह है कि अन्य संविधानों की भांति भारतीय संविधान में केवल शासन के मुलभूत सिद्धांतों तथा संघीय सरकार की रूपरेखा का ही उल्लेख नहीं है अपितु नागरिकता, मौलिक अधिकार, राज्य के नीति–निर्देशक तत्व, शासन की रूपरेखा, संसद और राज्यीय विधान मण्डल, संघीय न्यायपालिका एवं उच्च न्यायालय, सरकार के विभिन्न अंगों के कार्य तथा उनके पारस्परिक संबंध, सेवायें, राजभाषा, अनुसूचित जातियां, आदिम जातियां और अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण तथा मौलिक महत्व के अन्य अनेक विषयों का उल्लेख है।

[27] जाटव डी आर, डॉ अंबेडकर संविधान के मुख्य निर्माता पेज–96

डॉ अम्बेडकर के अनुसार संविधान की रचना के पीछे दो मुख्य उद्देश्य थे :–

1. राजनैतिक प्रजातंत्र के स्वरूप को निश्चित करना।
2. नीति निर्देशक सिद्धांतों को संविधान में समाहित करते हुये यह दर्शाना कि हमारा लक्ष्य आर्थिक प्रजातंत्र है।

भारतीय संविधान की विशेषतायें

जहां तक शासन अथवा राजनैतिक प्रजातंत्र के स्वरूप का प्रश्न है संविधान ने ब्रिटिश संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली को अपनाया है और ऐसा करने में उसने सरकार के उत्तरदायित्व को उसके स्थायित्व की तुलना में अधिक महत्व दिया है। भारतीय संविधान संघीय संविधान है क्योंकि इसमें संघीय संविधानों की भांति दोहरी शासन व्यवस्था है केन्द्र में संघीय सरकार तथा राज्यों में राज्य सरकारें। राज्य सरकारें संविधान द्वारा सौंपे गये विषयों में प्रभुता संपन्न होती हैं। अन्य विषय केन्द्र के अधीन है। यद्यपि प्रकृति में यह संघीय है, किन्तु कतिपय संघीय संविधानों से यह भिन्न है। यह भिन्नता मुख्यतया दो बातों में है। सामान्यतया संघीय संविधानों में दोहरी शासन व्यवस्था के साथ दोहरी नागरिकता भी होती है संघीय नागरिकता एवं राज्य की नागरिकता। भारतीय संविधान में शासन व्यवस्था तो दोहरी है किन्तु नागरिकता एक है। यह भारतीय नागरिकता है। पृथक राज्यों के लिये पृथक नागरिकता नहीं है। प्रत्येक भारतीय के लिये समान नागरिक अधिकार हैं भले ही वह किसी राज्य में निवास करता हो। ऐसा करने से संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों में दोहरी नागरिकता है।

भारत का संघीय संविधान अमेरिका से संघीय संविधान से एक अन्य बात में भी भिन्न है। अमेरिका के गणतंत्रीय शासन को बनाये रखते हुये हर राज्य अपना संविधान बनाने के लिये स्वतंत्र है। साथ ही वहां किसी राज्य के लोग राष्ट्रीय सरकार पर बिना किसी प्रकार निर्भर हुये अपने संविधान में परिवर्तन कर सकते हैं किन्तु भारतीय संविधान में किसी राज्य को अपना पृथक संविधान बनाने एवं उसमें संशोधन करने का अधिकार नहीं है। भारत में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों का

संविधान एक ही है जिसमें से कोई भी बाहर नहीं निकल सकता और सभी को उसके भीतर ही कार्य करना होता है।

भारतीय संविधान की एक अप्रतिम विशेषता यह है कि यह संघीय तो है किन्तु समय और परिस्थिति विशेष में ऐकिक भी हो सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका सहित जितने भी संघीय संविधान हैं वे पूर्णतया संघीय ढांचे में ढले हैं। कैसी भी परिस्थिति हो, वे अपने आकार–प्रकार को नहीं बदल सकते। वे किसी भी हालत में ऐकिक सरकार का स्वरूप ग्रहण नहीं कर सकते। भारतीय संविधान सामान्य परिस्थिति में तो संघीय है किन्तु यदि युद्ध छिड़ जाये तो यह ऐसा बना है कि ऐकिक हो सकता है। यदि राष्ट्रपति इस आशय आपातकाल की घोषणा करें, तो सारा दृश्य ही बदल जाता है और पूरा देश एक राज्य बन जाता है। इस घोषणा के साथ संघ चाहे तो निम्न अधिकार ले सकता है उन विषयों में कानून बनाने का अधिकार जो राज्यों की सूची में हैं। राज्यों को उन विषयों को कार्यान्वित करने संबंधी निर्देश देने का अधिकार जो उनके कार्यक्षेत्र में है। किसी भी अधिकारी को किसी उद्देश्य से कोई सत्ता दिये जाने के अधिकार। संविधान द्वारा प्रदत्त आर्थिक प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार।

भारतीय संविधान की एक अन्य विशेषता उसका लचीला होना है। इसमें दुनिया के अन्य संघीय संविधानों जैसी कठोरता और अतिवैधानिकता नहीं है। इस संविधान में ऐसे विषयों की एक लम्बी सूची है जिनके बारे में संसद को समवर्ती कानून पारित करने का अधिकार है। आस्ट्रेलिया के संघीय संविधान से समवर्ती विषय को लिया गया हैं।

संघीय शासन पद्धति में जो स्वाभाविक कठोरता व अतिवैधानिकता पाई जाती है उसे कम करने के लिये भारतीय संविधान में कुछ अन्य उपाय भी किये गये हैं। पहला उपाय है संसद को अधिकार प्रदान किया जाना जिससे कि सामान्य अवस्था में भी और ऐसे विषयों के बारे में भी जो राज्य–विषय हैं, वह कानून बना सकती है। अनुच्छेद 226 के तहत यदि कोई विषय केवल प्रांतीय महत्व का न रह कर राष्ट्रीय महत्व का बन जाता है तो भले ही वह विषय राज्य की सूची में हो

संसद उस विषय में कानून बना सकती है किन्तु ऐसा करने के लिये उसे राज्यसभा के दो तिहाई बहुमत का अनुमोदन प्राप्त करना जरूरी होगा। अनुच्छेद 227 के तहत संसद राज्य की सहमति होने पर ऐसे अधिकार संसद को प्रदान करता है। अनुच्छेद 229 के तहत संसद राज्य की सहमति होने पर ऐसे अधिकार का उपयोग कर सकती है। कठोरता और वैधानिकता की कठिनाई को कम करने का दूसरा जो उपाय संविधान में अपनाया गया है वह है संविधान में संशोधन की प्रक्रिया को आसान बनाना। संविधान में संशोधन से संबंधित प्रावधान संविधान के अनुच्छेदों को दो भागों में विभक्त करता है। पहले भाग में वे अनुच्छेद हैं जिनका संबंध 1. केन्द्र व राज्य के बीच शक्तियों के वितरण से है। 2. संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व से है तथा 3. न्यायालयों के अधिकारों से है। शेष अनुच्छेदों को दूसरे भाग में रखा जा सकता है। संविधान के अधिकांश अनुच्छेद–दूसरे वर्ग में आते हैं जिनमें संशोधन संसद के दोगुने बहुमत से किया जा सकता है अर्थात् ऐसा बहुमत जो संसद के प्रत्यके सदन में उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों की संख्या की दो तिहाई से कम नहीं हो और जो प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत दर्शाता हो। इन अनुच्छेदों में संशोधन के लिये राज्यों के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती है। केवल वर्ग एक में आने वाले अनुच्छेदों में संशोधन के लिये राज्यों के समर्थन की अतिरिक्त आवश्यकता होती है।

संघीय संविधान में दोहरी शासन व्यवस्था होने के कारण केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर विधायी, कार्यपालन तथा न्यायिक शक्तियों में भेद आवश्यक रूप से कानून, प्रशासन एवं न्यायिक संरक्षण में भिन्नता उत्पन्न करता है। जब यह भेद अधिक हो जाता है तो अराजकता की स्थिति पैदा हो जाती है। यदि किसी संघ में बीस राज्य है और मान लीजिये कि उनमें विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, अपराध, माप एवं तौल, बिल एवं चेक, बैंक तथा व्यापार, न्याय प्राप्ति की पद्धति तथा प्रशासन के मापदण्ड एवं तरीकों आदि के बारे में अलग–अलग कानून हैं तो ऐसी स्थिति न केवल राज्यों को कमजोर बनाती है बल्कि नागरिकों को एक राज्य से दूसरे राज्यों में आना जाना दूभर कर देती है। भारतीय संविधान में इस बात की व्यवस्था की गई है जिससे कि भारत एक संघ तो होगा लेकिन उसके साथ–साथ

ऐसी सभी बातों में जो देश की एकता के लिये आवश्यक हैं, एकरूपता भी बनी रहेगी। इसके लिये संविधान में निम्न तीन उपाय किये गये हैं 1. इकहरी न्यायपालिका 2. मूल दीवानी एवं फौजदारी कानूनों में एकरूपता 3. महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति के लिये एक सामान्य अखिल भारतीय सेवा की व्यवस्था।

मजबूत केन्द्र की व्यवस्था

डॉ अंबेडकर ने संघ (फेडरेशन) और एकात्म (यूनियन) में भेद किया। उनका कहना था कि भारत हालांकि संघ है किन्तु यह संघ राज्यों के बीच किसी ऐसे समझौते का परिणाम नहीं है कि वे संघ में शामिल होंगे इसलिये किसी भी राज्य को संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं है। यह संघ एक एकात्म है क्योंकि यह अविभाज्य है। तात्पर्य यह है कि अम्बेडकर राज्यों के विधायी, प्रशासनिक एवं न्यायिक अस्तित्व के महत्व को स्वीकार करते थे और इसलिये उन्होंने भारतीय संघ की रचना भी की, किन्तु वे भारत को एक ढीला–ढाला संघ बनाने के पक्षधर नहीं थे। वे एक सशक्त और मजबूत केन्द्र चाहते थे और जैसा कि पूर्व विवेचन से स्पष्ट है कि इसके लिये संविधान में उन्होंने आवश्यक प्रावधान भी किया। अंबेडकर ने संविधान सभा में लगाये गये इस आरोप को स्वीकार किया कि संविधान ने केन्द्र को राज्यों की तुलना में अधिक अधिकार दिये हैं और उसे मजबूत बनाया है किन्तु इसके साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि उसे अधिक मजबूत होने से रोका भी गया है जिससे कि वह अपने ही भार को सहन न कर पाने के कारण टूटकर बिखर न जाये। उन्होंने स्पष्ट कहा कि यह कहना बिल्कुल गलत है कि केन्द्र को आवश्यकता से अधिक अधिकार दिये गये हैं और राज्यों को म्युनिसपैलिटियों में तब्दील कर दिया गया है। उनका कहना था कि संघीय संविधान का यह बुनियादी सिद्धांत है कि केन्द्र व राज्यों के बीच विधायी व कार्यपालिका (एक्जीक्यूटिव) अधिकारों का स्पष्ट विभाजन हो और भारतीय संविधान में इसका प्रावधान किया गया है।

भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषायी व क्षेत्रीय भिन्नताओं तथा विघटनकारी प्रवृत्तियों को रोकने की दृष्टि से डॉ अम्बेडकर केन्द्र को अधिक

अधिकार देकर मजबूत बनाना चाहते थे। उन्होंने जोर देकर कहा कि मजबूत केन्द्र आधुनिक युग और परिस्थितियों की मांग है और यह अपरिहार्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान विकास का इतिहास इस बात का प्रमाण है। पूर्व में वहां संघ को सीमित अधिकार ही प्राप्त थे। कालान्तर में इसमें वृद्धि की गई। जिससे कि संघ राज्यों के पृथक्करण की प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने में सक्षम हो सके। भारत के केन्द्र को इस प्रकार के आवश्यक अधिकार संविधान निर्माण के समय ही प्रदान कर दिये गये हैं।

मौलिक अधिकार

डॉ अंबेडकर के अनुसार मौलिक अधिकार संविधान की प्रस्तावना की बुनियाद है। प्रस्तावना यह बताती है कि संविधान का मूल उद्देश्य समाज में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व की स्थापना है। संविधान के इन उद्देश्यों का परिपालन मौलिक अधिकारों के द्वारा होता है। किसी भी राज्य का आधार वे अधिकार होते हैं जो वह अपने नागरिकों को प्रदान करता है। ये अधिकार इस अर्थ में नैसर्गिक या मौलिक माने जाते हैं क्योंकि ये अच्छे जीवन के लिये अनिवार्य होते हैं। संविधान में सम्मिलित कर दिये जाने से ये बहुत कुछ अनुलंघनीय हो जाते हैं तथा जनता और सरकार दोनों ही इनका आदर करने लगते हैं। राज्य शब्द का यहां प्रयोग मोटे तौर पर भारत सरकार, संसद तथा प्रत्येक राज्य की सरकार एवं विधानमण्डल के लिये किया गया है। मौलिक अधिकारों का उद्देश्य शासन और विधानमण्डल दोनों को स्वेच्छाचारी होने से रोकना है। इनसे व्यक्ति को अपने विकास का अवसर मिलता है किन्तु सभी व्यक्तियों के अधिकारों को सुरक्षित करने अथवा समाज या राज्य के हितों की पूर्ति करने अथवा सुयोजित समाज की स्थापना करने के उद्देश्य से राज्य द्वारा उन पर कुछ प्रतिबंध लगाये गये होते हैं। राज्य एक निर्धारित सीमा के भीतर संविधान में दी गई वैयक्तिक अधिकार संबंधी व्यवस्थाओं का नियमन कर सकता है। संविधान के भाग तीन में मौलिक अधिकारों का उल्लेख है। ये अधिकार समस्त नागरिकों को व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से लोकतंत्र के सर्वोत्तम लाभ तथा जीवन की आधारभूत स्वतंत्रतायें एवं सुविधायें प्रदान करते हैं, जो जीवन को विशिष्ट व रचनात्मक बनाती हैं। ये अधिकार हैं कानून के समक्ष

समानता, अवसर की समानता, अस्पृश्यता उन्मूलन, स्वतंत्रता का अधिकार–वाक स्वतंत्रता, सम्मेलन स्वतंत्रता, पेशा या वृत्ति स्वतंत्रता आदि, जीवन तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा, शोषण से सुरक्षा, किसी भी धर्म को मानने, उसका अनुसरण करने तथा उसका प्रचार करने की स्वतंत्रता, सांस्कृतिक तथा शिक्षा संबंधी अधिकार जिसके तहत अल्पसंख्यकों को अपने धर्मानुकूल आचरण करने, अपनी संस्कृति तथा लिपि सुरक्षित रखने के अधिकार की रक्षा की व्यवस्था की गई है, सम्पति का अधिकार, संवैधानिक उपचारों का अधिकार जिसके तहत प्रत्येक नागरिक को मौलिक अधिकार लागू कराने के लिये सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने का प्रावधान है। कुछ लोगों का यह मत है कि भारतीय संविधान में नागरिकों को जो मौलिक अधिकार दिये गये हैं वे मात्र दिखावा या धोखा है। वे यथार्थ नहीं हैं, असीम और निरपेक्ष नहीं हैं। उनकी दृष्टि में मौलिक अधिकार तब तक मौलिक नहीं हो सकते जब तक कि वे निरपेक्ष नहीं हों। उनका यह भी आरोप है कि अनुच्छेद 13 जो मौलिक अधिकारों को परिभाषित करता है, इतने अपवादों से भरा है कि ये अपवाद सारे अनुच्छेद को खा गये हैं। अम्बेडकर मौलिक अधिकारों के विरूद्ध लगाये गये उपर्युक्त आरोपों से सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों से संबंधित लगाई जाने वाली आपत्तियों यथार्थ से परे हैं। अम्बेडकर के अनुसार यह कहना गलत है कि मौलिक अधिकार निरपेक्ष हैं और गैर मौलिक अधिकार निरपेक्ष नहीं हैं। दोनों में वास्तविक अंतर यह है कि गैर मौलिक अधिकार सम्बद्ध पक्षों के बीच समझौते के फलस्वरूप बनते हैं जबकि मौलिक अधिकार कानूनी उपहार हैं। व्यक्ति को प्राप्त इन अधिकारों को राज्य के उपहार के रूप में मानने का कदापि यह अर्थ नहीं है कि राज्य मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं कर सकता। अमेरिका में मौलिक अधिकार निरपेक्ष नहीं हैं। उन्हें न्यायालय द्वारा सीमित किया जा सकता है और किया भी गया है। भारतीय संविधान ने मौलिक अधिकारों को निरपेक्ष पारिभाषित करने तथा सर्वोच्च न्यायालय को संसद के बचाव के लिये पुलिस शक्ति के नाम पर इन अधिकारों को सीमित करने जैसा कि अमेरिका में हुआ के स्थान पर राज्य को प्रत्यक्षतः इन्हें सीमित करने की अनुमति प्रदान की है। सम्पत्ति संबंधी अधिकार के संबंध में ऐसा हुआ भी है। डॉ. अंबेडकर के अनुसार ड्राफ्ट समिति के सदस्य इस तथ्य से भली–भांति परिचित

थे कि मौलिक अधिकारों को कठोर नहीं लचीला होना चाहिये जिससे कि उनमें प्रगतिशील परिवर्तनों को समाहित करने की गुंजाइश हो। इसलिये प्रत्येक मौलिक अधिकार के साथ यह अपवाद जोड़ा गया कि राज्य उस पर तार्किक प्रतिरोध लगा सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि अन्य व्यक्तियों, समाज और राज्य के हित की रक्षा के लिये जरूरी हो तो राज्य को व्यक्ति के मौलिक अधिकार सीमित करने की शक्ति प्रदान किया जाना उचित है किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि सत्ताधारी दल संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग छोटी–छोटी बातों पर संविधान में संशोधन के लिये करे। संविधान से प्रत्येक नागरिक को कुछ अपेक्षाओं का भी बोध होता है जिसे वह बहुत कुछ स्थायी मानता है और उसके अनुसार वह अपने जीवन व योजनाओं को कार्यरूप देता है। इसलिये राज्य को दूसरे शब्दों में सत्ताधारी दल या सरकार को अपरिहार्य कारणों व परिस्थितियों को छोड़कर संविधान में विशेषरूप से व्यक्ति को प्रदत्त मौलिक अधिकारों में परिवर्तन नहीं करना चाहिये चाहे भले ही ऐसे प्रकरणों पर न्यायालय के निर्णय सरकार के विरूद्ध हो और उससे सत्ताधारी दल की प्रतिष्ठा को आंच पहुँचे।

डॉ अंबेडकर के राजनीतिक विचारों में राज्यव्यवस्था का सिद्धांत एकदम राजनीतिक न होकर सामाजिक और नैतिक भी था।[28] डॉ अम्बेडकर का इस बात पर बल था कि राज्य में व्यक्ति और समाज साथ–साथ सम्मानपूर्वक रह सकते है और शोषित एवं कमजोर वर्गों के अधिकारों के संरक्षण का मुख्य दायित्व सभी के सहयोग से निभाया जा सकता है। डा. अम्बेडकर संसदीय शासन प्रणाली को भारत के लिए उपयुक्त मानते थे। यह ऐसी सरकार है जिसे जनता स्वयं चुनती है, यह ऐसी शासन प्रणाली है जो भारत में प्रचलित थी। डॉ अम्बेडकर व्यक्ति पूजा एवं वंशानुगत शासन का विरोध करते थे। कोई भी कानून या कोई भी योजना जनता के हित के लिए बनाई गई है वह उन लोगों की सलाह से बनाई जानी चाहिए जिनको जनता ने अपना प्रतिनिधि चुनकर भेजा है। डॉ अम्बेडकर संसदीय सरकार तथा प्रतिनिधि सरकार की व्यवस्था में दल पद्धति को आवश्यक माना है।[29] लेकिन एक दल पद्धति के विरोधी थे। डॉ अम्बेडकर संसदीय प्रणाली में कम से कम पक्ष

---

[28] जाटव डी आर, गांधी लोहिया अंबेडकर, पेज–86
[29] अंबेडकर बी आर, रानाडे गांधी एवं जिन्ना, पेज–75

विपक्ष के दो दलों के समर्थक थे। ताकि निरंकुशता या तानाशाही जनता पर हावी न होने पाए। निरंकुशवाद स्वतंत्रता का विरोधी है चाहे वह स्वदेशी हो या विदेशी हो। डॉ अम्बेडकर राज्य को अथवा सरकार को एक महत्वपूर्ण साधन मानते थे न कि साध्य। राज्य एवं सरकार का दायित्व है कि वह ऐसी समाज व्यवस्था स्थापित करे ताकि सब लोग अपृश्य कमजोर अथवा अन्य वर्ग एक सम्मानपूर्ण गरिमामय जीवन जी सके। डॉ अम्बेडकर ने संविधान का निर्माण कर उन सभी आदर्शों मूल्यों की स्थापना किए जो भारतीय शासन व्यवस्था के लिए उचित था। जो भारत के विविधता के स्वरूप को अपनाते हुए प्रत्येक वर्ग, समुदाय के हितों की रक्षा करें एवं उनका प्रतिनिधित्व भी करें। उन्होंने राष्ट्रनिर्माण के लिए राजनीतिक सत्ता के बजाय संरचनात्मक परिवर्तन को ज्यादा महत्व दिया और उन्होंने सामाजिक आंदोलन के अंतर्गत समाज के सभी उपेक्षित वर्गों जैसे अस्पृश्य समाज, आदिवासी, अल्पसंख्यक एवं महिलाओं के अधिकारों के लिए जीवन पर्यंत संघर्ष किया। यह बात भारतीय संविधान में प्रदत्त उन समाजों को दिए गए अधिकारों से प्रमाणित होती है। इन सभी समाजों के लिए समता, समानता और सामाजिक न्याय से इतर विशिष्ट अधिकारों का प्रयोजन कर डॉ अम्बेडकर ने स्व–प्रतिनिधित्व की नींव डाली।[30] जातिगत स्वार्थ से वशीभूत भारत में बहुसंख्यक लोगों को सत्ता, संसाधन, न्याय एवं अन्य मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। संविधान के अंतर्गत उन समूहों को अधिकार प्रदत्त कर स्वप्रतिनिधित्व को सुनिश्चित किया। इसके लिए डॉ अम्बेडकर ने गोपाल कृष्ण गोखले को उद्धृत किया। गोपाल कृष्ण गोखले ब्रिटिश सरकार से यह शिकायत कर रहे थे कि ब्रिटिश सरकार में भारतीयों को अपने कर्मचारी तंत्र में प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। इस प्रतिनिधित्व नहीं दिए जाने के अभाव में भारतीय अपनी पूर्ण क्षमता एवं पौरूष को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। उनकी योग्यता का क्षरण हो रहा है। डॉ अम्बेडकर ने एक समानांतर रेखा खींचते हुए गुहार लगाई कि यही दशा न जाने कितने वर्षों से दलितों व पिछड़ों के साथ हो

[30] कुमार, विवेक, प्रजातंत्र में जाति आरक्षण एवं दलित, पेज–57

रहा है क्योंकि उनको हजारों वर्षों से लगातार वंचित किया गया है।[31] इसलिए डॉ अम्बेडकर ने लोकतंत्र जनता द्वारा चुने प्रतिनिधि के सरकार को उचित माना।

व्यक्ति पूजा की भर्त्सना

यह राष्ट्र की प्रगति में बाधक है। डॉ अम्बेडकर इस बात के पक्षधर थे कि राजनीति में व्यक्तिवाद नहीं होना चाहिएं क्योंकि भारत में भक्ति की एक परंपरा रही है। अतः यह हो सकता है कि लोग धार्मिक भक्ति का प्रयोग राजनीति में भी करें और राजनीति व्यक्ति पूजा की सीमा तक सिमट कर रह जाए। इससे लोकतंत्र संकट में पड़ जाएगा, संस्थाओं का क्षरण हो जाएगा। संविधान एवं संवैधानिक संस्थाओं का महत्व डॉ अम्बेडकर के राजनीतिक विचार का मूल है। संवैधानिक प्रक्रियाओं को अपनाए बिना धरना, प्रदर्शन, हड़ताल, बंद आदि हथकंडे अपनाना प्रजातंत्र को मजबूत करने के बजाए खोखला करता है। डॉ अम्बेडकर राजनीतिक प्रजातंत्र के साथ–साथ सामाजिक आर्थिक प्रजातंत्र को आवश्यक मानते थे। भारतीय समाज में समानता का अत्याधिक अभाव है और जब तक राजनीतिक जीवन में समानता का विरोध और सामाजिक असमानता बनी रहेगी तब तक लोकतंत्र खतरे में रहेगा। हमें इस अवरोधकों को यथाशीघ्र दूर करना होगा अन्यथा जो असमानता से पीड़ित होंगे वे राजनीतिक लोकतंत्र के उस ढांचे को ध्वस्त कर देंगे जिसे संविधान सभा ने कड़ी मेहनत से बनाया है।[32]

भारत विभाजन एवं पाकिस्तान पर डॉ अंबेडकर के विचार

डॉ अंबेडकर ने अपनी पुस्तक 'पाकिस्तान एवं भारत के विभाजन' 1940 में विचार रखे है। मुसलमानों का धार्मिक दृष्टिकोण उन्हें एक अन्य समुदायों के साथ एक राष्ट्र के रूप में खड़ा होने से रोकता है क्योंकि एक सच्चे मुसलमान के लिए एक सही शासनव्यवस्था दारूल इस्लाम की ही है। अगर मुसलमानों ने एक राष्ट्र के रूप मे संगठित होने का मन बना लिया है तो उनके साथ समझौते की बात बेमानी है। इस पुस्तक में डॉ अंबेडकर दक्षिण अफ्रीका, कनाडा और स्वीटजरलैंड

---

[31] वही पेज

[32] आमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–116

का हवाला देकर यह लिखते हैं कि एक देश में एक से अधिक राष्ट्रीयता के लोग रह सकते हैं बशर्ते वे इसके लिए तैयार हों। डॉ अंबेडकर ने इस पुस्तक में महात्मा गांधी और जिन्ना की राजनीति के बारे में भी सटीक टिप्पणी की है। वे बहुत विस्तार से दर्शाते हैं कि गांधी जी शुरू से ही मुसलमानों के प्रति नरम एवं तुष्टिकरण का रूख अपनाने के बावजूद भारत के विभाजन को नही रोक पाए। दूसरी तरफ जिन्ना अपनी तमाम धर्मनिरपेक्षता और निष्ठावान व्यक्तित्व के बावजूद पाकिस्तान की ओर बढ़ते चले गए। डॉ अम्बेडकर ने दंगो का भी वर्णन किया हैं। वे यह भी बताते हैं कि जहां कहीं भी प्रशासन ने तत्परता दिखाइ वहां दंगा नही हुआ या जानमाल का नुकसान कम हुआ। डॉ अम्बेडकर का मानना था कि उंच जाति के हिन्दू भारत विभाजन का इसलिए विरोध कर रहे हैं क्योंकि इससे उनकी सरकारी नौकरियों में आने के अवसर कम होंगें। किन्तु ये लोग इस प्रकार मुसलमानों को गुमराह नही कर सकते जैसे वे दलित वर्ग को करते आए हैं। डॉ अंबेडकर का मानना था कि भले ही पाकिस्तान का निर्माण हो जाए किंतु दस वर्षो के बाद इसकी उपादेयता और अनुभव पर पुनः विचार के लिए जनमत संग्रह का प्रावधान हो तभी विभाजन को अंतिम रूप दिया जाए।

महिला सशक्तिकरण के लिए डॉ. अम्बेडकर के विचार

डॉ अंबेडकर ने महिलाओं को सशक्त करने के लिए, उनके अधिकारों को क़ानूनी संरक्षण के प्रावधान के लिए सरकारी संस्थाओं में हमेशा आवाज उठाई। भारत के वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में डॉ अम्बेडकर के विचारों को देखा जाए तो संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ा है। मुंबई जैसे नगर में ऐसे बहुत से संगठित, असंगठित कार्य क्षेत्र थे जहां महिलाएं काम करती थी। जिसमें डिप्रेस्ड क्लास की महिलाओं की संख्या ज्यादा होती थी। इन जगहों पर कार्य करने वाली महिलाओं की स्थिति बहुत अमानवीय थी उनके अधिकार के लिए उन्होंने मुंबई लेजिसलेटिव काउंसिल में एक सदस्य के नाते मातृत्व लाभ विधेयक प्रस्तुत किया।[33] मद्यनिषेध बिल भी पेश किया गया इससे पहले महिलाओं के हक के लिए इतनी गहराई से किसी ने न सोचा न कार्य किया। यह डॉ अंबेडकर का महिलाओं के

---

[33] जाटव डी. आर., डॉ अंबेडकर एक प्रखर विद्रोही, पेज–117

प्रति संवेदनशीलता थी उनके अधिकार एवं स्वतन्त्रताएँ जिनके लिए वे हमेशा तत्पर रहें। महिला सशक्तिकरण के लिए डॉ अम्बेडकर द्वारा किये गये कार्य उल्लेखनीय हैं। दलित शूद्र अस्पृश्य समाज की स्त्रियों के उत्थान सशक्तिकरण के साथ–साथ डॉ अंबेडकर ने भारतीय समाज के हर वर्ग की महिलाओं के सशक्तिकरण का प्रयास किया। डॉ अंबेडकर इसके लिए हिंदू सामाजिक व्यवस्था के पुर्नरचना पर ज्यादा जोर देते थे कि ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना चाह रहे थे जो समानता पर आधारित हो। ब्रहम समाज, आर्य समाज द्वारा किए गए स्त्री मुक्ति के प्रयास एक तरह का समाज सुधार था जिसमें केवल उच्च वर्ग की महिलाओं के उद्धार तक सीमित थी। डॉ अंबेडकर का स्त्री संबंधी विचार अपने आप में सभी स्त्रियों का सर्वसमावेश था। हिंदू कोड बिल कोड का शाब्दिक अर्थ किसी कानून या विधि का संग्रह या एकीकरण है। हिंदू कोड का तात्पर्य है हिंदुओं के शास्त्रों में लिखे हुए ऐसे नियम जो रूढ़िवादी हैं कानून से भी अधिक शक्तिशाली हैं। शूद्रों, स्त्रियों के लिए नियम जो बदलते समय के साथ अनुपयोगी एवं बेकार हो गए हैं। समाज की प्रगति के लिए घातक सिद्ध हो रहे थे। इन्हें सम्यकतया तथा काट–छांट कर मुस्लिमों, ईसाइयों और पारसियों के वैयक्तिक कानून की तरह सामाजिक विधि विधान बनाना है।[34] डॉ अंबेडकर ने संपूर्ण भारतीय सामाजिक व्यवस्था का आधा हिस्सा स्त्री वर्ग के सशक्तिकरण के लिए संसद में हिंदू कोड बिल पेश किया। समाज में स्त्री पुरुषों की तरह स्वतंत्र एवं अधिकार युक्त हो, लिंग के आधार पर कोई भेदभाव न हो, दोनों को संविधान के तहत संविधान द्वारा समान दर्जा प्रदान किया। डॉ अंबेडकर ने संविधान निर्माण कर मौलिक अधिकार के अंतर्गत अनुच्छेद–14 एवं अनुच्छेद–16 का निर्माण किया। संविधान के माध्यम से बच्चों व स्त्रियों की बिक्री तथा उनसे बेगार लेने पर भी प्रतिबंध लगाया गया। संविधान द्वारा महिलाओं को स्वतंत्रता एवं समानता का अधिकार प्रदान किए जाने से सिद्धांततः महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार तो अवश्य आया, किंतु स्वतंत्रता एवं समानता की संवैधानिक सुरक्षा देने से भी सदियों से उपेक्षित महिलाओं को परंपरात्मक दासता से मुक्ति नही मिल पाई। डॉ अंबेडकर का सोचना था कि विवाह और संपत्ति पर अधिकार संबंधी प्रचलित कानून में क्रांतिकारी परिवर्तन ला कर ही महिला मुक्ति संभव है। अपने इस

---

[34] अंबेडकर बी आर,हिन्दू कोड बिल,अनुवादक सोहनलाल शास्त्री, पेज–48

विश्वास को मूर्त रूप देने के लिए डॉ अंबेडकर ने हिंदू कोड बिल का निर्माण किया। हिंदू कोड बिल में कन्या के विवाह के निर्धारित न्यूनतम आयु में वृद्धि, एक विवाह का अनिवार्य किया जाना, अंतर्जातीय विवाह को मान्यता, स्त्रियों को पुरुषों के समान तलाक का अधिकार, तलाकशुदा स्त्री को अपने पति से भरण पोषण प्राप्त करने का अधिकार, विधवा पुनर्विवाह को मान्यता, महिलाओं को पुत्री, पत्नी व मां के रूप में परिवारिक संपत्ति का अधिकार, पुत्री को गोद लिए जाने एवं गोद लेने के अधिकार आदि का प्रावधान था।[35] कानून मंत्री के रूप में 3 फरवरी 1951 को संसद में बिल पेश किया गया लेकिन सदन में उपस्थित वरिष्ठ नेताओं की हिंदूवादी मानसिकता के कारण बिल नहीं पास हो सका। अफसोस यह बिल न पास हो सका, समाज की मानसिक सोच जब तक नहीं बदलेगी तब तक व्यवहारिक सोच भी विकसित नहीं हो पाएगी। माओत्से तुंग ने सच कहा है कि– सही विचार कहां से आते हैं। क्या वह आसमान से टपकते हैं, नहीं। क्या वे दिमाग में अंर्तज्ञात हैं, नहीं। ये सामाजिक व्यवहार से आते हैं[36] शायद इसीलिए डॉ अंबेडकर के सामाजिक व्यवहार के अनुभव एवं विचार सदन के अन्य सदस्यों के सामाजिक व्यवहार से ज्यादा व्यवहारिक एवं प्रगतिशील थे। पुरुष वर्चस्ववादी समाज में हिंदू कोड बिल नहीं बन पाया। लेकिन समय की मांग एवं महिलाओं की अपने अधिकार के प्रति सजगत्ता के कारण इस बिल को टुकड़ों में अलग–अलग अधिनियमों में पारित किया गया। मूल हिंदू कोड बिल चार खंडों में एवं कुछ परिवर्तनों के साथ एक्ट बने, हिंदू विवाह अधिनियम 1955, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, हिंदू माइनोरिटी एवं गार्जियनशिप एक्ट 1956, हिंदू एडॉप्शन एंड मेंटेनेंस एक्ट 1956। डॉ अंबेडकर हिन्दू कोड बिल के माध्यम से महिलाओं को विवाह, तलाक, उतराधिकार, संपति एवं गोद लेने जैसी नियमों में पुरूषों के जैसा अधिकार दिया गया। ये सारे अधिकार मनुसंहिता में पूर्णत वर्जित थे। लॉर्ड कैसी ने कहा था अंबेडकर का स्थान आधुनिक भारत में 'फयूचर हेड आफ विजडम एंड नॉलेज' का है।[37] हिंदू कोड बिल के समय देश में स्त्रियों की क्षमता एवं उनके संपत्ति प्रबंधन कौशल पर भी उंगलियां उठाई गई। भारतीय परंपरा की दुहाई देते हुए नेताओं ने रूढ़ियों की बात कही

---

35 सिंह, राम गोपाल, डॉ अंबेडकर का विचार, पेज–49।

36 शोध पत्र, डॉ अंबेडकर और महिला सशक्तिकरण, अमोल निमस्दकर, TISS, Mumbai

37 Nahar Emanual, Dr. Ambedkar's philosophy in contemporary india, page- 174

समाज में प्रचलित रीतियों का हवाला दिया, तब डॉ अंबेडकर ने कहा था कि 'मैं भी रूढ़िवादी हूं लेकिन प्रगतिशील रूढ़िवादी हूं।' डॉ अंबेडकर ने संसद के सामने एडमण्ड बर्क का तर्क रखा की रूढ़िवादी होते हुए फ्रेंच क्रांति के विरुद्ध एक ग्रंथ लिखा, बुनियादी सुधारवाद और क्रांतिकारीवादी होने के कारण वे अपनी रुढीवादी देशवासियों को एक महत्वपूर्ण सच्चाई बताना नहीं भूले। डॉ अंबेडकर भावुकता के साथ इस बिल से जुड़े हुए थे लेकिन जब मूल रूप में बिल पारित नहीं हो पाया तो उन्होंने संसद पद से त्यागपत्र दे दिया। डॉ अंबेडकर की दूरदर्शिता एवं महिलाओं के सशक्तिकरण के विचार वर्तमान समय में भी प्रासंगिक एवं कानून निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। 2005 में आया कानून संयुक्त हिंदू परिवार में पुत्री को भी पुत्र के सामान कानूनी रूप से बराबर का भागीदार बनाया गया। ये सारे स्त्री अधिकारों के लिए बने कानून हिंदू कोड बिल का ही विस्तार हैं।

डॉ अंबेडकर के धर्मनिरपेक्षता के विचारों की स्पष्टता उनके द्वारा मुसलमान महिलाओं की स्थिति के वर्णन में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। पर्दा प्रथा के कारण मुस्लिम समाज की महिलाएं शारीरिक एंव मानसिक रूप से कमजोर हो जाती हैं। तरह तरह के रोग से ग्रसित भी रहती थीं।[38] मुस्लिम महिलाओं का नैतिक विकास भी प्रभावित हुआ। पर्दा प्रथा से मुस्लिम महिलाओं का अलगाव समाज के अन्य महिलाओं से होने के कारण उनका विकास रूक गया। डॉ अंबेडकर महिला सशक्तिकरण को राष्ट्र विकास की अवधारणा से जोड़ कर देखते थें। उनका कहना था कि किसी भी देश की प्रगतिशीलता का पैमाना उस राष्ट्र में महिलाओं की स्थिति से लगाया जा सकता है।

महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए डॉ अंबेडकर द्वारा किए संवैधानिक प्रावधान

संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ अम्बेडकर ने संविधान में ऐसे अनुच्छेदों का प्रावधान किया जिससे भारत के सामाजिक व्यवस्था में समानता, स्वतंत्रता एवं सामाजिक न्याय स्थापित हो सके। संविधान की प्रस्तावना, भाग 3, 4 में मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक तत्व एवं मौलिक कर्तव्यों के द्वारा डॉ अंबेडकर

---

[38] बा.अं.सं.वां.,खंड–15,पेज–224

ने स्त्री पुरुष को समान नागरिक एवं समान अधिकार से युक्त किया। अनुच्छेद 14, 15, 16, 39, 42 द्वारा स्त्रियों को किसी भी तरह के भेदभाव से मुक्त एवं समान अधिकार की गारंटी का प्रावधान किए।[39] अनुच्छेद 14 जिसके द्वारा स्त्रियों को पुरुषों के समान राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्रों में अवसर की समता का अधिकार प्रदान किया गया। आर्टिकल 15 लिंग के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होगा। आर्टिकल 15 (9) के लिए विशेष व्यवस्था की गई है, महिलाओं की स्वभाविक प्रकृति के कारण उन्हें विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है। आर्टिकल 23, 24, शोषण के विरुद्ध अधिकार के तहत 1956 में महिलाओं एवं बालिकाओं की ट्रैफिकिंग को रोकने के लिए यह एक्ट पारित किया गया। आर्टिकल 39 स्त्रियों को आर्थिक न्याय प्रदान करने के लिए उनकी जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार एवं आर्टिकल 39 (द) समान कार्य के लिए समान वेतन का उपबंध है। आर्टिकल 42 के अनुसार महिला को विशेष प्रसूति अवकाश प्रदान करने का प्रावधान है. आर्टिकल 46 शिक्षा प्राप्त करने का अवसर स्त्रियों को दिया गया। संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा डॉ अम्बेडकर ने स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष लाकर उन्हें सशक्त करने का दूरदर्शिता वाला कार्य किया।

राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि हमारा दायित्व है कि हम हमारी संस्कृति की गौरवशाली परंपरा के महत्व को समझें तथा ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो कि स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है। डॉ अम्बेडकर द्वारा आधी आबादी को हर तरह से सशक्त करने के उनके संवैधानिक उपायों का ही विस्तार 73 वां एवं 74वां संवैधानिक संशोधन जिससे अनुच्छेद 243 द्वारा ग्राम पंचायतों में स्त्रियों को 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया गया। डॉ अंबेडकर ने संविधान में वयस्क मताधिकार का प्रावधान कर स्त्री पुरुष दोनों को समान रूप से वोट डालने का अधिकार दिए पश्चिमी देशों में स्त्रियों को मतदान करने के अधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ा था लेकिन बाबा साहब ने समानता को लागू करते हुए संविधान के साथ ही यह अधिकार महिलाओं को दे दिया।

---

[39] भारत का संविधान

2014 के लोकसभा चुनाव में 67.1 प्रतिशत पुरुषों की तुलना में महिलाओं का मतदान 65.95 प्रतिशत था। देशव्यापी राजनीतिक तंत्र में अब भी काफी हद तक पुरुषों का दबदबा कायम है और वह पितृसत्ता का गढ़ बना हुआ है। संसद और विधानसभाओं में महिला प्रतिनिधित्व काफी कम है। महिला लोकसभा सदस्यों की संख्या 1952 में 4.7 प्रतिशत से बढ़कर 2014 में 11.4 प्रतिशत हो गई है। राज्यसभा में महिला सांसदों की संख्या 2014 में 15 प्रतिशत थी।[40] 17वीं लोकसभा में 76 महिलाएं लोकसभा में अपने हक की आवाज को बुलंद करेंगी। राजनीति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व हमारे देश की पितृसत्तात्मक मानसिकता को दर्शाता है लेकिन महिला वोटरों एवं महिला उम्मीदवार की संख्या में बढ़ोतरी महिलाओं के अधिकार के प्रति एवं राजनीति के प्रति उनकी बढ़ती रुचि को आंकता है। महिलाओं के मतदान प्रतिशत में बढ़ोतरी के बावजूद काफी कम प्रतिनिधित्व का यह विरोधाभास पंचायत चुनाव में नहीं दिखता क्योंकि पंचायतों में महिला शिक्षा, जागरूकता, संवेदनशीलता, सोच में परिवर्तन जैसे–जैसे समाज में महिलाओं के प्रति समाज के सोच में इन चीजों की वृद्धि होगी वैसे–वैसे स्त्री मुक्ति की बहस कम होती जाएगी। आजादी के समय एवं उसके बाद वर्तमान समय तक महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन आए हैं। महिलाओं में शिक्षा के प्रतिशत वृद्धि हुई है। बालिकाओं की शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करने के केंद्र एवं विभिन्न राज्य सरकारों के द्वारा मुफ्त शिक्षा, साइकिल वितरण, छात्रवृत्ति जैसी सुविधाएं प्रदान की जा रहे हैं। कस्तूरबा गांधी आवासीय विद्यालय समाज के दलित वर्ग के बच्चियों के शिक्षा के लिए उत्तम व्यवस्था है। स्वावलंबन, स्किल डेवलपमेंट, उज्जवला जैसी योजनाएं महिलाओं की दशा को सुधारने वाली सराहनीय सरकारी योजनाएं हैं। डॉ अंबेडकर के परिप्रेक्ष्य में स्त्री प्रश्न भारत में किसी भी विकसित देश या अविकसित देशों की तुलना में ज्यादा जटिल है। यह जटिलता परिवार, समाज, संस्कृति, कानून, रोजगार हर स्थल पर मौजूद है। जिसे केवल स्त्री स्वतंत्रता, सशक्तिकरण मुक्ति से ही सकता है एवं सांस्कृतिक सुरक्षा का प्रावधान किया गया।

---

[40] इंडिया टुडे, 27 Feb 2019

भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए किए गए प्रावधान

समाज के वंचित वर्गों के उत्थान के लिए डॉ अंबेडकर ने संविधान के विभिन्न भागों में निम्न प्रावधानों के द्वारा उन्हें मुख्यधारा में लाने का काम किए हैं। जिसके द्वारा इन वर्गों के लिए सामाजिक शैक्षणिक आर्थिक सुरक्षा प्रदान किया गया। इन संवैधानिक अनुच्छेदों को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत रख कर विश्लेषित किया गया है:–

1. सामाजिक समानता के लिए प्रावधान– आर्टिकल 17 अश्पृस्यता का अंत करने की घोषणा। आर्टिकल 25(2)(बी) एससी एसटी को सार्वजनिक मंदिर में प्रवेश की अनुमति प्रदान करता है।

2. शैक्षणिक उन्नति एवं सांस्कृतिक संरक्षण के लिए प्रावधान – आर्टिकल 15(4) के द्वारा राज्य इन वर्गों के सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन को दूर करेगा। आर्टिकल 29(1) अनु. जातियों को अपनी भाषा एवं संस्कृति की सुरक्षा का अधिकार देता है। आर्टिकल 350(अ) अपनी मातृभाषा तथा पांडुलिपियों के संरक्षण, विधालयों तथा संस्थानों के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता की घोषणा करता है।

3. राजनीतिक अधिकार – आर्टिकल 330, 332 एवं 334 के द्वारा लोकसभा तथा विधानसभा में अनु. जातियों एवं जनजातियों के सदस्यों के प्रतिनिधित्व के लिए सीटें सुरक्षित करता है।

4. आर्थिक संरक्षण के लिए – संविधान के अनुच्छेद 23, 24, 26, 244 एवं 275(1) इन जातियों को आर्थिक संरक्षण प्रदान करते है।

5. सरकारी नौकरियों में आरक्षण के प्रावधान – आर्टिकल 16 (4) के द्वारा पिछड़े वर्ग, अनु. जाति एवं अनु. जनजाति के लोगों के समुचित प्रतिनिधित्व के लिए। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन आर्टिकल 338 के तहत किया गया है ताकि इनके हितों की रक्षा हो।

दलित समुदाय में नेतृत्व क्षमता

सामान्यतः नेतृत्व की क्षमता का होना किसी व्यक्ति की विलक्षण प्रतिभा होती है। मेकाइवर एवं पेज के अनुसार नेतृत्व दूसरों से बात मनवाने की क्षमता है या लोगों को निर्देश देना जो व्यक्तिगत गुणों से आती है। व्यक्तिगत नेतृत्व क्षमता, प्रतिष्ठा, कौशल, वाकपटुता नेतृत्व के गुण है। समाजशास्त्री मैक्स वेबर करिश्माई नेतृत्व के बारे में कहते हैं कि ये ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनकी वैद्यता लोकप्रिय सता के इस विश्वास पर निर्भर करती है कि वे अपने सार्वजनिक निर्णयों में दैवीय शक्ति द्वारा प्रेरित एवं निर्देशित होते है। ऐसे व्यक्ति किसी भी विशेष परिस्थिति में स्वयं अवतरित होकर नेतृत्व की बागडोर ले लेते है। किसी भी आंदोलन एवं संगठन की सफलता के लिए योग्य नेतृत्व का होना अति आवश्यक है। वे हर प्रकार की संस्थागत जड़ता, अंधविश्वासों और समस्याओं को दूर कर संगठन के हित में निर्णय लेते है। दलित आंदोलन के संदर्भ में देखा जाए तो अम्बेडकर के नेतृत्व में दलित आंदोलन को सुदृढता एवं वैचारिक आधार मिला। उनके बाद के दलित नेतृत्व में व्यक्तिगत हित एवं स्वार्थ देखने को मिलता है बहुत संकुचित नेतृत्व क्षमता । कांशीराम की सांगठनिक क्षमता बहुत लोकतांत्रिक थी। वे अपने भाषण शैली से लोगों को जोड़ते थे ।

डॉ. अम्बेडकर के राजनीतिक विचारों का प्रभाव

डॉ अम्बेडकर ने संविधान निर्माण कर प्रावधानों एवं अनुच्छेदों के द्वारा सभी नागरिकों, राज्य सरकार न्याय व्यवस्था आदि से संबंधित नियमों का दस्तावेज तैयार कर सभी भारतीयों को अधिकारों से लैश किया। भारत के उज्जवल प्रगतिशील भविष्य के लिए ऐसा संविधान बनाया जिसमें सबके लिए समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व पर आधारित भाव हो। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत राष्ट्र निर्माण की दिशा में अग्रसर था। संविधान द्वारा भारत एक सफल राष्ट्र बन जाएगा। आज भारत विश्व का सबसे विशाल और सफल लोकतंत्र है। हालांकि डॉ अम्बेडकर के आलोचक संविधान निर्माण में डॉ अम्बेडकर की भूमिका को कमतर आंकते हुए इसे संविधान की एक लम्बी प्रक्रिया का नतीजा मानते हैं जो मुख्य रूप से कांग्रेस की

राजनीति द्वारा निर्देशित था और प्रारूप तैयार करने के स्तर पर मुख्य भूमिका अम्बेडकर के अधिकारी तंत्र के सलाहाकार बी. एन. राव को मानते हैं। संभवतः सर्वाधिक बुद्धिमतापूर्ण और संतुलित विचार नेहरू के आत्मकथा के लेखक माइकेल ब्रेचर का है, जिन्होंने डा अम्बेडकर को संविधान का प्रमुख वास्तुकार माना ।[41]

डॉ अम्बेडकर लोकतंत्र को लोगों की मानसिक स्थिति से जोड़ते थे। मनुष्य के दिमाग में लोकतंत्र की आस्था है। सरकार के स्वरूप पर लिखते हुए डॉ अम्बेडकर जेम्स ब्राइस को कोट करते हुए कहते है कि राज्य के निर्माण में बल प्रयोग का काफी महत्व होता है लेकिन यह उसका सबसे महत्वपूर्ण घटक नहीं है। बल के बजाय आज्ञापालन महत्वपूर्ण होता है। जेम्स ब्राइस के अनुसार सम्मान और सहानुभूति ज्यादा महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

भारत में राज्य समाजवाद को डॉ अम्बेडकर दलित जातियों के हित संरक्षण की विशेष जिम्मेदारी सौंपना चाहते हैं। डॉ अंबेडकर ने अपनी पुस्तक 'स्टेट एंड माइनॉरिटीज' में राज्य समाजवाद की तीन विशेषताओं का वर्णन करते हैं उद्योग राज्य के स्वामित्व में होंगे, बीमे पर राज्य का एकाधिकार रहेगा, कृषि राज्य मूल का उद्योग मानी जाएगी। डॉ अम्बेडकर के अनुसार दलितों की समस्या को सरकार की मुख्य समस्या माना जाए। जिसकी समाधान की जिम्मेदारी प्रांतीय एवं स्थानीय सरकारें ही नहीं, सारा भारत लें। सहानुभूतिपूर्ण प्रशासन का सिद्धांत दिया।[42] यदि भारतीय प्रशासन को सहानुभूतिपूर्ण होना है तो लोक सेवकों को राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि होने चाहिए। उनमें भी उन्हें विषेषकर अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि होने चाहिए। उत्तरदायी प्रशासन हो जो अपने कार्यों के लिए देश की चुनी हुई संसद के समक्ष जबावदेह रहेगा।

डॉ अंबेडकर लोकतंत्र के लिए विपक्ष को अत्यंत आवश्यक मानते थे। साथ ही एक व्यक्ति की, नायक पूजा को भी लोकतंत्र के लिए घातक मानते थे। अब के चुनावों में पूर्ण बहुमत वाली सरकार तो बन रही है लेकिन विपक्ष खत्म हो गया। साथ ही एक नया ट्रेंड दिख रहा है जिसमें उम्मीदवारों की स्थिति नहीं बस एक

---

[41] आमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर ,पेज–114
[42] भारती डॉ धर्मवीर , डॉ अंबेडकर के प्रशासनिक विचार, पेज–79

चेहरे पर पूरा चुनाव जीता जा सकता है। ये स्वस्थ लोकतंत्र के लिए प्रतिकूल है। संसद के दोंनो सदनों में अनुसूचित जाति एवं अनु जनजाति के लिए 84 एवं 47 सांसद लोकसभा में चुनकर आते है जो देश की 16.6 दलितों की आबादी जिनकी जनसंख्या 20 करोड़ से ज्यादा है। लेकिन पिछले एक दशक से लोकसभा की संरचना एवं कार्यप्रणाली पर आकलन करें तो ऐसे सांसदों की सक्रियता अपने जन के लोगों के मुद्दे पर आवाज उठाना कम दिखती है। ये पूना पैक्ट का दुष्प्रभाव है जिससे दलित समाज के अच्छे तेज तर्रार लोग चुनकर नहीं आ रहे हैं। जो दलितों से जुड़े मुदृदों को असरदार तरीके से संसद में उठाए। इसका यही कारण है कि विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा दलित समाज के वरिष्ठ एवं तेज तर्रार लोगों को टिकट न देना।

डॉ अंबेडकर के विचारों से प्रभावित होकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पपर उनके विचारों का अध्ययन किया जाता है। एंटोनियो ग्राम्शी (1991—1937) डॉ. भीमराव अंबेडकर (1991—1956) के बीच काफी चीजें समान हैं। उनके इसी समानता की तलाश के क्रम में 2010 में लंदन यूनिवर्सिटी में दुनिया की सभी राजनीतिक विज्ञानियों, इतिहासकारों, नारीवादी लेखकों, फिलॉसफी के विद्वानों का एक सेमिनार आयोजित किया गया। जिसे **’स्कूल ऑफ अफ्रीकन स्टडीज’** के **प्रोफेसर कॉसिमो जेन** ने आयोजित किया था। इस सेमिनार का विषय था — **’ग्राम्शी एंड अंबेडकर ऑन सबाल्टर्न एंड दलित’** । इसमें प्रस्तुत किए गए लेखों को संकलित करके एक किताब सौंपी गई जिसका नाम ’पॉलीटिकल फिलासफी आफ एंटोनियो ग्राम्शी एंड बी. आर. अंबेडकर : आइटिनरिज ऑफ दलित एंड सबाल्टर्न’। इस किताब की प्रस्तावना लिखते हुए प्रोफेसर कॉसिमो जेन ग्राम्शी और अंबेडकर के बीच समानता के कुछ बिंदुओं की चर्चा करते हैं :—

1. ग्राम्शी और अंबेडकर दोनों समकालीन थे। दोनों ने एक समान वैश्विक परिस्थितियों में अपने राजनीतिक विचारों को विकसित किया। इसी क्रम में अंतरराष्ट्रीय कानून और लोकतंत्र के विकास को ध्यान में रखकर विद्वानों ने अपने समाधान प्रस्तुत किए।

2. ग्राम्शी और अंबेडकर दोनों ने क्रमशः संवाद यानि वंचितों और अस्पृश्यों की समस्याः का न सिर्फ वैचारिक और सैद्धांतिक समाधान प्रस्तुत किया। बल्कि इस समाधान को व्यवहारजगत में लागू करने की कोशिश (प्रैक्टिसेस) भी की, दोनों सिद्धांतवादी के साथ–साथ संगठक और आंदोलन भी थे; दोनों ही वंचितों की मुक्ति में वंचित की सक्रिय भूमिका देखते थे।

3. इन वर्गों के लिए ऐतिहासिक/राजनीतिक भूमिका और नेताओं तथा बुद्धिजीवियों के कार्य दोनों के लिए महत्वपूर्ण रहे।

4. दलितों एवं वंचित वर्गों के ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति के बारे में बात करते हैं।

5. अंबेडकर अश्पृश्यों के अनुभव और इतिहास को तवज्जो देते हैं। उनके इतिहास के भूले–बिखरे स्त्रोतों से एक समग्र ऐतिहासिकता की रचना जा करते हैं। वैसे ही कोशिश ग्राम्शी सबाल्टर्न के बारे में करते हैं।

6. दक्षिण एशिया में अगर ग्राम्शी के वैचारिक असर की बात की जाय तो बेशक सबाल्टर्न ग्रुप जैसे प्रयोग हुए लेकिन वे अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पाए जिसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि उन्होंने अपने देश में मौजूद अंबेडकर और दूसरे दलित नेताओं के अनुभव जगत को महत्व नहीं दिया, जबकि वे सबाल्टर्न विचारों के सबसे बेहतरीन प्रस्तोता थे।

7. अंबेडकर दलितों की मुक्ति के लिए जिस तरह से स्थापित धर्म से टकराते हैं उन्हें मनुस्मृति का सार्वजनिक दहन (1927) में करते हैं। और मंदिरों में प्रवेश आंदोलन चलाते हैं (1930)। उसी तरह ग्राम्शी भी मानते हैं कि धर्म का राजनीति में कितना बड़ा स्थान है। ग्राम्शी का कल्चरल हेजमोनी की थ्योरी अंबेडकर के लेखन में भी मिलती है। अंबेडकर का मानना है कि जाति एवं वर्ण व्यवस्था इसलिए अभी तक है क्योंकि उसे धार्मिक मान्यता मिली हुई है। दोनों विचारक धर्म से टकराते हैं लेकिन राजनीति में धर्म के महत्व से इंकार नहीं करते।

वंचित वर्ग को शिक्षित करने, उनके बीच नेतृत्व पैदा, वैचारिकी और आंदोलन दोनों को साथ लेकर चलने आदि के बारे में ग्राम्शी और अंबेडकर में समानता के कई बिंदु हैं। जिसे और विस्तारित करने की आवश्यकता है।

6 दिसंबर 1956 को डॉ अंबेडकर का परिनिर्वाण हुआ। अंबेडकर अपने पीछे विभिन्न विषयों पर लिखे नोटों, पुस्तकों का अपार संकलन छोड़ गए थे। रिवॉल्यूशन एंड काउंटर रिवॉल्यूशन एंशियंट इंडिया तथा अनटचेबल्स : द चिल्ड्रन ऑफ इंडियाज घेटो' पर उनकी अधूरी हस्तलिपियां मिली थीं।[43] वे भारत का वैकल्पिक सामाजिक–सांस्कृतिक इतिहास प्रस्तुत करने की प्रोजेक्ट पर लिख रहे थे। अपने जीवन के अंतसमय में डॉ अंबेडकर भारतीय वर्ण–व्यवस्था की तुलना में पृथक सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था का विकल्प तैयार करना चाह रहे थे। जिसमें शिक्षा एवं बुद्धिजीवी वर्ग की भूमिका अहम होगी।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलित आंदोलन दोनों राज्यों में महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में संकट के काल से जूझ रहा है। दलित पार्टियों की राजनीतिक विफलता दोनों राज्यों में स्पष्ट तौर पर नजर आती है। महाराष्ट्र की दलित पार्टी दक्षिणपंथी पार्टियों के साथ गठबंधन कर केवल दलितों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व तक ही सिमट कर रह गई है। स्वतंत्र दलित नेतृत्व एवं दलित पार्टी की कमी नजर आती है। उत्तर प्रदेश में भी दलित पार्टी बसपा अपना जनाधार चुनाव दर चुनाव खो रही है। दलितों में विभाजन है। दलितों की उपजातियां आपस में एक नहीं हैं। उनमें वैचारिक भिन्नता है। भारतीय जनता पार्टी जैसी हिंदुत्व के विचारधारा पर चलने वाली पार्टी वैसे दलित उपजातियों एवं अत्यंत पिछड़े वर्गों को हिंदूवादी बना रही है जिनकी जाटवों एवं महारों जैसी दलित जातियों जैसा राजनीतिक एवं सामाजिक जागरूकता नहीं हो पाया है। ऐसी जातियों में शिक्षा एवं मध्यम वर्ग का अभाव है। फिर भी डॉ अंबेडकर की विचारधारा एवं अंबेडकर वर्तमान समय में दलितों को एक करने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है।

डॉ अंबेडकर ने देश एवं राष्ट्र हित में अपने राजनीतिक विचारों को लिखा हैं। वे संवैधानिक प्रावधानों द्वारा नागरिकों को सशक्त करते हैं। उनका मानना था कि

[43] आमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–148

राजनीतिक लोकतंत्र के साथ साथ आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र का होना बहुत आवश्यक है तभी लोकतंत्र सफल हो पाएगा। देश एवं समाज में प्रत्येक व्यक्ति के उत्थान से ही देश की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा। देश के संविधान के साथ संविधान को संचालित करने वाले व्यक्तियों के भावना को ज्यादा महत्व देते हैं।

अध्याय–चतुर्थ
महाराष्ट्र में दलित आंदोलन

अध्याय–चर्तुथ

महाराष्ट्र में दलित आंदोलन

महाराष्ट्र भारत के विकसित राज्यों मे सें एक है। इस प्रदेश की अपनी सामाजिक सांस्कृतिक विशेषता है। महाराष्ट्र का भौगोलिक स्थिति देखें तो इसमें तीन क्षेत्र आते हैं। कोंकण, पश्चिमी महाराष्ट्र तथा पूर्व में पश्चिमी खानदेश आते हैं। कोंकण में तीन जिले (ठाणे, कोलाबा, रत्नागिरी), पश्चिम महाराष्ट्र (पूना, सतारा, अहमदनगर, सोलापुर, नासिक) पूर्व पश्चिम खानदेश में (वर्तमान में जलगांव व धूले) शामिल हैं। गुजराती तथा कन्नड़भाषी जिलों के साथ औद्योगिक, राजनीतिक तथा समाजशास्त्रीय दृष्टि से ब्रिटिश भारत का यह सबसे प्रभावशाली प्रदेश था। 1885 में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बंबई में हुआ तथा यहां से कांग्रेस के कई नेता निकले। यह वह क्षेत्र तथा जिसमें से सबसे अधिक जुझारू तथा आमूल परिवर्तनवादी सामाजिक जन आंदोलनो का उदभव हुआ। ज्योतिबा फूले का सत्यशोधक समाज का आंदोलन उनमे से एक था।[1] मुंबई में ही प्रारंभिक पूंजीवाद तथा श्रमिक वर्ग संगठन बनने की शुरूआत हुई। महाराष्ट्र में ही डॉ बी. आर. अम्बेडकर के नेतृत्व में एक मजबूत दलित आंदोलन उभर रहा था। जिसका फैलाव संपूर्ण भारत में हुआ।

महाराष्ट्र में दलित आंदोलन की पृष्ठभूमि प्रारंभ से ही मौजूद थी। अस्पृश्य जातियों में महारों की जनसंख्या प्रतिशत सबसे ज्यादा है चमार तथा मातंग दूसरे तीसरे क्रम पर हैं। महारों की जाति अन्य जातियों की तुलना में ज्यादा शिक्षित एवं आधुनिक थे। महार रेजीमेंट की वजह से महार आधुनिक हो गए। उनमें शिक्षा का प्रसार होने से तर्क बुद्धि वाद विवाद की क्षमता विकसित हुई। इन लोगों ने अध्यात्म सुख के लिए भगवान को माना लेकिन भगवान और मनुष्य के बीच आने वाले ब्राहम्ण और ब्राह्मणवाद को नहीं माने या मानने को लेकर सशंकित थे। शिक्षित होने की वजह से अधिकारों के प्रति सजगता आई। महार भी सोचने को मजबूर हुए कि

---

[1] आमवेट गेल, दलित और प्रजातांत्रिक कांतियां, पेज–134

समाज में जो भेदभाव है वो भगवान द्वारा नहीं बनाया हुआ है, बल्कि मनुष्य द्वारा ही बनाया गया है। एक खास वर्ग अपनी सर्वोच्चता कायम रखने के लिए समाज को वर्णों में बांटे हुए है। 19 वीं सदी में जब संपूर्ण मानव सभ्यता अभूतपूर्व रूप से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलाव की ओर बढ़ रहा था। उस समय भारत जाति, भेदभाव, अंधविश्वास और पिछड़ेपन के अंध खाई में घिरा हुआ था। उसी समय पश्चिमी भारत में कुछ सुधारवादी प्रकाश की लौ उभर रही थी। फुले, नारायण गुरू, मेघाजी लोखंडे, गोपाल बाबा वालगंकर, शिवराम जनबा कांबले, सावित्रिबाइ फुले और पंडिता रमाबाई जैसे व्यक्तित्व लोगों में अधिकार और बदलाव की बात कर रहे थे। डॉ अंबेडकर से पूर्व शंभा जी तुकाराम गायकवाड़, गोविंद राम जी अडरेकर (महाद सत्याग्रह के पथ प्रर्दशक), शंभा जी (महाद सत्याग्रह के वास्तविक संगठनकर्ता) ने लोगों मे चेतना के संचार का कार्य आरंभ कर दिया था। उन्होंने डॉ अंबेडकर को वितीय मदद की थी जब वे पहले गोलमेज सम्मेलन के लिए लंदन जा रहे थे।[2] शंभा जी की सेवा भाव को देखकर लोग प्यार से दादासाहेब बुलाते थे। दादासाहेब और इनके अनुयायियों का कार्य क्षेत्र मुंबई, कोंकण, ठाणे था। मानगांव परिषद में डॉ अंबेडकर ने सबसे पहले जनता के समक्ष अपने विचारों को रखा। जो कि 1920 में शाहू जी महाराज द्वारा कोल्हापुर में आयोजित किया गया था। दादासाहेब शंभा जी तुकाराम गायकवाड का निधन 1949 में हो गया। जब डॉ अंबेडकर ने एससीएफ का गठन किया उस समय दादासाहेब वयोवृद्ध थे। गोपाल बाबा वालगंकर रिटायर्ड हवलदार कोंकण के महार थे। वे फुले के सत्यशोधक समाज से भी सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे। अनार्य दोष परिहार मंडली के संस्थापक सदस्यों में से एक थे। वालगंकर ने ही सर्वप्रथम पेटिशन दायर कर मुंबई सरकार से मांग की थी कि अस्पृश्य समुदायों को समान रोजगार और नागरिक अधिकार मिले।[3] औपनिवेशिक भारत में मुंबई प्रेसिडेंसी में मराठवाड़ा के अलावा बड़ौदा तथा गुजरात के अन्य भाग सम्मिलित थे। जिनमें पूना, सतारा, कोल्हापुर जैसी रियासतें और विदर्भ के भाग भी थे। सभी जगह दलितों के साथ अमानवीय पशुवत व्यवहार होता था। पूना में पेशवाई काल में दलितों की दशा बेहद

---

[2] Omvedt Gail (2011), Building the Ambedkar Revolution: Sambhaji Tukaram Gaikwad and the Kokan Dalits, page-60

[3] प्रसाद माता, भारत में दलित जागरण के अग्रदूत, पेज–23

दयनीय थी। दलितों को कमर में झाड़ू बांधकर, गले में काला धागा बांधकर रहना पड़ता था। दलितों का मंदिर में प्रवेश वर्जित था। कुएं, तालाब से पानी लेना वर्जित था, जबकि पशु वही पानी पी सकते थे।

मध्यकाल में महाराष्ट्र में कई संतों ने जिनमें ज्ञानदेव, नामदेव, चोखामेला, संत तुकाराम आदि प्रमुख थे।[4] जिन्होने जाति प्रथा, भेदभाव, छुआछूत का विरोध किया। इन संतों ने भगवान तक अस्पृश्यों के पहुंच का प्रयास किया। इनका उद्देश्य मूलतः अध्यात्मिक सुख प्रदान करना था। समाज सुधार एवं सामाजिक व्यवस्था को बदलने का प्रयास प्रभावहीन रहा। दलितों में भक्ति और पवित्रता का भाव जगाने तक ही भक्त संत कवि सीमित रहे। भक्ति आंदोलन जिसका आरंभ भारत के दक्षिण राज्यों से हुआ। संभवतः इस्लाम और क्रिश्चियन धर्म की स्थापना के दौरान से भक्ति आंदोलन मुख्य रूप से एकेश्वरवाद, भावना पर आधारित आराधना, आत्मसमर्पण, गुरुप्रेम, रूढ़ियों के खिलाफ, संस्कृत का बहिष्कार था। जिसमें निम्न जाति के रेडिकल संतों का प्रादुर्भाव हुआ। समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध था। इन संतों में रविदास, चोखामेला, कनक, नंदनारा थे। महिला संतों ने भी प्रभु प्रेम और समानता की बात कही थी। जिसमें तमिलनाडु की अंडाल, राजस्थान में मीराबाई, अक्का महादेवी कर्नाटक से, महाराष्ट्र में चोखामेला की पत्नी सायराबाई उल्लेखनीय हैं। इन्होंने सामाजिक रूढ़ियों पर गहरा चोट किया। मानव प्रेम, ईश्वर तक सबकी पहुंच बिना किसी भेदभाव के, समाज के निम्न वर्ग के जीवन में आशा की किरण जगाई। इन संत कवियों ने अपने ऊपर जो जातिगत प्रतिबंध था उसको तोड़कर दलित समुदाय के "संत" कहलाए। जोकि पहले केवल एक विशेष वर्ण के व्यक्ति ही बनते और कहलाते थे। इन भक्त संत कवियों ने मानव प्रेम, करुणा, समानता की बात कही। जातिप्रथा तथा छुआछूत पर प्रहार भी किया लेकिन इनके यह सब प्रयास आध्यात्मिक सुख तक ही सीमित रहे। दलितों को केवल भगवान की पहुंच तक ही रखा अध्यात्म शक्ति मोक्ष तक सीमित कर दिया। दलितों को सामाजिक, आर्थिक रूप से सशक्त करने में भक्ति आंदोलन का प्रभाव न के बराबर है। भक्ति आंदोलन ने समाज में व्याप्त जातिगत विभाजन को दूर करने में कोई प्रभाव नहीं

---

[4] वही।

डाला। ग्रामीण जीवन में जो सामाजिक विभाजन, आर्थिक विभाजन था वह ज्यों का त्यों बना रहा। भक्ति आंदोलन तत्कालीन समाज के राजनीतिक ढांचे में भी कोई बड़ा परिवर्तन नहीं कर सकता। भगवान, अध्यात्म, मोक्ष तक ही अपने को समेटे हुआ था।

महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन के बाद औपनिवेशिक भारत में अंग्रेजों के आगमन के बाद जब भारत की कुछ दलित अंग्रेजी शिक्षा के संपर्क में आए। पाश्चात्य साहित्य, विचारों के संपर्क में आए। कुछ दलितों ने पश्चिम के खुले समाज, समानता आदि विचारों का अध्ययन कियां तब उन्हें भारत के बंद सामाजिक व्यवस्था की सड़ांध का एहसास हुआ। जहां मनुष्य का मनुष्य के प्रति अमानवीय व्यवहार था। सामाजिक कुप्रथा, अत्याचार, अन्याय, घृणा हर स्तर पर भेदभाव विद्यमान था। ऐसी परिस्थिति में इन बुराइयों के खिलाफ भारत में समाज सुधार आंदोलन आरंभ होने लगे। 17वीं एवं 18वीं सदी में भारत में अनेक सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलन देखने को मिले हैं। बाल विवाह, सती प्रथा, जाति प्रथा के विरुद्ध अनेक समाज सुधारकों का प्रयास सराहनीय है। राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, देवेंद्र नाथ टैगोर आदि अनेक महान व्यक्तियों ने समाज में पल रहे बुराइयों को मिटाने के लिए अनेकानेक कार्य किए। ब्रहम समाज, आर्य समाज जैसे समाज सुधारक संगठनों का गठन भी किया गया। महाराष्ट्र में दलित आंदोलन के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में गोपाल बाबा वालंगकर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले का योगदान अभूतपूर्व है, जिन्होंने डॉ अंबेडकर के सामाजिक, राजनीतिक आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की थी।

डॉ अंबेडकर संपूर्ण भारत के दलित आंदोलन के केंद्र हैं। किसी भी प्रकार का दलितवादी आंदोलन, विचार, विचारधारा डॉ अंबेडकर के बिना नहीं है। उन्होंने सर्वप्रथम दलितों के अधिकार, वास्तविक स्थिति एवं समाज में दलितों के साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार को विश्व पटल पर लाया। दलितों के मुद्दे को भारतीय राजनीति के मुख्य मंच पर लाये। दलितों के अधिकार की लड़ाई को वैचारिक आधार प्रदान किया। भारतीय समाज वर्चस्ववादी ताकतों के असली विद्रूप चेहरे को सामने लाए। जहां केवल घृणा व्याप्त थी। गोलमेज सम्मेलन और पूना पैक्ट के बाद

डॉ अंबेडकर भारत के दलितों के सर्वमान्य एकल नेता के रूप में स्थापित हुए।[5] डॉ अंबेडकर ने संविधान लिखकर भारत में सामाजिक न्याय की नींव डाली। सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय जैसे विचारों को भारतीय समाज में लाना डॉ अंबेडकर की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।

इस अध्याय में महाराष्ट्र में दलित आंदोलन की भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालखंडों का क्रमवार विश्लेषण किया गया है। डॉ अंबेडकर को केंद्र मानते हुए, महाराष्ट्र के दलित आंदोलन का विभाजन निम्न तीन चरण में किया गया है: –

1. डॉ अंबेडकर के पूर्व महाराष्ट्र में दलित आंदोलन (1920 से पूर्व)
2. डॉ अंबेडकर एवं दलित आंदोलन (1920–1956)
3. डॉ अंबेडकर के बाद दलित आंदोलन की दशा एवं दिशा

प्रथम चरण में दलित आंदोलन या दलित समाज की सोच यहीं तक थी कि तत्कालिक सामाजिक व्यवस्था में उनकी स्थिति पशुवत थी। सशक्त आवाज नहीं उठा पा रहे थे। संगठन, एकता, आर्थिक स्थिति सबकुछ दयनीय थी। औपनिवेशिक शासन की वजह से भारतीय समाज में थोड़ा सा सुधार जरूर आया। अस्पृश्य जिसे ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत पूरी तरह से शस्त्र, शास्त्र, संपत्ति, विद्या, गौरव से विहीन रखा गया था। ब्रिटिश सत्ता में सेना एवं चतुर्थ श्रेणी पदों पर इन अस्पृश्य को कुछ रोजगार प्रदान किया गया। बाबासाहेब के पिता एवं उनके माता के परिवार सदस्य के इसी ब्रिटिश सेना में कार्यरत थे। इसी क्रम में ज्योतिबा फुले भी अंग्रेजी शिक्षा एवं ईसाई मिशनरीयों के संपर्क में आकर वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को ठीक ढंग से समझे तथा सुधारात्मक क्रांतिकारी कदम उठाएं।

महाद सत्याग्रह

यह सम्भवतः भारत का पहला बड़ा जन सत्याग्रह था जिसका नेतृत्व अम्बेडकर कर रहे थे। महाद कोंकण का एक प्रमुख शहर है। महार कांफ्रेंस का आरम्भ आर बी मोरे ने किया था।[6] महाद में ही चावदार तालाब स्थित है जिसके

---

[5] आमवेट गेल, डॉ अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–46

[6] Teltumbde Aanand, Dalits past present and future, page-71

पानी का प्रयोग पीने के पानी के रूप में किया जाता था। बम्बई लेजिस्लेटिव काउन्सिल एवं महाद नगरपालिका ने अस्पृश्यों को भी चावदार तालाब से पानी पीने की अनुमति दी थी।[7] केवल सामाजिक बेड़ियां अस्पृश्यों को पानी पीने से रोक रखी थी। 25–27 दिसम्बर 1927 को एक कांफ्रेंस के बाद एक व्यापक जन भागीदारी वाला सत्याग्रह करने का निर्णय लिया गया। जिसमें पूरे महाराष्ट्र से लगभग 10,000 लोग इकट्ठा होकर महाद के चावदार तालाब से पानी पीना चाहते थे। जिसमें दलितों की भागीदारी ज्यादा थी। कट्टर हिन्दूवादी लोगों ने अस्पृश्यों के इस कदम का जबरदस्त विरोध किया। कानूनी सामाजिक हर तरीके से विरोध, हिंसा भी हुई। अस्यपृश्यों को जो शांतिपूर्ण तरीके से प्रदर्शन कर रहे थे उन पर भी पथराव एवं लाठियों से प्रहार किये गये भगदड़ सी मच गयी। अम्बेडकर एवं उनके साथियों को भी काफी चोटें आई। 1920 के बाद महाराष्ट्र में दलित आंदोलन का आरम्भ हो चुका था। वैसे तो अस्पृश्यों के बीच जागरूकता 19वीं सदी के मध्य से ही आने लगी थी लेकिन उसमें व्यक्तिगत प्रयास तक ही सीमित था। व्यापक जनभागीदारी एवं लोगों का उत्साह 20वीं सदी से दिखने लगा। दलित आंदोलन को जिस निर्णायक कदम ने इसे मुक्ति आन्दोलन बनाया वह 1927 में आयोजित महाद सत्याग्रह था। इस सत्याग्रह ने अम्बेडकर को इस बढ़ते आंदोलन का नेता स्थापित कर दिया।[8] लंदन से पढ़ाई खत्म कर 1923 में डॉ. अम्बेडकर भारत वापस आए। यहां बम्बई में उन्होंने संगठन बनाने का प्रयास किया। 1924 में बहिष्कृत हित कारिणी सभा बनाइ।[9] इस सभा का उपयोग उन्होंने दलित समाज के लोगों को इकट्ठा करने, संगठित करने, ग्रामीण क्षेत्रों में सम्मेलन करने तथा सभाएं आयोजित करने के कामों के लिए किया। उसी समय डॉ अम्बेडकर को 1926 में बंबई विधान परिषद की सदस्यता के लिए नामांकित भी किया गया। बहिष्कृत हितकारिणी सभा के अन्तर्गत 20 जुलाई 1924 को ही अम्बेडकर ने अपना प्रसिद्ध त्रयी सूत्र 'शिक्षित बनो', 'संघर्ष करो', 'संगठित रहो' (EAO) का संकल्प भी दिया। डॉ अम्बेडकर का ज्यादा ध्यान अपने लोगों के उद्धार के प्रति रहा। उस समय इस समुदाय के लोग भी उन्हें उम्मीद की नजर से देखते थे। सारे पश्चिमी महाराष्ट्र के दलितों ने पत्र

---

[7] वही।
[8] वही, पेज–144
[9] वही।

द्वारा अपनी समस्याओं को उनसे बताते थे। डॉ अम्बेडकर का अस्पृश्यों को सशक्त करने का कार्य भावनात्मक तथा अपनत्व लिए हुए था। चूंकि अम्बेडकर स्वयं उस समाज से थे इसलिए वे पीड़ा, उत्पीड़न, अत्याचार को बखूबी समझते थे। महाद तालाब सत्याग्रह लोगों को संघर्ष करने के लिए तैयार रहने की इच्छा और अम्बेडकर की संगठन बनाने का प्रतिभा का प्रतीक था। 1920 में अस्पृश्यों के लिए सार्वजनिक कुओं, तालाबों, सड़कों और मंदिरों को खोलने के लिए आंदोलन हो रहे थे। डॉ अम्बेडकर के दिमाग में बहुत पहले से इस सम्बन्ध में सीधी कार्यवाही की योजना थी। महाद के चावदार तालाब की ओर प्रस्थान करते समय अस्पृश्यों पर वहां के हिन्दुओं द्वारा बहुत ही हिंसात्मक व्यवहार किया गया। महाद की गलियों से होता हुआ अनुशासित हजारों लोगों का जुलूस शांतिपूर्ण ढंग से तालाब के किनारे जा पहुंचा। अम्बेडकर एवं अन्यों ने अंजुलि में भरकर तालाब का पानी पिया। डॉ अम्बेडकर एवं अस्पृश्यों के लिए यह एक ऐतिहासिक एवं महत्वपूर्ण घटना थी। यह हिन्दू इतिहास में एक नया अध्याय था जो सदियों से सोए एवं दबे समाज में स्वाभिमान की अलख जगा रहे थे। साथ ही सामाजिक क्रांति का उद्घोष करते हुए सवर्ण हिंदू समाज को समय के अनुसार बदल जाने की सूचना भी दे रहे थे। लेकिन यह कदम हिन्दू जातियों के लिए असह्य था हिन्दूओं के सदियों से बने वर्चस्व के टूटने जैसा था। स्थानीय हिन्दूओं द्वारा अफवाह फैला दी गयी कि अब अस्पृश्य वीरेश्वर मंदिर में प्रवेश करने वाले हैं।[10] इसके वजह से पूरे महाराष्ट्र का माहौल हिंसात्मक हो गया। अस्पृश्यों को मारा जाने लगा, बहुत दमन हुआ। पण्डाल गिरा दिया गया, खाना मिट्टी में मिला दिया गया, लेकिन अस्पृश्यों ने हिंसा का प्रयोग बिलकुल नहीं किया। **महाद सत्याग्रह तीन सिद्धान्तों पर आधारित था – 1. अहिंसा के रास्ते पर चलना है। 2. राज्य से मुकाबला नहीं करना है। 3. दलितो का संघर्ष मुख्य सामाजिक सांस्कृतिक आधार पर लड़ना है।**[11] यही **सिद्धांत दलित आंदोलन** का बाद में भी सदाचार सिद्धांत बना। ये एक तरह से दलित आंदोलन की विशिष्टता बनी। महाद सत्याग्रह के दौरान हिन्दू जातियों द्वारा जो हिंसा की गयी इससे डॉ अम्बेडकर बहुत दुखी हुए। मानवीय हकों को हासिल करने के लिए

---

[10] परिहार एल एम, डॉ अंबेडकर लाइफ एंड मिशन, पेज–69

[11] वही

इस पहले आन्दोलन में महाद सत्याग्रह एक नई दिशा की ओर रखा कदम था जो अस्पृश्यों की मानसिक क्रांति का परिचायक बना। इस सत्याग्रह ने दलितों को सीख दी कि सदियों से दबे कुचले अधिकार हासिल किए जा सकते हैं और संगठन द्वारा संघर्ष सफलता अवश्य दिलाएगा। महाद सत्याग्रह द्वारा तालाब के पानी का पीना, पुलिस द्वारा शिकायत का दर्ज होना, ब्राह्मणों द्वारा तालाब के पानी की शुद्धिकरण सब कुल मिलाकर घटना की प्रतिध्वनि सारे महाराष्ट्र में फैल गई। 1927 में डॉ अम्बेडकर ने साप्ताहिक 'बहिष्कृत भारत' का प्रकाशन प्रारम्भ किया तथा महाद की घटना के प्रति सहानुभूति तथा जन समर्थन प्राप्त कर लिया। महाद सत्याग्रह में अनन्त राव चित्रे (कायस्थ), जी.एन. सहस्त्रबुद्धे (ब्राह्मण) एवं सुरेन्द्र नाथ टिपनिस जैसे सवर्ण लोगों ने भी अम्बेडकर का साथ दिया।[12] 13 मार्च 1927 को बंबई में रिटायर्ड सूबेदार सवादकर की सहायता से समता सैनिक दल की स्थापना की गई।[13] हिंदूओं के हमले की आशंका से रक्षा के लिए। इसका मुख्य कार्य था दलित वर्ग मिशन,स्वतंत्र मजदूर पार्टी,एससीएफ द्वारा आयोजित सभा सम्मेलनों में अनुशासनबद्ध व्यवस्था करना, अस्पृश्य जाति के युवकों में अनुशासन की भावना पैदा करना, अस्पृश्य समाज पर होने वाले अत्याचारों की जांच करना।

इस प्रकार महाद सत्याग्रह ने महाराष्ट्र में दलित मुक्ति आन्दोलन का आधार बना। डॉ अम्बेडकर दलितों के नेता बनने लगे जिन्हें लोगों का समर्थन था। महाद सत्याग्रह से वहां के मुसलमानों ने तालाब के पानी को अशुद्ध नहीं माना। कुछ प्रगतिशील विचारों के सवर्ण भी अस्पृश्यों के साथ जिनमें बापूराव जोशी भी हैं। डॉ अम्बेडकर महाद तालाब का सवर्णों द्वारा शुद्धिकरण को अस्पृश्यों का अपमान समझने लगे। हिन्दू जाति के दबाव में आकर महाद नगरपालिका ने सभी के तालाब के पानी पीने के फैसले को वापस ले लिया। जिसके बाद डॉ अम्बेडकर ने कोर्ट में अपील की। अब महाराष्ट्र से बाहर पूरे देश में उनके संघर्ष की चर्चा होने लगी। इस के अनुसार डॉ अम्बेडकर ने फिर आगे की दलित आंदोलन की रणनीति बनाना शुरू कर दी। महाद सत्याग्रह के बाद सवर्ण हिन्दुओं का अस्पृश्यों के प्रति क्रूरतम व्यवहार देखकर डॉ अम्बेडकर मंदिर में प्रवेश आंदोलन, सड़क एवं तालाब का

---

[12] आमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–
[13] प्रसाद माता, पेज–29

प्रयोग अस्पृश्यों के करने के आन्दोलन को व्यर्थ समझने लगे थे। मंदिर में प्रवेश होने का प्रतीकात्मक अर्थ था हिन्दू समाज में एकीकृत होने का, जिसका मूल ही वर्णाश्रम एवं जाति–व्यवस्था था। डॉ अम्बेडकर हिन्दूवाद के धार्मिक सांस्कृतिक आधारों के साहित्य का गम्भीरता से अध्ययन कर रहे थे ताकि अस्पृश्यों के सांस्कृतिक ऐतिहासिक उद्भव का अध्ययन कर सके। उन्होंने मन्दिर प्रवेश आन्दोलन को बहुत पास से देखा और कई नए सामाजिक सुधारों को चिन्हित भी किया। महाद सत्याग्रह के दौरान ही डॉ अम्बेडकर ने सर्वप्रथम अलग से एक हजार के लगभग अस्पृश्य महिलाओं को साफ–सफाई, शिक्षा, दुर्व्यसन से मुक्ति, बालिका शिक्षा का मूल मंत्र दिया। जिसका तत्काल प्रभाव भाषण के अलगे दिन ही देखने को मिला। इसी सत्याग्रह के समय 25 दिसम्बर 1927 को डॉ अम्बेडकर ने मनुस्मृति को अस्पृश्यों की सारी समस्याओं का जड़ मानकर उसका दहन किया।[14] जर्मनी के प्रसिद्ध प्रोटेस्टेंट मार्टिन लूथर किंग (1483–1546) ने पोप के पाप विमोचन पत्र को जलाकर धर्म क्रांति की शुरूआत की थी। इसी प्रकार लोगों ने अम्बेडकर को भारत का मार्टिन लूथर किंग कहा। विटेनबर्ग में मार्टिन लूथर किंग ने पोप का पाप विमोचन जलाने के बाद भारत में जातिवादी व धार्मिक रूढ़िवादियों पर ऐसा हमला डॉ अम्बेडकर ने किया था। महाद शहर भारत के मार्टिन लूथर किंग डॉ अम्बेडकर का विटेनबर्ग बन गया।[15]

नासिक कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह अमरावती सम्मेलन

यह प्रवेश सत्याग्रह अस्पृश्यों के सामाजिक उत्थान के लिए था। हिन्दू धर्म में रह कर सामाजिक उत्थान के लिए संघर्ष था। बहुत हद तक यह हिन्दुओं के हृदय परिवर्तन से भी सम्बन्धित था। लेकिन इन सबके बावजूद यह स्पष्ट है कि जिस समाज में जिस समुदाय का वर्चस्व स्थापित है वह उसे क्यों भंग या कम करवाना चाहेगा। महाराष्ट्र में बीसवीं सदी में डॉ अम्बेडकर के नेतृत्व में दलित आन्दोलन सामाजिक बदलाव का पुरजोर कोशिश कर रहा था। सामाजिक समानता एवं अस्पृश्यों के अधिकार की लड़ाई को डॉ अम्बेडकर ने राष्ट्रीय मुद्दा बना दिया।

---

[14] परिहार एल एम, पेज–78

[15] परिहार एल एम, पेज–79

तत्कालीन सामाचार पत्रों में दलितों पर हो रहे अत्याचार को प्रमुखता मिल रही था। अम्बेडकर ने सामाजिक हक के लिए अस्पृश्यों के साथ उन जगहों में प्रवेश के सत्याग्रह एवं आन्दोलन शुरू किए जहां दलितों का प्रवेश वर्जित था। उन्होंने उस समय के जागरूक दलित बुद्धिजीवियों (जिनमें अधिकतर महार थे) का इन आन्दोलनों में इसलिए साथ दिया क्योंकि अम्बेडकर के मन में हिन्दू धर्म के प्रति 'ठहरो और देखो' की नीति में वह मनोवृत्ति थी जो उन्होंने कई बार व्यक्त की थी।[16] जब महार इस्लाम धर्म के ग्रहण करने का सोंचे तो उन्होंने मना किया। वे महसूस करते थे कि सम्भवतः हिन्दू धर्म में रहते हुए भी अस्पृश्यता का निवारण हो सकता है लेकिन इसमें किसी को आश्वस्त नहीं किया जा सकता। अम्बेडकर हिन्दुओं को संदेह का लाभ देना चाहते थे। इसलिए साइमन कमीशन से अलग दलितों के चुनावी अधिकार नहीं मांगी बल्कि व्यस्क मताधिकार तथा अधिक आरक्षित चुनाव क्षेत्रों की मांग की थी। वे दलित पहचान के ऐतिहासिक सांस्कृतिक मुद्दे पर 1920 तक शांत रहे विशेष रूप से गैर आर्यवादी तथा दलित मूल निवासी के मुद्दे पर। सत्याग्रह के बाद हिन्दुओं के रवैये को देखकर अम्बेडकर का मन बहुत क्षुब्ध हुआ। हिन्दुओं के मन में जो दलितों के प्रति घृणा थी उसको देखकर डॉ अम्बेडकर भांप गये कि सामाजिक सत्याग्रहों से कुछ होने वाला नहीं है। कोई भी वर्चस्ववादी समूह अपने वर्चस्व को खंडित नहीं होने देगा। शासक वर्ग शासितों को समानता का हक और अधिकार कभी नहीं देगा। तब उन्होंने अस्पृश्यों के राजनीतिक सशक्तिकरण की तरफ अपने को मोल्ड किया और राजनीतिक अधिकार दिलाने के लिए अपने प्रयासों को आवाज देते रहे। महाराष्ट्र में डॉ अम्बेडकर द्वारा अस्पृश्यों को राजनीतिक अधिकार दिलाने के लिए अनेक प्रयास किए गये हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सवर्ण हिन्दू सामाजिक परिवर्तन नहीं चाहते थे वे राजनीतिक परिवर्तन चाहते थे। भारत को औपनिवेशिक सत्ता से स्वतंत्र कराने का उद्देश्य था अंग्रेजों के हाथों से सत्ता का हस्तांतरण सवर्णों के हाथों में आ जाना। अस्पृश्य वैसे ही समाज के हाशिये पर धकेले रहते। न कोई अधिकार, न समानता, न सम्मान। अस्पृश्य राजनीतिक एवं सामाजिक गुलामी के दोहरे मार से दबे थे। राजनीतिक पराधीनता की अपेक्षा सामाजिक गुलामी ज्यादा अमानवीय और कष्टकारी थी। डॉ

---

[16] आमवेट गेल, दलित और प्रजातांत्रिक क्रांति, पेज–146

अम्बेडकर देश व समाज के शासक वर्गों से यह कहना चाहते थे कि पहले हमें सामाजिक एवं धार्मिक गुलामी से मुक्त करो तब हम तुम्हारे साथ कंधे से कंधा मिलाकर राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे। डॉ अम्बेडकर यह भलीभांति जानते थे कि अंग्रेज सरकार ही राजनीतिक तौर पर वह अधिकार दे सकती है जो सवर्ण कभी नहीं दे पाएंगे। इसलिए वे अंग्रेजों द्वारा हर राजनीतिक संवैधानिक सुधार में भागीदार बने। कांग्रेस पार्टी की तरह अंग्रेजी सत्ता का विरोध नहीं किया। वे अपने समाज के मानवीय हकों के लिए हिन्दू समाज से संघर्ष करते हुए ब्रिटिश सत्ता से अधिकार प्राप्त करना चाहते थे। डॉ अम्बेडकर दलितों का अपना संगठन बनाए। 20 जुलाई 1924 को अम्बेडकर ने बम्बई में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की।[17] यह दलितों में आत्म सम्मान भरने की नई कोशिश थी। शिक्षा का प्रसार करना एवं व्यवसायिक शिक्षा द्वारा दलितों के आर्थिक स्थिति में सुधार लाना इस सभा का मुख्य उद्देश्य था। इस सभा की चर्चा पूरे महाराष्ट्र में होने संस्था के बम्बई प्रदेश के प्रतिनिधियों का सम्मेलन 1924 में शोलापुर के बारसी नामक स्थान में हुआ। राजनीतिक व सामाजिक समानता का अधिकार की मांग की गई। जिसके लिए आर्थिक और शैक्षणिक प्रयास आवश्यक है। इस सम्मेलन में अम्बेडकर ने अपने वर्ग के उत्थान के लिए नया नारा दिया – अपनी सहायता श्रेष्ठ सहायता।[18] इस सम्मेलन में डॉ अम्बेडकर ने हिन्दुओं द्वारा किये जा रहे समाज सुधार कार्यक्रमों को जिसमें आर्य समाज, प्रार्थना समाज, हिन्दू महासभा आदि द्वारा चलाए जा रहे अछूतोद्धार कार्यक्रम को ढकोसला कहा। सवर्ण हिन्दू अपने हितों के लाभ के लिए ही अपने सुधार कार्यक्रमों को सीमित रखा है। अम्बेडकर प्रारम्भ से ही हिन्दू धर्म के आलोचक थे और वे हिन्दू धर्म को असमानतावादी धर्म मानते थे। 1924 का बारसी का भाषण अम्बेडकर के मूल विचार के अनुसार धर्मान्तरण पर अम्बेडकर के विचारों का प्रारम्भिक स्वरूप था।[19]

---

[17] परिहार एम एल, पेज–56

[18] परिहार एम एल, पेज–60

[19] ओमवेट गेल, दलित और प्रजातांत्रिक क्रांति, पेज–146

महाराष्ट्र के दलितों का राजनीतिक पटाक्षेप

डॉ अम्बेडकर एवं डी डी, घोलप को बम्बई लेजिस्लेटिव काउंसिल का सदस्य बनाया गया। बम्बई विधान परिषद के सदस्य के रूप में अम्बेडकर एक सशक्त वक्ता के रूप में उभरे। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधेयक 'महार वेतन संबंधी विधेयक' था।[20] सितम्बर 1927 में अम्बेडकर ने हिंदुओं, इसाइयों तथा अछूतों को मिलाकर एक' समता समाज संघ' का गठन कर सभी जातियों के बीच साथ भोजन करने तथा अंतरजातीय विवाह का अभियान छेड़ा। लेकिन इसका कोई विशेष परिणाम नहीं निकला।

साइमन कमीशनः– उस समय भारत में राजनीतिक असंतोष चरम पर था। 1919 के मांटेग्यू फोर्ड योजना में सुधार संशोधन पेश करने के ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन नियुक्त किया 1927 में। 03 फरवरी 1928 को साइमन कमीशन भारत के बम्बई शहर में आए,साइमन कमीशन के अध्यक्ष थे। जिसका बहुत विरोध किया जा रहा था क्योंकि उस कमीशन में एक भी भारतीय नहीं था। कांग्रेस पार्टी इसका जमकर विरोध कर रही थी। साइमन कमीशन की मदद के लिए सेन्ट्रल असेम्बली कमिटि एवं राज्य स्तर पर राज्यों में सलेक्ट बनाई गई। बंबई प्रांत की सलेक्ट कमिटि में डॉ अम्बेडकर चुने गए लेकिन मतभेद क कारण रिपोर्ट पर दस्तखत नहीं किए। कांग्रेस ने पूरे देश में साइमन कमीशन का बहिष्कार किया। असहयोग आंदोलन के बाद फैले राष्ट्रवाद की वजह से मुस्लिम लीग तथा मद्रास की जस्टिस पार्टी ने भी कमीशन का बहिष्कार किया। लेकिन अम्बेडकर तथा अन्य दलित (पेरियार) कमीशन के समक्ष साक्ष्य देने को कृत संकल्प थे। अस्पृश्यों के कुल अठ्ठारह संगठनों ने अपना ज्ञापन साइमन कमीशन को सौंपा। अम्बेडकर का लम्बा ज्ञापन मई 1928 में दो हिस्सों में सौंपा गया और बहिष्कृत हितकारिणी सभा की ओर से उन्होंने अपना साक्ष्य 23 अक्टूबर को दिया।[21] अम्बेडकर ने अपने ज्ञापन में राज्यों की स्वायत्तता तथा वयस्क मताधिकार की बात कही। उन्होंने समुदाय तथा जाति आधारित मतदाताओं की अवधारणा को नकार दिया था जिसमें मुस्लिम

---

[20] आमवेट गेल, अम्बेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–34

[21] आमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–35

समुदाय भी थे। उनका अनुरोध था कि मुस्लिमों, अस्पृश्यों, एंग्लो इंडियनों तथा गैर ब्राम्हणों को आरक्षण दिया जाना चाहिए।[22] अम्बेडकर ने लोक सेवाओं में प्रतिनिधित्व की मांग की । डॉ अम्बेडकर के समर्थकों ने प्रस्तुत ज्ञापन को 'मैनिफेस्टो आफ दलित ह्यूमन राइट्स' कहा। वहीं उनके विरोधी इसको सुनना भी नहीं पसंद करते थे।

इस प्रकार देखें तो इस कालखंड में दलित आंदोलन के लिए मानवाधिकार, संगठनात्मक, तथा वैचारिक स्तर पर भारतीय राष्ट्रवाद के विरोध का समय रहा। दलित अपने अधिकार अपने सामाजिक चेतना का विस्तार कर रहे थे।

गोलमेज सम्मेलन एवं अम्बेडकर

कांग्रेस के देशव्यापी विरोध के बावजूद डॉ. अम्बेडकर ने अस्पृश्यों के हितों को देखते हुए अपने सुझाव को साइमन कमीशन के समक्ष रखा। देश में गांधी का सविनय अवज्ञा आंदोलन चल रहा था। कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच टकराव जारी था। रियासत के राजाओं एवं अन्य विचारधारा वाले नेताओं के सहयोग से भारत के संविधान के बारे में विचार के लिए भारत के संवैधानिक सुधार एवं शासन पर विचार करने के लिए लन्दन में गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया गया। साइमन कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर भारतीयों की मांग पर विचार करने के लिए भारत की विभिन्न पार्टियों के नेताओं व रियासतदारों को भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। अक्टूबर 1930 में डॉ अम्बेडकर एवं मद्रास के रायबहादुर श्रीनिवासन को दलित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में बुलाया गया।[23] 1927 से ही डिप्रेस्ड वर्ग के सदस्यों को निर्णय निर्माण कमिटियों में शामिल कर ब्रिटिश सरकार एक नीति के तरह कार्य कर रहा था। एम.सी.राजा को सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव काउन्सिल में नियुक्त किया गया। साइमन कमीशन के सामने अस्पृश्य वर्ग के प्रतिनिधियों को अपना सुझाव रखने का मौका मिला। वैसे ही डिप्रेस्ड वर्ग के तीन लोगों को जो कि प्रोविंशियल काउन्सिल के सदस्य थे, को साइमन कमीशन की सहायता के लिए नियुक्त किया गया। जिनमें बम्बई से डॉ अंबेडकर, मद्रास से एम

---

22 Teltumbde Aanand, Dalits past present and future, page – 73

23 आमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–29

शिवराज, संयुक्त प्रांत से एम. चरण थे।[24] मद्रास तथा बम्बई के अस्पृश्य अपने अधिकार के प्रति सजग एवं आवाज उठाने वाले थे। डॉ अम्बेडकर 04 अक्टूबर 1930 को वायसराय आफ इंडिया जहाज में बैठकर लंदन के लिए रवाना हुए।[25] 12 नवम्बर 1930 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैक्डोनाल्ड की अध्यक्षता में गोलमेज कांफ्रेंस आरम्भ हुआ। लंदन के सेंट जेम्स पैलेस में आयोजित इस कांफ्रेंस का उद्घाटन किंग जार्ज पंचम ने किया था।[26] हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, निर्दलीय एवं भारतीय रियासत के रजवाड़े सम्मेलन में पहुंचे थे। तेजबहादुर सप्रू, एम आर जयकर ने आंतरिक स्वराज की मांग की। मुस्लिम लीग ने द्विराष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर मुस्लिमों के लिए अलग प्रदेश का मांग रखा। सबसे प्रमुख एवं अहम मांग डॉ अम्बेडकर का था जो कि भारत में अब तक दबा हुआ था। जिस समस्या पर कभी किसी के द्वारा ध्यान नहीं दिया गया। हिन्दू धर्म व्यवस्था के अंतर्गत अस्पृश्यता एवं उनकी समस्या कोई समस्या ही नहीं थी। बल्कि यह एक सामाजिक व्यवस्था का ही हिस्सा बन गई थी। लेकिन अंबेडकर ने अस्पृश्यों की समस्या को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लाया। राउण्ड टेबल कांफ्रेंस जैसे बड़े मंच से दलितों की बात कही। यह एक ऐतिहासिक अभूतपुर्व घटना थी। डॉ अम्बेडकर ने अपने संबोधन में कहा – मैं और रायबहादुर श्रीनिवासन को दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व करने का सम्मान हासिल हुआ है। भारत में अस्पृश्यों की संख्या 4.3 करोड़ है। दलित वर्ग खुद एक समूह बनाते हैं जो मुसलमानों से अलग है। हालांकि वे हिन्दुओं के बीच गिने जाते हैं लेकिन किसी भी अर्थ में वे इस समुदाय के अभिन्न अंग नहीं हैं। दलित वर्गों का एक अलग अस्तित्व है। उन्हें जो सामाजिक दर्जा प्रदान किया गया है वह भारत में किसी भी अन्य समुदाय की हैसियत से घृणित पहचान वाला है। भारत में दलितों की स्थिति भूदास और गुलाम के बीच की है। छुआछूत के कारण इस वर्ग को जबरन दासता और मानवीय संसर्ग पर पाबंदी ने न केवल सार्वजनिक जीवन के भेदभाव की संभावना शामिल है बल्कि अवसर की तमाम समानता का निश्चित रूप से प्रतिबंध शामिल है। उन्हें सबसे ज्यादा जरूरी बुनियादी नागरिक अधिकारों से भी वंचित रखा जाता है, जिन पर सम्पूर्ण मानवीय अस्तित्व निर्भर

---

[24] Zeliot Eleanor , Ambedkar’s world, page-129
[25] परिहार एम एल, डॉ अंबेडकर लाइफ एवं मिशन, पेज–93
[26] वही , पेज–94

करता है। अपने इस दृष्टिकोण को यहां प्रस्तुत करके मैं सही समाधान प्राप्त कराना चाहता हूं इसलिए मैं परिषद को इन परिस्थितियों से अवगत कराना चाहता था। भारत में सरकार के नौकरशाही रूप से हटाकर एक ऐसी सरकार लाना चाहिये जो लोगों की लोगों के द्वारा और लोगों के लिए हो । अम्बेडकर यह भी जानते थे कि भाषण के बाद दलितों के अधिकार, समानता की बात हिंदू उच्च वर्गों को पसंद नहीं आएगी। इसलिए यह भी स्पष्ट किया कि दलित वर्ग एवं उनके प्रतिनिधि क्यों अंग्रेजी सरकार का समर्थन करते हैं? क्योंकि दलित वर्गों ने रूढ़िवादी हिंदुओं द्वारा युगों से किए जा रहे अत्याचार और निरंकुशता से मुक्ति दिलाने वाले के रूप में अंग्रेजों का स्वागत किया। हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों के खिलाफ लड़ाईयां लड़ी है और भारत के लिए महान साम्राज्य जीता।[27] अंग्रेजों ने भले ही कुछ बदलाव का काम किया लेकिन दलितों के हालात में मौलिक बदलाव नहीं आया। डॉ अम्बेडकर का कहना था कि भारत की नौकरशाही सरकार हमारी स्थिति में अभूतपूर्व बदलाव नहीं ला सकती है। हम लोग महसूस करते हैं कि हम अपनी शिकायतों को स्वयं दूर कर सकते हैं कोई और नहीं, इसके लिए हमें अपने हाथों में राजनीतिक शक्ति प्राप्त करना होगा। इसके लिए ब्रिटिश सरकार को परिवर्तन लाना होगा। सिर्फ एक स्वतंत्र संविधान द्वारा हमें राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने का मौका मिल सकता है। राजनीतिक शक्ति के बगैर हम अपने लोगों को मुक्ति नहीं दिला सकते हैं। डॉ अम्बेडकर ने डोमिनियन स्टेट के भारत के दर्जे को भी संदेह से देखा क्योंकि इसमें दलितों की स्थिति स्पष्ट नहीं थी । डॉ अम्बेडकर ने हर उस समस्या को उठाया जो दलितोत्थान के लिए घातक था। हर बिंदु पर अपना स्पष्ट नजरिया भी रखा। उन्होंने कांफ्रेंस में यहां तक कहा कि यह समस्या इतना विकराल है कि इसके लिए अलग से एक सत्र रखना चाहिए तथा समाधान के उपाय सुझाना चाहिए।

गोलमेज सम्मेलन में डॉ अम्बेडकर ने एकीकृत राष्ट्र, वयस्क मताधिकार, अस्पृश्यों के लिए आरक्षित स्थान और अस्पृश्यता निवारण के लिए उचित प्रावधान की मांग रखी। कांग्रेस प्रथम गोलमेज सम्मेलन में अनुपस्थित थी। वहां मौजूद अन्य

[27] जाधव नरेंद्र, डॉ अम्बेडकर राजनीति धर्म और संविधान विचार, पेज–72

प्रतिनिधियों ने भी अपनी मांगों को रखा। ऐसा नहीं था कि अम्बेडकर अंग्रेजी शासन का समर्थन कर रहे थे बल्कि वे भारत की अवनतिपूर्ण व्यवस्था का वर्णन कर रहे थे। जिसके लिए ब्रिटिश सरकार भी दोषी था जिसने अस्पृश्यता को कम करने के लिए कुछ नहीं किया। मजदूर किसान के शोषण को कम करने के लिए कुछ नहीं किया। जमींदारी, सामंतवादी व्यवस्था में मजदूरों, कामगारों की दुर्दशा अत्यन्त शोचनीय थी। गोलमेज सम्मेलन में भावी स्वशासित भारत की नींव डाली गई। गोलमेज सम्मेलन का पहला दौर 19 जनवरी 1931 को समाप्त हो गया। लंदन में दलितों के मुददे को लाने के पणिामस्वरूप विदेशी मानवतावादी भी दलितों के हित में बोलने लगे जिनमें आईजैक फुट जैसे लोग थे।[28]

भारत में राजनीतिक स्थितियां लगातार बदल रही थीं। गांधी जी द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन से कांग्रेसी जेल में भरे जा रहे थे। प्रथम गोलमेज समाप्त होने के उपरांत भारत के वायसराय लार्ड इरविन जनवरी 1931 में जेल में बंद कांग्रेस के समर्थकों को रिहा कर दिया। फिर काफी विचार विमर्श के बाद सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लिया गया। 1931 में गांधी इरविन समझौता हुआ। चूंकि कांग्रेस की उपस्थिति प्रथम गोलमेज कांफ्रेंस में नहीं थी। भारत की एक मात्र राष्ट्रव्यापी होने की वजह से कांग्रेस का गोलमेज कांफ्रेंस में रहना अनिवार्य था। इसलिए दूसरे कांफ्रेंस का आयोजन कर गांधी को कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में आमंत्रित किया गया। भारत आने पर डॉ अम्बेडकर का बंबई में समता सैनिक दल द्वारा भव्य स्वागत किया गया। महाराष्ट्र के दलितों के लिए यह बहुत उत्साह एवं हौसलाफजाई का दौर था कि अस्पृश्यता जैसे मुददे विदेशी मीडिया में आ रहे थे। वास्तविक दमनकारी हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की सच्चाइ उजागर हो रही थी। वहीं दूसरी तरफ कांग्रेस एवं उसके ब्राम्हणवादी प्रतिनिधि अम्बेडकर द्वारा सम्मेलन में दिये गये वक्तव्य से चिढ़ गए थे, कांग्रेस अम्बेडकर का विरोध कर रहा था। मोहनदास करमचंद गांधी तत्कालीन भारतीय राजनीति के सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति थे जिन्हें हिन्दू धार्मिक व्यवस्था से बहुत प्रेम था। वे राष्ट्र राजनीति में आध्यात्मवाद को लाकर आदर्शवादी राज्य का निर्माण करना चाहते थे। अस्पृश्यों के लिए पृथक

---

[28] परिहार, पेज–100

निर्वाचक मण्डल बनाने के अम्बेडकर की मांग को गांधी ने एक सिरे से नकार दिया। गांधी अस्पृश्यों को हिन्दू समाज का ही एक अभिन्न अंग मानते थे। वर्ण व्यवस्था में सभी को शामिल किया गया था। जिसका गांधी समर्थन करते थे। अम्बेडकर के गोलमेज सम्मेलन से भारत लौटने के बाद गांधी ने अम्बेडकर से मिलने की इच्छा प्रकट की।

गांधी अम्बेडकर की प्रथम वार्ता

अगस्त 1931, गांधी जी बम्बई के मालाबार हिल्स स्थित मणिभवन में कुछ दिन के लिए आए हुए थे। अस्पृश्यों की स्थिति पर अम्बेडकर से चर्चा करके द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेना चाहते थे। उन्होंने अम्बेडकर को पत्र लिखकर मिलने का बुलावा भेजा। अम्बेडकर अपने सहयोगी देवराज नाइक, सीताराम शिवतरकर, प्रधान भाउराव गायकवाड़ आदि के साथ मणिभवन मिलने पहुंचे।[29] इस वार्तालाप का वर्णन मराठी साप्ताहिक 'नवयुवक' के 13 अप्रैल 1947 के अम्बेडकर विशेषांक में दिया गया था। वार्तालाप के दौरान गांधी जी ने वे सब बातें रखीं जो कांग्रेस एवं गांधी ने दलितोद्धार के लिए किये। लेकिन अम्बेडकर इसे केवल कांग्रेस की औपचारिकता वाला कार्य ही कहा, क्योंकि दलित उत्पीड़न जारी था। बम्बई एवं महाराष्ट्र में उस समय जहां दलित उत्पीड़न हुए थे, अम्बेडकर ने एक–एक करके सब गांधी को सुनाया जैसेः– नासिक में कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष ने मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया गया। दलितोद्धार के लिए जो 24 लाख रूपये खर्च होने थे सब कागजी है, इत्यादि। अम्बेडकर ने कड़े शब्दों में कहा –हम अपनी सहायता सिर्फ स्वयं ही कर सकते हैं कोई अन्य हमारा उद्धार नहीं कर सकता। कांग्रेस मुझसे नफरत करती है, मुझे देशद्रोही कहती है, मेरे सामाजिक उद्धार के आंदोलन का विरोध करती है। अम्बेडकर का क्रोध सामने आ गया। उन्होंने गांधी जी से कहा – **गांधी जी मेरी कोई मातृभूमि नहीं है।**[30] हमारी स्थिति यहां कुत्ते बिल्लियों से भी बदतर है। इस मुलाकात से पहले तक गांधी जी डॉ अम्बेडकर को ब्राम्हण समझते थे जो कि अस्पृश्यों की समस्या के लिए लड़ रहा है। गांधी जी और अम्बेडकर के

---

29 कीर धनंजय, बाबासाहेब अंबेडकर जीवन चरित, पेज–162

30 वही, पेज 165

मुलाकात का कोई नतीजा नहीं निकला। दोनों नेता अपने अपने स्टैण्ड पर कायम रहे। अम्बेडकर अस्पृश्यों की समस्या को जड़ से खत्म करने के लिए एवं इस सामाजिक व्यवस्था में समानता एवं सम्मान से जीने के लिए यह अच्छे से जानते थे कि अस्पृश्यों को अलग राजनीतिक अधिकार मिले।

सामाजिक राजनीतिक व आर्थिक लिहाज से मुसलमान व सिक्खों की तुलना में अस्पृश्य काफी पिछड़े हुए थे। पहले गोलमेज सम्मेलन में मुसलमानों को पृथक राजनीतिक अधिकारों की स्वीकृति दी गई जबकि राजनीतिक अधिकार एवं संरक्षण की आवश्यकता अस्पृश्यों को ज्यादा थी क्योंकि उनकी संख्या ज्यादा है। अम्बेडकर इसके लिए ही संघर्षरत थे। वहीं गांधी कांग्रेस एवं अन्य हिन्दू संगठनों को यह डर था कि अगर अस्पृश्यों को अलग अधिकार मिल जाएगा तो वे अल्पसख्ंयक बनकर रह जाएंगे।

यह जगजाहिर हो गया था कि गांधी एवं अम्बेडकर के बीच तनावपूर्ण बहस से ऐतिहासिक वैचारिक संघर्ष आरम्भ हो गया था। गांधी उस समय भारतीय राजनीति के आदर्शवादी सिरमौर थे। भारतीय जनता उनसे भावनात्मक रूप से जुड़ाव महसूस करती थी। डॉ अम्बेडकर द्वारा अपने लोगों के हक के लिए लड़ा जाना उनकी अपनी मजबूरी थी। दोनो नेता द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में लंदन में आमने सामने हुए। गांधी जी का यह कहना था कि वे सम्पूर्ण भारत के दलितों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। अम्बेडकर केवल अपने जिद वश ऐसी मांग कर रहे हैं। दोनो ही दावा कर रहे थे कि वे अस्पृश्यों के सच्चे प्रतिनिधि हैं पर दोनों के दृष्टिकोण में बड़ा अन्तर था। अम्बेडकर इस बात पर जोर दे रहे थे कि दलितों को राजनीतिक शक्ति दी जानी चाहिए। वहीं गांधी जी सुधारवादी तरीके तथा दलितों को उपर से सुरक्षा दिए जाने के पक्ष में थे। विधायकों की चुनावों की अपेक्षा दलितों को सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिबंधों से मुक्ति सबसे बड़ी आवश्यकता है। गांधी और अम्बेडकर के वक्तव्य कटुतापूर्ण होने लगे। गांधी जी द्वारा दलितों का प्रतिनिधि कहने का एवं हिन्दू धर्म में विभाजन पैदा करना, भारत की संस्कृति की दुहाई देना

अम्बेडकर को असहनीय एवं मूर्खतापूर्ण लगा।[31] अम्बेडकर ने कहा –इसके पीछे ब्राह्मण तथा अन्य ऊंची जाति के लोग थे जो भारत की सामाजिक–आर्थिक स्थितियों पर अपना एकाधिकार बनाए रखना चाहती थी। क्या अलग निर्वाचन दलितों के लिए इतना हानिकारक था? इसका परिणाम हम आज के भारत की राजनीति में देखते हैं? दलितों को केवल वोट बैंक बना कर रख दिया गया है। दलितों के नेता जो कि मूक बधिर होकर सवर्णों के पिठ्ठू बने हुए हैं। भारत में अम्बेडकर एवं गांधी के टकराहट को अखबारों में छाप रही थी। अम्बेडकर की निंदा एवं उनके खिलाफ लोगों को भड़काया जा रहा था। कांग्रेस पी. बालू (अस्पृश्य) को आगे करके यह कह रहा था कि सभी अस्पृश्य अंबेडकर के साथ नहीं हैं।[32] वहीं दूसरी तरफ अम्बेडकर एवं उनके समर्थक प्रदर्शन कर रहे थे। समता सैनिक दल ने भरपूर योगदान दिया एवं अन्य संगठनों ने भी अम्बेडकर का साथ दिया। महाराष्ट्र में अम्बेडकर दलितों को एकजुट करने की लड़ाई जीत गए थे। महात्मा गांधी को सम्मेलन से लौटने के बाद अस्पृश्यों द्वारा हजारों की संख्या में इकट्ठा होकर काले झण्डे दिखाये गये। अम्बेडकर का भी विरोध हुआ लेकिन बहुमत के हिसाब से अस्पृश्यों द्वारा गांधी का विरोध ज्यादा हुआ। अम्बेडकर ने इस पूरी घटना का वर्णन अपनी पुस्तक **'व्हाट कांग्रेस एंड गांधी डू टू द अनटचेबल्स'** में किया है। जनवरी 1933 के टाइम्स आफ इंडिया में लिखा गया – हिन्दू राजनीतिज्ञ अब दलितों को गले लगाने लगे हैं। अंशतः इसलिए क्योंकि देश की राजनीति में दलितों का महत्वपूर्ण प्रवेश हो चुका है। इसके अलावा उनकी स्वयं के भविष्य की चिंता है। यदि डॉ अम्बेडकर चाहते हैं तो इन लोगों को न केवल हिंदुओं में बल्कि ब्राह्मणों में शामिल करना पड़ेगा। आज की स्थिति यही है।[33]

अगस्त 1932 रैम्जे मैक्डोनाल्ड का पंच निर्णय (कम्यूनल अवार्ड)

तीसरे गोलमेज सम्मेलन के समय कांग्रेस ने डॉ अम्बेडकर को ब्रिटिश सरकार की नजर में कमतर करने के लिए अस्पृश्य समाज से ही ऐसे लोगों को चुना जो कांग्रेस की बोली बोले। एम.सी.राजा और पी. बालू क्रिकेटर ने यह काम

---

[31] आमवेट गेल, दलित और प्रजातांत्रिक क्रांतियां, पेज–164
[32] वही, पेज– 165
[33] वही, पेज–165

बखूबी निभाया। डॉ अम्बेडकर ने अपने सहयोगी शिवतरकर को पत्र लिखकर दुःख जताया कि हमें हिन्दू व्यवस्था अंग्रेजी सरकार, ब्राह्मणवाद कांग्रेस के साथ–साथ अस्पृश्य नेताओं से भी संघर्ष करना पड़ रहा है। दलितों के मन में डॉ अम्बेडकर के प्रति अपार श्रद्धा बनी हुई थी लेकिन भारत का शासक अभिजात्य वर्ग डॉ अम्बेडकर को कम आंकने एवं उनकी महता को कम करने की कोशिश में लगातार लगा हुआ था। इसी क्रम में राजा–मुंजे पैक्ट भी हुआ जो असफल रहा। 20 अगस्त 932 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैक्डोनाल्ड ने '**कम्युनल अवार्ड**' की घोषणा की। इस अवार्ड के तहत दलित वर्ग के लिए प्रांतीय सभाओं में अलग से सुरक्षित सीटें स्वीकृत की गई तथा दलित वर्ग के लोगों को दो वोट देने का अधिकार मिला। दो में से एक वोट का अधिकार अपने दलित वर्ग का प्रतिनिधि चुनने के लिए तथा दूसरा वोट का अधिकार सामान्य चुनाव क्षेत्र से सामान्य प्रतिनिधि चुनने के लिए मिला। यह अधिकार मिलना डा. अम्बेडकर की भारी जीत थी। हिन्दू अल्पसंख्यक होने की डर से इस अवार्ड का भारत में निंदा एवं विरोध किया गया। गांधी ने इसके खिलाफ पूना के यरवदा जेल से ही आमरण अनशन शुरू कर दिया। डॉ अम्बेडकर के उपर गांधी जी के बातों को मानने का जबरदस्त दबाव था, साथ ही अवार्ड रदद करने का भी। गांधी अलग निर्वाचक नहीं बल्कि अस्पृश्यों के लिए विधानमंडल में उचित प्रतिनिधित्व चाहते थे।

पूना पैक्ट

तेजबहादूर सप्रू एवं अंबेडकर के प्रयत्नों से अंतिम समझौता का रूप दिया गया। दो स्तरीय व्यवस्था बनी। पूना पैक्ट के परिणाम से अम्बेडकर निम्न वजहों से संतुष्ट थे । पहला, दलितों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान मिल गए थे। दूसरा, दलितों को राजनीतिक अधिकार के साथ राजनीति में प्रवेश का मौका मिला। तीसरा, वैश्विक पटल पर दलित समस्या को उठाया गया। चौथा, गांधी जी का यह दावा कि वे अस्पृश्यों के प्रतिनिधि हैं, यह बात खत्म हो गई। अम्बेडकर दलितों के एकमात्र प्रतिनिधि एवं नेता बन कर उभरे। गांधी हिन्दू जातियों के प्रतिनिधि थे और अम्बेडकर दलितों के।

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी का गठन

पूना पैक्ट के बाद डॉ अम्बेडकर का सवर्ण ब्राम्हणवादी पार्टी एवं राजनीति से मोहभंग हो गया था। तात्कालिक समय में पूरे विश्व में पूंजीवाद एवं औपनिवेशिक शासन के खिलाफ विद्रोह हो रहे थे। साम्यवाद का प्रचार प्रसार बढ़ रहा था। मार्क्सवाद का आदर्श लगभग सभी नेताओं पर असर कर रहा था। मानवाधिकार, समानता, स्वतंत्रता जैसे विचार सबको समझ में आने लगे थे एवं इसके लिए प्रदर्शन भी हो रहे थे। भारत में औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध भारतीयों में सजगता बढ़ रही थी। स्वशासन एवं संवैधानिक सुधार की गतिविधियां बैठकें, समिति अपने काम में लगी हुई थी। लोथियन समिति भारत में वयस्क मताधिकार की योग्यता के लिए गठित हुआ था। कांग्रेस एवं अन्य हिन्दूवादी संगठन अम्बेडकर की दलितों के एकमात्र नेता की छवि को धूमिल करने के लिए अपने अनुसार दलित नेता तैयार कर लिए थे। जो उनके अनुसार बोले और काम करें। पूना पैक्ट का सबसे खराब नतीजा यही रहा। दलित समुदाय को वैसा जनप्रतिनिधि नहीं मिला जो उनका हितैषी हो एवं दलितों के वास्तविक उत्थान का प्रयास करे। बल्कि वैसे लोग राजनीति में सक्रिय हो गए जो सवर्णो के पिट्ठू बनकर रह गए। महाराष्ट्र में दलितों के बीच जाति के आधार पर बांटने का काम कांग्रेस द्वारा किया जाने लगा था। अम्बेडकर महार जाति से थे उनके विरूद्ध चमार एवं मांग जाति के नेता को कांग्रेस समर्थन दे रही थी। कांग्रेस का 'डिवाइड एवं रूल' नीति जो अंग्रेजों से आई थी, दलितों पर आजमाना शुरू हो गया। यह 'बांटो और राज' करो की नीति वर्तमान समय तक भारतीय राजनीति में हावी है। दलितों के बीच विभाजन पैदा करना। **'व्हाट कांग्रेस एंड गांधी डू टू द अनटचेबल्स'** पुस्तक में डॉ अम्बेडकर ने कड़े शब्दों में कहा है कि पूना समझौते के अनुसार नई निर्वाचन पद्धति के अंतर्गत आरक्षित सीटों से निर्वाचित अस्पृश्य प्रत्याशियों पर किस प्रकार हिंदू बहुलवादियों का नियंत्रण रहेगा। पूना पैक्ट हिन्दू जाति के वर्चस्व का प्रतीक बनकर रह गया। जिसका खामियाजा आज तक दलित समाज उठा रहा है। उत्तर प्रदेश के दलितों के नेता कांशीराम ने 'चमचा युग' कहा था। और अपनी पार्टी ' बहुजन समाज पार्टी' बनाया। पार्टी ने दलितों तथा अन्य शूद्र जातियों को एक कर

इस मुददे के निवारण की मांग की । लेकिन यह पार्टी भी ब्राम्हणवाद एवं भ्रष्टाचार का शिकार हुई। निर्वाचन प्रतिनिधित्व का मामला अभी भी बरकरार है।[34] दलितों को राजनीतिक रूप से सशक्त करने के लिए डॉ अम्बेडकर ने 1936 में अपनी राजनीतिक पार्टी बनाई। जिससे आगामी चुनाव में दलितों की समस्याओं का सीधे प्रतिनिधित्व हो सके। क्योंकि पूना पैक्ट एवं किसी भी तरह के हिन्दू व्यवस्था में सुधार से अम्बेडकर का मोहभंग हो गया था। डॉ अम्बेडकर ने 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' का गठन 1936 में किया। जो कि इंग्लैण्ड के फेबियन पार्टी के तर्ज पर था।[35] पार्टी के घोषणापत्र में रेडिकल रिफार्म एजेण्डा था। यह किसी विशिष्ट जाति की पार्टी नहीं थी बल्कि यह तो मजदूर वर्ग की पहचान थी। इसका उद्देश्य 'जनता' पत्रिका में प्रकाशित किया गया था जिसका स्वरूप सामाजिक और लोकतांत्रिक था तथा यह समकालीन किसी भी समाजवादी उद्देश्य की भांति प्रगतिशील था।[36] किसान एवं मजदूरों के अधिकार के लिए पार्टी ने अपना संकल्प बनाया। महाराष्ट्र के विदर्भ एवं बम्बई कांकण क्षेत्र में प्रचलित खोती प्रथा, जमींदारी प्रथा, तालुकेदार प्रणाली को हटाये जाने और निर्वासित किये जाने से सुरक्षा प्रदान करने संबंधी विधान का प्रस्ताव था। 1937 के बम्बई लेजिस्लेस्टिव इलेक्शन में इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी मुख्य विपक्षी पार्टी बनकर उभरी। 17 में से 14 सीटों पर विजय दर्ज की। जिसमें से 11 रिजर्वड सीटें जीती, कुल 13 सीटों में से एवं 3 सीटें अनारक्षित सीटों में से।[37] ज्यादातर मजदूर एवं कामगार वर्ग के लोगों में दलितों की संख्याबल ही थी। अम्बेडकर ने 'जातियों के विनाश' लेख में यह पाया था कि जाति 'मजदूरी का विभाजन' नहीं होकर 'मजदूरों का विभाजन' है। जो कि 'ग्रेडेड इनइक्विलिटी' (वर्गीकृत असमानता) पर आधारित है। खोती प्रथा को खत्म करने के लिए अम्बेडकर ने विधेयक भी प्रस्तुत किया। इस प्रकार वे प्रथम विधायक बने जिन्होंने कृषक वर्ग की दुर्दशा (दासत्व) को दूर करने का प्रथम प्रयास किया। ये कृषक कोंकण क्षेत्र के दलित और कुनबी जातियों से थे। कांग्रेस एवं हिन्दू महासभा जैसे प्रो. खोती लॉबी ने विधेयक को रोक दिया । जिसके खिलाफ डॉ अम्बेडकर ने

---

[34] आमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–152

[35] Teltumbde Aanand, Dalits, page-52

[36] आमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–70

[37] Teltumbde Aanand, Dalits, page-74

12 जनवरी 1938 को 25000 के लगभग किसानों के साथ हाथ में लाल झंडा लिए विशाल जुलूस का प्रदर्शन किया। जाति से परे जाकर किसान मजदूरों का यह प्रदर्शन आजादी पूर्व किसानों का सबसे बड़ा प्रदर्शन था। जातीयवगीर्य संघर्ष का अब तक का सबसे बड़ा प्रदर्शन रैली था। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के कम्युनिस्टों ने इसका समर्थन किया। डॉ अम्बेडकर ने रैली के आखिर में अपने भाषण में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने की बात स्वीकार की। वहां इन्दूलाल वासनिक एवं एस.ए.डांगे जैसे साम्यवादी भी उपस्थित थे।[38] राष्ट्रीय स्तर पर 1937 में कांग्रेस को बहुमत मिला । पार्टी विजेताओं से अंबेडकर के जनाधार स्वरूप का भी पता चलता है। हिंदू जातियों में कायस्थों का समर्थन मिला।[39] विजयी उम्मीदवारों को देखते हुए आई एल पी मूलतः एक महार जाति वर्चस्व वाली पार्टी थी। मांग (मातंग) जो कि महाराष्ट्र एक अन्य बड़ा अस्पृश्य समुदाय रहा, अत्यधिक निर्धन और पिछड़ा था और इस समुदाय के कार्यकर्ताओं और कुछ लोगों का समर्थन अम्बेडकर के दलित आंदोलन को मिला। चमार जो उत्तर भारत में भी हैं। उनकी स्थिति आर्थिक रूप से बेहतर थी महाराष्ट्र में। महाराष्ट्र में चमारों का समर्थन अम्बेडकर को कम मिला। क्योंकि ये व्यक्तिवादी थे और राजनीतिक रूप से ज्यादा महत्वाकांक्षी थे। जो उतरार्द्ध में कांग्रेस के सहयोगी बने। बिहार के चमारों जैसे बाबू जगजीवन राम जैसे महाराष्ट्र बम्बई प्रान्त के चमारों में शिवतरकर, बालकृष्ण देवरूखर, पी.एन. राजभोज आदि।

कम्युनिज्म का प्रभाव

तत्कालीन वैश्विक माहौल कुछ ऐसा था कि प्रत्येक जन मार्क्सवाद से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। अम्बेडकर भी समानता एवं साम्यवाद के तरफ आकर्षित थे।धर्म के कारण वे बुद्धिज्म से ज्यादा जुड़े। इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की 1937 चुनाव में सफलता भारत के कामगार वर्ग के बीच समाजवादियों और वामपंथियों की बढ़ती हुई संख्या इस राजनीतिक क्रांति का आधार बनी। आनंद तेलतुंबड़े ने अपनी पुस्तक 'दलित्स' में अंबेडकर के मार्क्सवाद से प्रभावित होने की बात कही है। 'जनता' पत्र

---

[38] वही।
[39] आमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–70

मजदूर कामगार वर्गों के पूंजीवादी जमींदारों के बीच के संघर्ष गाथा से भरा रहता था। साथ ही महाराष्ट्र में दलितों पर हो रहे अत्याचार की खबरों से भी भरी रहती थी।। 1936 के बाद अम्बेडकर गैर सामंतवाद, गैर पूंजीवादी फ्रंट बनाने में लगे हुए थे। वे कांग्रेस के खिलाफ कम्यूनिस्टों के करीबी हो गए थे। 'जनता' में प्रकाशित लेखों में मार्क्सवादी सिद्धांतों और कम्यूनिस्ट नीति का विश्लेषण भी देखा गया है।

अम्बेडकर यह मानते थे कि संपूर्ण विश्व में केवल दो जातियां हैं अमीर और गरीब। उसके अलावा एक मध्यम वर्ग है। यह वर्ग सभी आंदोलनों को असफल करने के लिए जिम्मेदार है। डॉ अम्बेडकर ने संगठित होने पर बल दिया। यह समझाने पर ज्यादा जोर दिया कि कांग्रेस धनी अभिजात्य वर्ग का समर्थक है। डॉ अम्बेडकर को कामगार और मजदूर वर्गों का साथ उन्हें कम्यूनिज्म के करीब ले आया। भारत के कामगार वर्ग के दो शत्रु हैं: ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद।[40] डॉ अम्बेडकर नये वामपंथी आलोचकों पर यह आरोप लगाया है कि वे ब्राम्हणवाद का उस तरह आलोचना नहीं किए जैसा वास्तविक चेहरा है। ब्राह्मणवाद से उनका मतलब स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना से वंचित रखना। जो कि भारतीय हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में साफ दिखता है। सरकारी विभागों में जितने भी निम्न वर्गीय सेवाएं वो दलितों द्वारा ही की जाती थी। यह आर्थिक जातिगत विभाजन था।

डॉ अम्बेडकर ने यही निष्कर्ष निकाला कि मार्क्स ने जाति को कभी भी सामाजिक समानता का निर्णायक कारक नहीं माना। भारत के वामपंथी भी अपने विचार एवं दर्शन के माध्यम से और सुनियोजित ढंग से जाति की उपेक्षा की है। इनका मानना था कि समाजवाद से जाति का मुद्दा स्वतः ही समाप्त हो जायेगा। समाजवादी लोग भी जाति को गौण मानते थे। नेहरू भी यही मानते थे कि मूल प्रश्न धार्मिक है। अस्पृश्यत भूमिहीन श्रमजीवी थे। जातिगत मुद्दे का सैद्धान्तिक आधार मार्क्सवाद की दार्शनिक मान्यताओं में निहित है और अम्बेडकर ने इस मुद्दे को 'जनता' (1936) में प्रकाशित लेख में उठाया था। उन्होंने मार्क्सवाद के आधारभूत अवसंरचना के सिद्धांत पर प्रहार किया था –''आधार इमारत नहीं है। आर्थिक संबंधों के आधार पर धार्मिक, सामाजिक और राजनतिक संस्थाओं की

---

[40] वही, पेज–77

इमारत बनती है। ऐसी इमारत की वास्तविकता उसके आधार के अनुरूप होती है। यदि हम आधार बदलना चाहते हैं तो हमें उस बुनियाद पर बनी इमारत को गिराना होगा। इसी प्रकार यदि हम समाज के आर्थिक संबंधों को बदलना चाहते हैं तो पहले हमें विद्यमान सामाजिक, राजनीतिक और अन्य संस्थाओं को ध्वस्त करना होगा''।[41] कामगार वर्ग को सुदृढ़ करने के लिए धार्मिक दासता की मानसिकता को हटाना, जातियों को समाप्त करना, कामगार वर्ग के संयुक्त संघर्ष की पूर्व शर्त थी। निःसंदेह अम्बेडकर मार्क्सवाद से प्रभावित थे। समानता, बराबरी, स्वतंत्रता, आर्थिक विभाजन खत्म करना ये सारी बातें किसी भी रेशनल दिमाग को आकर्षित करने के लिए काफी है।

डॉ अम्बेडकर दलित वर्ग को धर्म के आधार पर सुदृढ़ करना चाहते थे जिसके कारण बौद्ध धर्म को उन्होंने वैज्ञानिक धर्म समझा। राजनीति में सक्रिय होकर डॉ अम्बेडकर सभी गैर ब्राह्मण नेताओं एवं पार्टी को एकजुट करना चाहते थे। मजदूरों, किसानों तथा दलितों के उत्थान एवं सशक्तीकरण के लिए कानून भी बनाए और इन वर्गो को लामबंद करना आरम्भ कर दिया। 1938 के किसान एवं कामगार संघर्ष को देखा जाए तो तमिलनाडु के पेरियार और बिहार के कृषक नेता स्वामी सहजानंद से मुलाकात इन्हीं गैर ब्राम्हण नेताओं को साथ लाना था।

गेल ओमवेट कहती हैं कि भारत में गैर कांग्रेस जैसे वैकल्पिक राष्ट्रीय मोर्चे के विकास में प्रमुख बाधक कम्युनिस्ट पार्टी ही रही। कम्युनिस्ट और समाजवादी वामपंथी अम्बेडकर के सहज मित्र रहेंगे यह समझौता उन्होंने कामगार वर्ग और किसानों के मुद्दों के संबंध में किया था। मार्क्सवाद के सुदृढ़ आर्थिक पहलू पर बल को देखते हुए नेताओं ने दलितों और गैर ब्राम्हणों की समस्याओं को एक अलग मुद्दा माना और सांस्कृतिक मुद्दा निश्चित रूप से गौण हो गया। वे राष्ट्रवाद को मार्क्सवाद के नजरिए से देखते थे न कि जाति के दायरे में।

1930 दशक के उत्तरार्द्ध में 'वर्ग के विरूद्ध वर्ग' की अपनी पहले की नीति जिसके द्वारा सभी गैर कम्युनिस्ट राजनीतिक शक्तियों को प्रतिक्रियावादी बताया

---

[41] वही, पेज–85

गया (यानि गैर ब्राह्मण, गैर कांग्रेस) को छोड़कर कम्युनिस्ट भारत में प्रमुख साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे के रूप में कांग्रेस का समर्थन करने लगे। कांग्रेस समाजवादी पार्टी के रूप में कामगार वर्ग, किसान संगठनों और कार्यकर्ताओं को प्रभाव में लाने की कोशिश करने लगे।[42] जिससे कि ये वर्ग कांग्रेस से जुड़ते गया। जिसका नुकसान 1936 में तमिलनाडु के समधर्म सेल्फ रिस्पेक्ट लीग जिसे पेरियार का समर्थन प्राप्त था को हुआ। सभी युवा क्रांतिकारी देशभक्ति के नाम पर कांग्रेस से जुड़ गए। महाराष्ट्र में आईएलपी के संगठनात्मक आधार मजबूत बना रहा। अंततः यह कहा जा सकता है कि कम्युनिस्टों की नीति ने अंबेडकर और दलित ताकतों जिनका वे प्रतिनिधित्व करते थे को अलग थलग छोड़ दिया। जिसके कारण कांग्रेस का वैकल्पिक एक मोर्चा नहीं बन पाया। जिस प्रकार राष्ट्रवादी आंदोलन में अम्बेडकर के प्रमुख विरोधी गांधी थे, उसी प्रकार कम्युनिस्ट, कांग्रेस का सामना करने के अम्बेडकर के प्रयासों में उन्हें नाकाम करने में लगे रहे।

वर्ग एवं जाति के बीच का द्वंद

क्या आई एल पी दलितों को मान सम्मान, समानता का अधिकार दिला पाया जिसके लिए अम्बेडकर राजनीतिक स्तर पर प्रयत्नशील रहे? शायद नहीं, दलितों के प्रति सवर्णों का सहृदयता एवं बराबरी केवल दिखावा मात्र रह गया था। सामाजिक विद्वेष वैसे ही जारी था। शहरों में तो दलितों अस्पृश्यों के प्रति कुछ उदारता थी भी मगर गांवों में घृणा का भाव बदस्तूर जारी था। नासिक जिले के येवला में डॉ अम्बेडकर का उद्घोष ''मैं हिन्दू के रूप में जन्मा हूं लेकिन हिन्दू के रूप में मरूंगा नहीं''।[43] 30 मई 1936 का यह कहना हिन्दूओं के बीच एक वज्रपात जैसा था। जिसका हिन्दू धर्म एवं उन दलितों ने विरोध किया था जो हिन्दू होने में अच्छा महसूस करते थे। वी एस वेंकटराव जिन्हें हैदराबादी अम्बेडकर भी कहा जाता था, की अध्यक्षता में बाम्बे प्रसीडेन्सी में महार कांफ्रेंस हुआ।[44] इसी कांफ्रेस में ''मुक्ति कौन पाथे'' शीर्षक भाषण में डॉ अंबेडकर ने दलितों की सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक कमजोरी के बारे में विस्तार से बताया। जिसको पाटने का एकमात्र उपाय

---

[42] वही, पेज–85

[43] कीर धनंजय, डॉ अम्बेडकर जीवन चरित, पेज– 261

[44] Teltumbde Aanand, Dalits, page-76

धर्मान्तरण है। डॉ अम्बेडकर ने इस्लाम, सिक्ख, क्रिश्चियन सभी धर्मों का अध्ययन किया, जिसमें बौद्ध धर्म सबसे ज्यादा मानवतावादी वैज्ञानिक एवं सौहार्द्रपूर्ण लगा। बौद्ध धर्म की सबसे बडी विशेषता थी उसकी उत्पत्ति का जो कि भारतीय था। डॉ अम्बेडकर ने अपनी किताब ''एनिहिलेशन आफ कास्ट में हिन्दू वेदों को नष्ट करने की बात कही है, जो कि भारतीय समाज के जातिवाद का मूल स्रोत है। जब तक इनको नष्ट नहीं किया जाएगा तब तक जातियों का विनाश असम्भव है।

शिडयूल्ड कास्ट फेडरेशन

डॉ अम्बेडकर यह जान गए थे कि भारतीय जाति व्यवस्था शोषणकारी है एवं दलित समाज को स्वायत्तता की बहुत आवश्यकता है। दलितों की मुक्ति स्वयं दलितों द्वारा ही सम्भव है। कोई अन्य इनका उद्धार नहीं कर सकता। भारत में दलित जागरूकता बढ़ रही थी। तात्कालिक वैश्विक घटनाओं को देखें जिनका असर भारत की राजनीति पर भी हो रहा था। कांग्रेस एवं गांधी द्वितीय विश्व युद्ध में भारत की भागीदारी नहीं चाहते थे। वहीं अंग्रेज भारतीय सेना का युद्ध में इस्तेमाल कर रही थी। अम्बेडकर ने अपनी दलितोद्धार नीति के तहत अंग्रेजों का साथ दिया। जो कि उस समय की आवश्यकता थी। 1930 तक भारत में दलितों के तीन अखिल भारतीय संगठन उभर चुके थे–

1. डिप्रेस्ड क्लास एसोसिएशन
2. डिप्रेस्ड क्लास लीग, इसकी स्थापना 1936 में जगजीवन राम ने की थी
3. शिडयूल्ड कास्ट फेडरेशन

इनमें से कोई संस्था बहुत सक्रिय नहीं थी। जिसका विस्तार पूरे भारत में हो। ये संगठन हिन्दू महासभा, गांधीवादी एवं अम्बेडकर से जुड़े थे। उस समय की राजनीतिक कार्यवाइयों से अम्बेडकर असंतुष्ट थे कोई भी नीति धरातल पर लागू नही हो पा रही थी। कांग्रेस के प्रति उनके मन का दुराग्रह बढ़ता जा रहा था। साम्यवादियों एवं वामपंथियों ने भी दलितों से जुड़ी समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया। न ही किसी दलित संगठन का गठन किया। अम्बेडकर अपने रेडिकल नीतियों को छोड़ते हुए जाति आधारित संगठन पर वापस आना ही उचित समझे।

जुलाई 1942 में डॉ अम्बेडकर को वायसराय की कार्यकारिणी परिषद का सदस्य भी बनाया गया एवं भारत सरकार के श्रम मंत्री बने।[45] नागपुर में डिप्रेस्ड क्लास का सम्मेलन आयोजित किया गया। जहां आई एल पी को भंग कर दिया गया। वहां लगभग सत्तर हजार लोगों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई थी। जिनमें एक तिहाई स्त्रियां थीं। बंगाल, बम्बई, पंजाब और हैदराबाद के प्रतिनिधिगण वहां मौजूद थे। 1942 में शिड्यूल कास्ट फेडरेशन के गठन का मुख्य उद्देश्य अखिल भारतीय स्तर पर दलितों को इकट्ठा करना था। पूर्व में डॉ अम्बेडकर ने दलित जाति किसान मजदूरो को मिलाकर आई एल पी बनाया जो कि उतना प्रभावशाली नहीं रहा। एस सी एफ के गठन के बाद दो प्रस्ताव भी पारित किये गये। पहला अलग अनुसूचित जाति के बसावट वाले गांवों की मांग की गयी। ऐसे गांवों को हिन्दूओं के प्रभाव से मुक्त रखना था। दूसरे, अनुसूचित जातियों के लिए अलग से निर्वाचन क्षेत्र की मांग की गयी थी। पूना पैक्ट का दुष्प्रभाव साफ नजर आने लगा था। सीट तो दलित के लिए सुरक्षित थी परन्तु निर्वाचन क्षेत्र में बहुमत हिन्दुओं का हो जाता था। इन दो प्रस्तावों के साथ अधिकांशतः एस सी एफ ने आई एल पी के कार्यक्रम ही रहे। एससीएफ 1942 से 1956 तक मुख्य रूप से पूंजीवादी प्रजातांत्रिक संरचना में दलितों के राजनीतिक प्रतिनिधि के रूप में एक विशिष्ट हित समूह के रूप में कार्य करते रहे। उनका काम मुख्य रूप से अनुसूचित जातियों के लिए बने प्रावधानों को सही तरीके से लागू करवाना, होने वाले भेदभाव तथा अन्याय को जनता के सामने लाना रह गया था। विधानसभा में अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित स्थानों पर वे लोग निर्वाचित हो जो अनुसूचित जाति के हितों पर चर्चा कर सकें।

क्रिप्स मिशन को ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय पार्टियों को द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीयों की भागीदारी के लिए गठित किया गया था। कांग्रेस ने भारत छोड़ो आंदोलन आरम्भ कर युद्ध में भाग न लेने का घोषणा कर दिया। क्रिप्स मिशन के रिपोर्ट के बाद आई एल पी को भंग कर दिया गया। क्योंकि उसका प्रभाव एवं कार्यक्षेत्र महाराष्ट्र तक ही सीमित रह गया था। वृहद रूप में पूरे भारत के अनुसूचित जाति को एक जगह एकत्र करने के उद्देश्य से शिड्यूल कास्ट

---

45 आमवेट गेल, अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज –209

फेडरेशन का गठन किया गया। अम्बेडकर वायसराय के कार्यकारिणी परिषद में रहते हुए कई तरह के पथ प्रदर्शक एडवाइजरी लागू करने में योगदान दिया जो कि कामगार वर्गों एवं महिलाओं के हित में था। एक प्रगतिशील स्टेट्समैन की भूमिका में रहे। डॉ अम्बेडकर ने दलितों की जनसंख्या के अनुसार सरकारी नौकरियों एवं शिक्षा के क्षेत्र में रिजर्वेशन की नीति बनाई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इंग्लैंड की सरकार ने भारत से जाने का मन बना लिया था। ब्रिटिश सत्ता लगातार कमजोर हो रही थी। उपनिवेशवाद के खिलाफ विरोध बढ़ रहा था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य का कभी न अस्त होने वाला सूर्य अपनी चमक खो रहा था। भारतीयों के स्वशासन, संविधान निर्माण एवं सत्ता हस्तांतरण करने के उद्देश्य से 1946 में कैबिनेट मिशन का गठन किया गया। डॉ अम्बेडकर की कैबिनेट मिशन से दो बार मीटिंग हुई, भारतीय राजनीतिज्ञों को सत्ता सौंपने की रूपरेखा तैयार करने को लेकर। 1945–46 में भारत में आम चुनाव की घोषणा हुई। नई नई बनी हुई पार्टी एस सी एफ ने चुनाव में भाग लिया, बिना किसी धन, बल और साधन के। एक तरफ जहां कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा जैसी पार्टियों के पास पूंजीपति एवं धनवान लोगों की फंडिंग थी तो वही दूसरी तरफ एससीएफ गरीब, निर्बल, असहाय लोगों की पार्टी थी। न ही कोई प्रचार साधन न ही कोई लोभ लुभावन चुनावी वादे। भारत छोड़ो आंदोलन, पाकिस्तान की मांग एवं भारत की एकता अखंडता जैसे नारे और तैयारियां के साथ अन्य पार्टियां थी। वहीं एस सी. एफ बिल्कुल नया था। साथ ही साथ कई अस्पृश्य नेतागण अपनी लालच एवं स्वार्थ के कारण अम्बेडकर का साथ छोड़कर दूसरे सवर्ण पार्टियों में चले गये। महार जाति ने हमेशा अम्बेडकर का साथ दिया। महाराष्ट्र के चमार, मांग जैसी जातियां अम्बेडकर से अलग होकर कांग्रेस से मिल गयी। उन्हें लगता था डॉ अम्बेडकर महार के नेता हैं। डॉ अम्बेडकर ने दलितों को एकजुट करने के लिए गुजरात, दक्षिण भारत, उड़ीसा, संयुक्त प्रांत जाकर चुनाव प्रचार किया। शेड्यूल कास्ट फेडरेशन की शाखाएं लगभग प्रत्येक राज्य में गठित हो चुकी थी।[46] चुनाव परिणाम अम्बेडकर के लिए बेहद निराशाजनक रहा। कांग्रेस ने भारी जीत दर्ज की। चुनाव में फेडरेशन के हार के परिणामस्वरूप अम्बेडकर का प्रभाव कम हुआ उनकी एकछत्र

---

[46] परिहार, एम एल, बाबा साहेब अम्बेडकर लाइफ एवं मिशन, पेज–249

मांगों की पूरी तरह उपेक्षा की गयी। एससीएफ के गठन के परिणामस्वरूप अम्बेडकर को किसी व्यापक संयुक्त मोर्चे के निर्माण के सभी प्रयासों अथवा कामगार वर्ग या किसानों के मुद्दों पर व्यापक जन आंदोलन के लिए सभी प्रयासों को छोड़ना पड़ा। क्योंकि स्वतंत्र भारत में दलितों को अधिकार दिलाने के लिए मुस्लिम लीग और कांग्रेस की राजनीति पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ा। बहुत ज्यादा काम, अध्ययन इत्यादि व्यस्तता के साथ डॉ अम्बेडकर ने श्रम मंत्री रहते हुए दिल्ली में अपने व्यापक शोध और लेखन के लिए समय निकाला। डॉ अम्बेडकर का अध्ययन प्राचीन भारतीय इतिहास में विशेषकर जाति और ब्राम्हणवाद के बीच संबंधों पर केन्द्रित होने लगा। उन्होने दो किताबें 'हू वेयर शूद्राज एंड हाउ दे विकम टू वी फोर्थ वर्णा इन इंडो आर्यण सोसायटी' 1947 में प्रकाशित और 'द अनटचेबल्सः हू वेयर दे एंड व्हाइ दे विकम अनटचेबल्स(1948 में प्रकाशित) का प्रमुख रूप से संकलन किए।[47]

मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की मांग जोर पकड़ रहा था। कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के शीर्ष नेता झुकने को तैयार नहीं थे। वैवेल योजना 1945 के अंतर्गत केन्द्र सरकार में शामिल होने की योजना बनाई जिसमें केवल दो पार्टियों को प्रतिनिधित्व दिया जाना था जबकि सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रावधान किया जाना था। एस सी एफ को केवल एक स्थान दिया जाएगा। इसके लिए डॉ अम्बेडकर ने अपना विरोध जताया। 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हो गया। साथ ही पाकिस्तान का निर्माण भी हो गया। भारत का धर्म पर आधारित विभाजन भी हो गया था। दलित आंदोलन को कैबिनेट मिशन प्लान के तहत जबरदस्त झटका लगा। बाबा साहेब ने अस्पृश्यों को अलग समुदाय की मांग रखी थी। लेकिन मिशन ने केवल हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख को ही मान्यता दी। कैबिनेट मिशन ने अनुसूचित जातियों की सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। उस समय शिड्यूल कास्ट फेडरेशन दलितों का राजनीतिक संगठन था। विद्रोह एवं जनाक्रोश की भावनाएं दलितों में घर कर रही थी। अब डॉ अंबेडकर यह भलीभांति समझ गये थे कि पूना पैक्ट एक साजिश थी, दलित वोट छिटकने से रोकने के लिए। संयुक्त

---

[47] आमवेट गेल, अंबेडकर, पेज–103

निर्वाचन में दलितों के हितैषी व असली प्रतिनिधि चुनकर नहीं आ रहे थे बल्कि कांग्रेस के चापलूस दलित प्रतिनिधि ही सत्ता में आने लगे। वे क्या दलितों का उद्धार करेंगे?

संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर

डॉ अंबेडकर संविधान सभा के गठन तक भारत में दलितो के बीच काफी लोकप्रिय हो गए थे। कांग्रेस एवं अन्य हिन्दू पार्टियां उनसे नफरत करती थी। वे अंबेडकर को अंग्रेज स्टूज कहते थे। पूना पैक्ट के बाद दलितों में से ऐसे नेता भी बन गए जो सवर्णों, हिन्दूवादी संगठनों एवं कांग्रेस के पिट्ठू थे। जिनको राजनीति में लाया ही गया था अम्बेडकर का विरोध करने के लिए। कैबिनेट मिशन की योजना के अनुसार प्रादेशिक विधान सभाओं द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि सदस्यों द्वारा संविधान निर्मात्री सभा का गठन होना था। डॉ अम्बेडकर ने बंगाल विधान परिषद से चुनाव लड़ा। बंगाल में चुनाव की कमान जोगेन्द्र नाथ मंडल ने सम्भाल रखा था और चुनाव के दिन बगांल में आंदोलन का नेतृत्व भी कर रहे थे। डॉ अम्बेडकर को निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में सबसे ज्यादा मत मिले। पूना पैक्ट के दुष्परिणाम के कारण आम चुनाव में अम्बेडकर की शिड्यूल कास्ट फेडरेशन को बंबई विधान सभा में एक भी सदस्य नहीं आ पाया था इसलिए बंगाल विधान सभा के दलित वर्ग के प्रतिनिधियों ने संविधान सभा के लिए डॉ अम्बेडकर का नाम प्रस्तावित किया। गोलमेज सम्मेलन में डॉ अम्बेडकर की बातों को बहुत ध्यान से सुना गया। दलितों का हितैषी माना गया लेकिन पूना पैक्ट के बाद एवं चुनावी हार के करण अम्बेडकर को कम आंका जाने लगा। कैबिनेट मिशन ने लंदन में यह रिपोर्ट दिया कि कांग्रेस अछूतों का सही प्रतिनिधित्व करती है। मौखिक रूप से चर्चिल सैम्यूअल होर एवं कंजरवेटिव पार्टी के सदस्य अम्बेडकर के साथ सहानुभूति व्यक्त करते थे परन्तु व्यवहारिक रूप में कुछ मदद नहीं कर सके।

कैबिनेट मिशन के अनुसार वायसराय की कौंसिल में 14 सदस्य होंगे जिनमें एक दलित सदस्य होगा जिसका चुनाव कांग्रेस करेगी। कांग्रेस ने जगजीवन राम को चुन लिया। संविधान सभा की बैठकें आरम्भ हो गयी। डॉ अम्बेडकर बंगाल से

सदस्य निर्वाचित हुए थे। 13 दिसम्बर 1946 को स्वतंत्रता के लिए सभा में एक संकल्प पारित किया गया।[48] नेहरू ने इसका प्रस्ताव किया और एम आर जयकर, श्यामा प्रसाद मुखर्जी से बात करने के बाद अम्बेडकर से बोलने के लिए कहा गया। समाजवादी अर्थव्यवस्था और उद्योग व भूमि के राष्ट्रीयकरण पर अपनी बात कही। संयुक्त भारत के लिए अपनी इच्छा व्यक्त की। देश के एक होने की बात को काफी सराहा गया। मुसलमान यह महसूस करेंगे कि उनके लिए एकीकृत भारत ही उपयुक्त है। अम्बेडकर मजबूत केन्द्र के पक्षधर थे। इस भाषण के बाद अम्बेडकर के प्रति जवाहर लाल नेहरू के रवैये में काफी परिवर्तन आया। एससीएफ आम चुनाव में भले ही हार गयी हो परन्तु दलित आंदोलन की मजबूती की वजह से मराठी भाषी क्षेत्रों में, तमिल भाषी क्षेत्रों में उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में (आगरा, कानपुर) में एस सी एफ का मजबूत आधार था। दलितों की जनसंख्या भी एक कारक थी जो अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित थे।

पाकिस्तान बनने एवं भारत के विभाजन के बाद, बंगाल पाकिस्तान का हिस्सा बन गया था। डॉ अम्बेडकर को अपनी सीट गंवानी पड़ी। जब बंबई प्रांत से संविधान सभा के लिए चुने गये बैरिस्टर एम.आर. जयकर ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया तब गांधीजी ने नेहरू और सरदार पटेल को जुलाई 1947 में अम्बेडकर का नाम सुझाया। इस तरह अम्बेडकर कांग्रेस की सहायता से संविधान सभा में पहुंचे। डॉ अम्बेडकर को 29 अप्रैल 1948 को संविधान सभा का प्रारूप तैयार करने के लिए गठित समिति के सदस्य के रूप में चुने गये बाद में प्रारूप समिति का अध्यक्ष भी संविधान के ड्राफ्टिंग कमिटी में अध्यक्ष, बाद में मंत्रिमंडल में शामिल किया जाना पूरी तरह से डॉ अम्बेडकर के अपनी बौद्धिकता, वैधानिक निपुणता का प्रमाण था। अस्पृश्यों के नेता के रूप में डॉ अम्बेडकर लोकप्रिय थे। संविधान संबंधी कार्य में उनकी गहरी दिलचस्पी थी। डॉ अम्बेडकर संविधान निर्माण को भारत के भविष्य, लोकतंत्र की रक्षा एवं समाज के अस्पृश्य वर्ग के अधिकार को पुख्ता करने के एक मौका के रूप में ले रहे थे। वे कोई भी गलती नहीं करना चाहते थे। लोग उन्हें संविधान का र्निमाता मानते हैं। उन्हें भारत में एक नया और लोकतांत्रिक शासन

---

[48] आमवेट गेल, अम्बेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–110

कायम करने वाले आधुनिक मनु मानते थे।[49] अम्बेडकर के आलोचक इसे आसानी से पचा नहीं पाते हैं उनकी माने तो संविधान एक लम्बी प्रक्रिया का नतीजा है। कम्यूनिस्टों एवं समाजवादियों ने भी संविधान की आलोचना की।

डॉ अम्बेडकर ने तर्क दिया कि नया भारतीय समाज एक ऐसे सामाजिक लोकतंत्र पर आधारित होगा जिसमें जीवनयापन के तौर तरीकों में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसी विशेषताओं को मान्यता प्रदान की गयी हो। भारतीय समाज में समानता का अत्यधिक अभाव है और जब तक राजीतिक जीवन में समानता का विरोध और सामाजिक असामानता बनी रहेगी तब तक लोकतंत्र खतरे में रहेगा। डॉ अम्बेडकर ने यह कहा – दलित वर्गों की आत्मानुभूति की ऐसी भावना को वर्ग संघर्ष अथव वर्ग युद्ध में परिणत नहीं होने देना चाहिए। इससे बचने के लिए समानता और भाई–चारे को बनाए रखना जरूरी है।

महाराष्ट्र में बौद्ध धर्म

1956 में डॉ. अंबेडकर के द्वारा लाखों दलितों का बौद्ध धर्म ग्रहण करना, दलितों की बहुमुखी संघर्ष की एक पराकाष्ठा थी। धर्मांतरण मुख्यतः दलितों की मुक्ति के लिए एक अस्तित्व की रक्षा की रणनीति थी। यह धर्म दलितों का आध्यात्मिक मजबूती प्रदान करने के लिए था। डॉ अम्बेडकर ने धर्म को वैयक्तिक आत्माओं के आध्यात्मिक मोक्ष के एक साधन के रूप में नहीं देखा, बल्कि धर्म को सामाजिक आदर्श माने, जो मनुष्यों के बीच समानता स्थापित करने का एक सशक्त माध्यम है। डॉ अम्बेडकर का मानना था कि किसी धर्म की प्रासंगिकता के विषय में मूल्यांकन करने के लिए, न्याय एवं सामाजिक उपयोगिता की कसौटी को लागू करनी चाहिए। मनुष्य एवं समाज के लिए धर्म, आस्था एवं आध्यात्मिक सुख प्राप्त करने का माध्यम है। धर्म द्वारा मनुष्य अपने को सशक्त महसूस करता है। डॉ अम्बेडकर कहते हैं कि धर्म एक सामाजिक शक्ति है, और वह मनुष्य तथा समाज दोनों के लिए आवश्यक है। अम्बेडकर एडमंड बर्क से सहमत थे जिसने यह कहा कि' सच्चा धर्म समाज की नींव है, वह आधार जिस पर समस्त सत्यनिष्ठ शासन

[49] वही, पेज–113

आश्रित है और उनकी स्वीकृति भी।[50] डॉ अम्बेडकर का धर्म दर्शन समाज में धर्म की आवश्यकता को स्वीकार करता है। सामाजिक विकास की लम्बी अवधि के कारण मनुष्य धार्मिक प्राणी बन गया है। धर्म का मनुष्य पर आधिपत्य है। धर्म कुछ लौकिक आदर्श प्रदान करता है, और उसकी शक्ति इस पर भी निर्भर करती है कि वह मानवता को कहां तक तथा कितना लाभ पहुंचाता है। किसी भी धर्म का सबसे महत्वपूर्ण अनिवार्य अंग उसकी वह नैतिकता है जिसका वह मानव कल्याण के लिए प्रचार करता है। डॉ अम्बेडकर धर्म को मनुष्य के विकास का अहम जरिया मानते थे। धर्म जो कि शक्ति, विश्वास, आस्था, सुरक्षा प्रदान करता है। मनुष्य को अपने समाज और संस्कृति से जोड़ता है। डॉ अम्बेडकर भारतीय हिन्दू धर्म से भी जुड़े हुए थे। उन्हें हिन्दू धर्म के प्रति कोई राग द्वेष भी नहीं था, लेकिन हिन्दू धर्म में जो जड़ता थी, हिन्दू धर्म के वेदों, उपनिषदों,संहिताओं में जो मनुष्य प्राणी मात्र के प्रति विषमता और जातीय विभाजन था। यह डॉ अम्बेडकर के लिए अस्वीकार्य था। उन्होंने हिन्दू, इस्लाम, सिक्ख, क्रिश्चियन, जैन एवं बौद्ध धर्म के पुस्तकों का गहन अध्ययन किया। धर्म को वे मनुष्य के लिए बहुत आवश्यक मानते थे। हिन्दू धर्म मूलरूप से मनुस्मृति पर आधारित है, मनुस्मृति वर्णाश्रम , जाति व्यवस्था का पुरजोर समर्थन करता है। जन्म, जाति, मनुष्य का वर्ण हर तरह का विभाजन हिन्दू धर्म में विद्यमान है। यहां समता, बराबरी भाईचारे का कोई अस्तित्व नहीं है। बुद्धिज्म डॉ अम्बेडकर के लिए सबसे सार्थक चुनाव था। क्योंकि यह तीन शब्द स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे पर आधारित है। डॉ अम्बेडकर के दर्शन का जड़ धर्म है, न कि राजनीतिक विज्ञान। मैंने अपने इस दर्शन को अपने गुरू 'द बुद्धा' से प्राप्त किया है। मेरे दर्शन का अपना मिशन है। मुझे धर्मांतरण के लिए कार्य करने हैं।[51] गौतम बुद्ध के बारे में डॉ. अम्बेडकर सर्वप्रथम अपने गुरू कृष्णाजी केलुस्कर के द्वारा जान पाए ।[52] जिन्होंने उन्हें एक बुद्ध की पुस्तक उत्साहवर्धन के लिए दी थी। डॉ अम्बेडकर धर्म को सामाजिक कार्यों एवं जीवन लिए महत्वपूर्ण समझते थे। डॉ अम्बेडकर हिन्दू धर्म में व्याप्त रूढ़ियों एवं उसकी संकीर्णता से वाकिफ थे और ये भी खूब समझते थे कि अस्पृश्यों का हितलाभ केवल सवर्णों के हृदय परिवर्तन पर

---

[50] जाटव डी आर, डा. अंबेडकर एक प्रखर विद्रोही, पेज–188

[51] Jafferlot christophe , Dr. Ambedkar and untouhability, page 199

[52] वही

आश्रित है। अगर ऊंच वर्ण चाहेंगे कि अस्पृश्यों के साथ समानता का व्यवहार हो तथा यह ऊंच नीच, जात–पांत का विभेद समाज से खत्म हो पाएगा। परन्तु डॉ अम्बेडकर ऊंच वर्ण की इस मानसिकता से भी भलीभांति अवगत थे कि कोई भी वर्ग अपनी सर्वोच्चता को क्यों छोड़ेगा ? क्यों पशुवत मानव को समानता का हक देगा? जो गुलाम है उसको स्वतंत्रता का सुख क्यों प्रदान करेगा? तभी तो प्रारम्भिक काल से ही शुद्रों से शस्त्र और शास्त्र दोनों हिन्दू धर्म द्वारा छीन लिए गए। महाद़ सत्याग्रह, कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह, शूद्रों की स्थिति में सुधार के प्रयास जो भी अम्बेडकर द्वारा किए गए उसके नेपथ्य में यही था कि हिन्दू धर्म अस्पृश्यों शूद्रों को बराबरी का हक देगा। लेकिन यह व्यवहारिकता में कभी नहीं हो पाया। डॉ अम्बेडकर ने क्षुब्ध होकर येवला में 1935 में घोषणा किया कि ''मैं हिन्दू के रूप में जन्म तो लिया लेकिन हिन्दू रहकर मरूंगा नहीं''। जो कि उनके धर्म परिवर्तन करने की पहली चेतावनी रूपी थी। जिसे तत्कालीन समाचारों और विश्वजगत में काफी चर्चा का विषय माना गया। विभिन्न धर्मावलम्बियों ने जिनमें सिख, ईसाई इत्यादि ने डॉ अम्बेडकर को अपने धर्म को स्वीकार करने के प्रलोभन भी दिये।

भारतीय औपनिवेशिक स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान गांधी जी ने डॉ. अम्बेडकर को धर्मांतरण के फैसले की कड़ी आलोचना भी की। कई गैर महार दलित नेताओं ने भी हिन्दू धर्म त्यागने की डॉ अम्बेडकर के फैसले का विरोध किया। डॉ अम्बेडकर धर्म को सामाजिक अन्याय दूर करने का उपकरण मानते थे। अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म की आधिकारिक चर्चा एवं जानकारी हासिल की, यह जाना कि यह एक समतावादी धर्म है जो समाज के सभी सदस्यों को समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की गारंटी देता है। बौद्ध धर्म इन मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध है। 'मुक्ति कोण पाथे' नामक किताब में उन्होंने अपने व्यवस्थित रूप से समझाने की कोशिश की कि क्यों दलितों के लिए अपना धर्म बदलना जरूरी है। 'एनिहिलेशन आफ कास्ट' पुस्तक में डॉ अम्बेडकर दलितों को महज हिन्दू धर्म छोड़ने की जरूरत से भी आगे जाकर जाति के ही उन्मूलन की बात करते हैं। एनिहिलेशन आफ कास्ट में उनका निष्कर्ष यह था कि चूंकि जातियों की जड़ें धर्मशास्त्रों में हैं, इसलिए उनका खात्मा सिर्फ इन धर्मशास्त्रों को नष्ट किये जाने के जरिए ही मुमकिन है। डॉ अम्बेडकर

यह जान गए थे कि अस्पृश्यों के लिए हिन्दू धर्म के भीतर एक सम्मानजनक जिंदगी की कोई उम्मीद नहीं थी। 'मुक्ति कोण पाथे' में डॉ अम्बेडकर अपना धर्म बदलने के लिए दो नजरियों से विचार करते हैं। एक नजरिया आस्तिक के बारे में था, दूसरा अध्यात्म को लेकर। धर्मान्तरण का आध्यात्मिक नजरिया एक इंसान की क्षमताओं को बढ़ाने से जुड़ा हुआ था। डॉ अम्बेडकर मनुष्य के विकास को धर्म का मूल उददेश्य मानते थे। एक व्यक्ति के विकास के लिए तीन चीजों की जरूरत होती हैः करूणा, समानता और स्वतंत्रता। और हिन्दू धर्म के पास इनमें से एक भी नहीं है। डॉ अम्बेडकर ने 14 अक्टूबर 1956 को अपने लाखों अनुयायियों के साथ नागपुर में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। जिसके लिए उन्होंने बर्मा के बुद्धिस्ट भंते भिक्खु महास्थविर चन्द्रमणि को आमंत्रित किया। जिन्होंने पूरे विधिवत रूप से सभी अनुयायियों को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। डॉ अम्बेडकर के अनुयायियों में अधिकांश महार जाति के ही थे। अन्य जातियों के दलितों ने धर्मांतरण में उतना उत्साह नहीं दिखाया। ऐसा ही उतर प्रदेश में देखा गया, धर्मांतरण करने वाले ज्यादातर दलित जाटव समुदाय से ही थे। डॉ अम्बेडकर बौद्ध धर्म को दलितों के लिए राजनीतिक, सामाजिक रूप से सशक्त बनाने का माध्यम बनाया। उन्होंने 'बुद्ध एंड हिज धम्म' पुस्तक को लिखा।[53] धर्मांतरण के दौरान 22 प्रतिज्ञाओं का शपथ ग्रहण किया। ये बौद्ध धर्म से अलग थे जिसे 'नवयान बौद्ध' कहा गया। यह एक आधुनिक नागरिक समाज के लिए था।[54] बुद्ध के दर्शन में तार्किकता, मानवतावाद, स्पष्टता और वैज्ञानिक प्रकृति ने अम्बेडकर को आकर्षित किया। नवयान बौद्ध धर्म ने चार कुलीन आर्य सत्य को मानने से इन्कार किया। पुर्नजन्म की अवधारणा को भी खारिज किया। यह व्यक्ति की मुक्ति की ओर केन्द्रित न होकर सामूहिक मुक्ति पर आधारित थी। अछूतों की स्वतंत्रता के उददेश्य से अम्बेडकर ने नवयान बौद्ध की स्थापना की। ऐनी एम. ब्लैकबर्न के अनुसार' अम्बेडकर बौद्ध धर्म समानता और राष्ट्रवाद को एक दूसरे से संबंधित शब्दावली समझते थे। जिसके सामाजिक और राजनीतिक निहितार्थ होते हैं। एक आदर्श समुदाय के रूप में नवबौद्धों को स्थापित

---

[53] Zelliot Eleanor, From Untouchable to Dalit, Page-208

[54] तेलतुम्बडे आनंद, जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन, पेज–70

करना चाहते थे जो उस विचारधारा के हों। डॉ अम्बेडकर का फैसला संविधानवाद से भी प्रेरित रहा।

महाराष्ट्र के नागपुर में डॉ अम्बेडकर एवं उनके अनुयायियों द्वारा धर्म परिवर्तन तत्कालीन मुददों में सबसे ज्यादा सुर्खियां बटोरने वाला समाचार बना। राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर धर्म परिवर्तन पर चर्चा होने लगी। खासकर महार जाति द्वारा जो कि महाराष्ट्र का सबसे ज्यादा जनसंख्या वाला दलित समुदाय है। इसने नवबौद्ध बनकर हिन्दू धर्म का त्याग कर दिया। डॉ अंबेडकर द्वारा दिये गए 22 प्रतिज्ञाओं का अनुसरण करने के लिए प्रतिबद्ध हुए। डॉ अंबेडकर द्वारा किए गए धर्मान्तरण से बाकी के हिन्दू संगठनों एवं स्वयं बौद्ध धर्म के हीनयान, महायान एवं अन्य बुद्धिस्ट संगठनों द्वारा कटु आलोचना किया गया। डॉ अम्बेडकर ने नवयान बौद्ध धर्म को सिर्फ दलितों के एक धर्म के रूप में नहीं बल्कि एक मानवतावादी और सामाजिक धर्म के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी किताब 'बुद्ध एंड हिज धम्म' आधुनिक नागरिक समाज के लिए था। यह नए बौद्धों के पढ़ने और समझने के लिए था। डॉ अम्बेडकर ने गैर हिन्दू पहचान की चैतन्यता के माध्यम से भारत में एक सामूहिक तथा मूल परिवर्तनवादी शक्ति पैदा कर दी थी। आलोचना का क्रम शुरू होने के साथ आरोप भी लगने लगे कि धर्मांतरण के पीछे राजनीतिक महत्वाकांक्षा ज्यादा प्रबल है। लेकिन डॉ अम्बेडकर जानते थे कि हिन्दू धर्म में रहकर दलितों का उद्धार संभव नहीं है। 'द महाबोधि' पत्रिका में धर्मांतरण पर प्रतिक्रिया देते हुए कहा कि ' अम्बेडकर का बौद्ध धर्म नफरत पर आधारित है, बुद्ध का करूणा पर' । 'द बुद्ध एण्ड हिज धम्म' के समीक्षा करने के बाद 'द महाबोधि' पत्रिका ने यह भी कहा कि इसका नाम बदलकर 'अम्बेडकर एंड हिज धम्म' कर दिया जाना चाहिए। क्योंकि अम्बेडकर के सियासी और सामाजिक सुधारों के मकसद से धम्म के रूप में अधम्म का उपदेश दिया है।[55] लेकिन डॉ अम्बेडकर ने कभी भी पुराने बौद्ध सिद्धांत पर शुद्धतावादी तरीके से चलने का संकल्प नहीं किया। उन्होंने बौद्ध धर्म को व्यक्ति केंद्रित से उठाकर सामूहिक मुक्ति का जरिया बनाया। अम्बेडकर नवयान बौद्ध धर्म को सर्व समावेशी बनाना चाहते थे। पूरी

---

[55] वही, पेज

मानवता के लिए व्यापक संदेश के रूप में रखा। इसका उददेश्य अतार्किक विचारों, हर तरह के शोषण, अन्याय और असमानता से व्यक्ति और समूह की मुक्ति था।

महाराष्ट्र में धर्मांतरण के बाद दलितों की स्थिति

देखा जाए तो महाराष्ट्र के दलितों में बौद्ध धर्म अपनाने के बाद नकारात्मक और सकारात्मक दोनों पक्ष देखने को मिलते हैं। सकारात्मक पक्ष को देखें तो दलितों में धर्मान्तरण के बाद नई उग्र सांस्कृतिक पहचान बनी। दलित बुद्ध जयंती, अम्बेडकर जयंती, धर्म चक्र परिवर्तन जयंती, दलित मेला, गीतों, नाटकों की नई विधा से खुद की पहचान बनाने में लगे हैं। नागपुर दीक्षाभूमि दलितों के तीर्थ स्थल के रूप में लोकप्रिय हो रहा है। मुम्बई चैत्य भूमि में अम्बेडकर को हर वर्ष श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया जाने लगा। मध्य प्रदेश महू में उनके जन्म स्थान 14 अप्रैल के दिन देशभर मे जन्मदिन का उत्सव मनाया जाता है। महाद सत्याग्रह, भीमा कोरेगांव श्रद्धांजलि दिवस का आयोजन दलितों को अलग सांस्कृतिक पहचान देता है। डॉ अम्बेडकर की याद में उनके द्वारा किये गये दलित सशक्तिकरण के प्रयासों को गीतों, कैसेटों, वीडियोज द्वारा लोकप्रिय बनाया गया है। यह एक तरह से प्रति संस्कृति के रूप में भी विकसित हो रही है। फिल्मो, गायकी के माध्यम से महाराष्ट्र में एवं पूरे देश में अम्बेडकरी आन्दोलन को प्रचारित प्रसारित किया जा रहा है। दलितों की नई सांस्कृतिक पहचान को मजबूत बनाया जा रहा है। गौतम बुद्ध की मूर्तियां तो अब हर घर में पाई जाती हैं। धर्मांतरण करके दलितों का नई पहचान देकर डॉ अम्बेडकर दलितों के एकमात्र उद्धारक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। जो कि फुले और पेरियार जैसे समाज सुधारक नहीं कर पाए। एनडीए सरकार ने डॉ अम्बेडकर से जुडे. स्थानों को अंबेडकर सर्किट के रुप में विकसित करने की योजना का आरंभ किया है जिसमें महू, नागपूर, दिल्ली, बंबई जैसे जगहों को शामिल किया गया है। ये जगह डॉ अंबेडकर के जन्मभूमि, दीक्षाभूमि, महापरिर्निवाण से जुड़े हुए हैं।

डॉ. अंबेडकर के बाद महाराष्ट्र में दलित आंदोलन की स्थिति

6 दिसंबर 1956 को अंबेडकर के निधन के बाद उनके समर्थकों सहयोगियों पर यह जिम्मेदारी आ गई कि उनके मिशन को आगे बढ़ाएं एवं उनके सपने को पूरा करें। डॉ अंबेडकर रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया बनाना चाहते थे। जिसे वे जमीनी रूप नहीं दे पाए आर पी आई मुख्य रूप से विपक्षी की भूमिका रहना चाहता था। जो कांग्रेस के कामों पर अंकुश लगाने का काम करें। दादासाहेब गायकवाड़ ने अंबेडकर के बाद आंदोलन की पूरी दायित्व अपने कंधों पर लिया। वे महाद आंदोलन के समय से अंबेडकर के विश्वसनीय थे। गायकवाड़ अंबेडकरी आंदोलन के प्रतिनिधि कार्यकर्ता थे और उनकी एक अलग पहचान थी। वे दलित जनता की नब्ज को बखूबी पहचानते थे। दलितों की समस्या, जिसमें सबसे बड़ी समस्या थी भूमिहीन दलित होने की उसको सर्वप्रथम गायकवाड़ ने ही उठाया। यह उत्तर अंबेडकर दलित आंदोलन की सबसे बड़ी घटना थी। उन्होने भूमि की समस्या के आंदोलन को राष्ट्र स्तरीय का बना दिया। जिसे बड़े पैमाने पर जन समर्थन भी मिला, दलित जनों का अपार समर्थन से आंदोलन की लोकप्रियता बढ़ गई थी। दादासाहेब गायकवाड़ ग्रामीण पृष्ठभूमि के थे ज्यादा पढ़े–लिखे नहीं थे, धोती कुर्ता पहनते थे इसलिए आर पी आई के अन्य समकक्ष नेता उनको सहज भाव से स्वीकार नहीं कर पाते थे। उन्होंने गायकवाड़ के संघर्ष को कम्युनिस्ट करार देते हुए अस्वीकृत कर दिया, और घोषणा कर दी कि अंबेडकरी एजेंडे में इसके लिए कोई जगह नहीं है।[56] दादासाहेब गायकवाड़ द्वारा शुरू किया जन संघर्ष जिसमें जेल भरा गया था को अंबेडकर विरोधी बताया गया क्योंकि अंबेडकर संवैधानिक तंत्र में विश्वास करते थे। जिसमें जन संघर्ष को अराजक माना जाता था और संसदीय लोकतंत्र में इसके लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए इस बात को बहुत प्रचारित किया गया। पढ़े लिखे, सूट–बूट में अलंकृत आरपीआई नेता स्वयं को अंबेडकर का सच्चा उत्तराधिकारी मानते थे।

उत्तर अंबेडकरकाल में अम्बेडकर को उनके विचारों से ज्यादा उनके व्यक्तित्व को प्रतीक के रूप में स्थापित किया गया। दलित चिंतक आनंद तेलतुम्बडे

---

[56] तेलतुम्बडे आनंदे, उत्तर अंबेडकर दलित आंदोलन ,पेज 8

के अनुसार डॉ अंबेडकर के प्रतीकीकरण का यह पहला प्रयास था जिसमें सूट बूट में अंबेडकर को दिखाकर आधुनिक बनाना एवं अंग्रेजी शिक्षा से लबरेज किया गया।

रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया

1956 में डॉ अम्बेडकर के निधनोपरांत उनके द्वारा विचारित एक ऐसे पार्टी का निर्माण किया गया जिसमें सभी दलित शोषित वर्गों का प्रतिनिधित्व हो। डॉ अंबेडकर के अनुयायियों ने शेड्यूल कास्ट फेडरेशन को समाप्त कर 3 अक्टूबर 1957 को रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना की।[57] एन. शिवराज आरपीआई के संस्थापकों में से थे। जिन्होंने 1964 तक पार्टी की अध्यक्षता की। 1957–1959 तक का काल आरपीआई का शानदार माना जाता है। अल्पकालिक अवधि में पार्टी के सारे नेताओं का मुख्य उद्देश्य यही रहता था कि किस प्रकार डॉ अम्बेडकर के विचारों पर आधारित कार्यों का कार्यान्वयन हो। दलित जातियों का उत्थान हो और शासक पार्टियों का विरोध कर मजबूत विपक्षी पार्टी की भूमिका का निर्वाह हो। वी के गायकवाड़, बीसी कांबले, दिघे, जी.के.माने, हरिहर राव सोनुले, दत्ता कट्टी आदि नेता 1957 के संसदीय चुनाव के लिए निर्वाचित हुए। जहां उन्होंने दलितों के सशक्तिकरण के मुद्दों को उठाया। रिपब्लिकन पार्टी ने निम्न मुख्य मुद्दे पर कार्य किया–

1. दलितों के प्रति हो रहे अत्याचार के विरोध में एवं दलितों को जागरूक करने की दिशा में।
2. समता सैनिक दल जिसका गठन जिसका गठन 1928 में डॉ अंबेडकर ने किया था, को फिर से पुनर्जीवित कर पार्टी के अनुशासन को बनाए रखना।
3. 1957 नागपुर में ऑल इंडिया वीमेन्स कॉन्फ्रेंस का आयोजन।
4. दलित साहित्य संघ के आयोजन में पूर्ण रूप से योगदान देना। 1958 में पहली बार कॉन्फ्रेंस का आयोजन किया गया जिसके अध्यक्ष बीसी कांबले थे।

---

57 Jaffrelot Christophe, Dr. Ambedkar and Untouchability, page-86

5. रिपब्लिकन पार्टी द्वारा ऑल इंडिया स्टूडेंट्स फेडरेशन का स्थापना किया गया।
6. भगवान बुद्ध के विचारों का प्रचार–प्रसार।

1954–1964 के बीच व्यापक सत्याग्रह आरपीआई द्वारा किया गया। जिसमें उनके प्रमुख मांगों को मान लिया गया था कि भूमिहीनों को भूमि का वितरण किया जाए। इसकी अध्यक्षता दादासाहेब गायकवाड़ कर रहे थे। 1964 में पुनः परती जमीन को गरीबों को देने के लिए एक विशाल जन सत्याग्रह नेताओं द्वारा किया गया। तत्कालीन महाराष्ट्र में आर पीआई का प्रभाव राजनीतिक एवं सामाजिक रूप से प्रभावी था। दलित जनसंख्या का प्रतिशत अधिक होने के कारण दलित आरपीआई से जुड़ रहे थे एवं उस समय की एकल पार्टी कांग्रेस दलितों के हित में ज्यादा कुछ नहीं कर पा रही थी। आरपीआई का प्रसार पूरे भारत में हो रहा था एवं इसकी लोकप्रियता लगातार बढ़ रही थी। आरपीआई के नेताओं ने प्रधानमंत्री के समक्ष निम्न बिंदुओं पर अपना चार्टर प्रस्तुत किया–संसद के सेंट्रल हॉल में अंबेडकर की प्रतिमा स्थापित की जाए, भूमिहीन एवं गरीबों को जमीन दी जाए, खेतिहर किसानों को भूमि, फसलों का उचित वितरण, महंगाई दर में कमी, झुग्गी झोपड़ी में रहने वालों के जीवन में सुधार, 1948 के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का पूरी तरह से इंप्लीमेंटेशन हो, जो भी एससी एसटी धर्मांतरण करके बुद्धिस्ट हो गए उन्हें भी आरक्षण की सुविधा मिले, दलितों का उत्पीड़न बंद किया जाए एवं अस्पृशयता उन्मूलन अधिनियम के तहत पूर्ण न्याय प्रदान किया जाए।[58] अपने शुरुआती दौर में आरपीआई संगठित तौर पर बहुत क्रांतिकारी था। जनता के बीच इस पार्टी को लेकर उत्साह एवं विश्वास था। देश के अन्य राज्यों में उत्तर प्रदेश, पंजाब, दक्षिण के राज्यों में आरपीआई का फैलाव हो रहा था। खासकर उन जगहों में जहां अंबेडकर का प्रभाव था। उत्तर प्रदेश के आगरा, कानपुर एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आरपीआई के संगठन कार्यालय बने। लेकिन नेताओं का परस्पर स्वार्थ, अहंकार, व्यक्तिगत हित, मजबूत सत्ताधारी पार्टी की लुभावनी पेशकश ने आरपीआई को जल्दी ही विखंडित विभाजित कर दिया।

---

[58] Teltumbde Aanand, Dalits, page-89

1959 से आरपीआई में विभाजन का दौर आरंभ हो गया। जिसका मुख्य कारण नेताओं का आपसी दंभ था। बीसी कांबले और दादासाहेब गायकवाड़ ने आर पी आई को पहली बार दो धड़ों में विभाजित किया। दुरुस्त आरपीआई जिसमें यह माना गया कि वे लोग डॉ अंबेडकर के विचारों के सच्चे वाहक हैं। उन्हें ही संविधान की अच्छी समझ है क्योंकि वे उच्च शिक्षित दलित है। इस दुरुस्त आरपीआई में बीसी कांबले, एच डी अवाले, दादासाहेब रूपवते आदि। आरपीआई नादुरुस्त जिसमें दादासाहेब गायकवाड़ राजाभानु खोब्रागड़े, शिवराज, दता कट्टी और आर डी भंडारे थे । इस पार्टी को आरपीआई दुरुस्त पार्टी ग्रामीण देहाती एवं कम्युनिस्टों का चमचा समझती थी।[59] इस विखंडन से ज्यादा समस्या उन दलित शिक्षित मध्यम वर्गीय परिवार को हो रहा था जो अंबेडकर एवं कम्युनिज्म के बीच फंस गए थे। यहां एक और चीज थी कि डॉ अंबेडकर अपने को हमेशा सूट बूट में रखने वाले जेंटलमैन बनकर रहते थे जिसका नकल दुरुस्त आरपीआई के नेता करके खुद को अम्बेडकर ही समझते थे। यह डॉ अंबेडकर के प्रतीकीकरण का पहला साक्ष्य था। आरपीआई अब अपने आंदोलनात्मक तरीके से लोगों तक अपनी बात नहीं पहुंचा पा रही थी जितनी कि आरंभिक दौर में सक्रियता थी। दलित नेताओं की व्यक्तिगत कमजोरी जो आजादी के बाद के दौर में था वह अब भी मौजूद थी। व्यक्तिगत स्वार्थ एवं व्यक्तिगत हित दलित आंदोलन के लिए काफी नुकसानदायक रहा। आरपीआई के विखंडन का दुष्परिणाम 1962 के आम चुनाव में स्पष्ट तौर पर उभरने लगा, जब आरपीआई एक भी सीट नहीं जीत पाई। ब्रिटिश शासन काल से फूट डालो एवं राज करो का सिद्धांत बहुत प्रचलित था। इस सिद्धांत के द्वारा ही ब्रिटिशों भारत देश को 100 वर्षों तक गुलाम बनाकर रखा। जो सत्ता के चाहत रखने वाले उच्च वर्ण थे, उनमें यह सिद्धांत घर कर गया था। यह शासक वर्ग अपनी राजनीतिक सत्ता को बचाए रखने के लिए प्रतिद्वंदियों का दमन करते थे या अपने में मिला लेते थे। जैसे जब ब्राह्मण धर्म से अलग बौद्ध धर्म फलने फूलने लगा तो ब्राह्मणों ने बुद्ध को विष्णु का नौवां अवतार बनाकर हिंदू धर्म में मिलाने की लगातार कोशिश करते रहे एवं प्रचारित किए। दमन एवं अपने में मिला लेने की प्रवृति से ही यह वर्ग सत्ताधारी बना रहा। दलित आंदोलन 1955–60

[59] Teltumbde Aanand, Dalits, page-91

के दशक में बहुत लोकप्रिय रहा। 1957 के चुनाव में अच्छा प्रदर्शन भी किया इससे कांग्रेस पार्टी डर गई एवं कम्युनिज्म के खिलाफ दलित नेताओं को इस्तेमाल करने के लिए प्रलोभन, पावर देने का वादा शुरू कर दिया। यहां एक और बात बहुत अहम है कि दलित नेता समाज में प्रतिष्ठा, पावर और धनी बनने के लिए लालायित रहते थे। जो कि अभी की भी वर्तमान राजनीति में देखा जा सकता है। पूना पैक्ट एवं संसदीय चुनावी पद्धति का यह सबसे दोहरा चेहरा है जिसमें दलित नेता अपनी सीट अपने फायदे तक ही सीमित रह गए । उनका डॉ अंबेडकर की विचारधारा एवं दलित उत्थान से कोई लेना–देना नहीं रहता है।

महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री यशवंत राव च्वहाण एवं गायकवाड़ की नजदीकियां बढ़ने लगी। यशवंत राव ने उन्हें सत्ता में बने रहने का प्रलोभन दिया। जिस आरपीआई का गठन ही कांग्रेस के विरुद्ध एक विपक्षी पार्टी के रूप में हुआ था। उसी आर पी आइ के नेता अब कांग्रेस के पक्ष में बोलने लगे। दलित आंदोलन को गति देने वाला दलित राजनीति रास्ते से भटक गया। आरपीआई पहले दो फिर पांच एवं ना जाने कितने खंडों में विभक्त होकर रह गया। इस विखंडन के तीन कारण स्पष्ट थे–

1. शासक वर्ग की फूट डालो और राज करो की नीति।
2. दलित आंदोलन में विचारधारात्मक जुड़ाव का अभाव।
3. नेतृत्व की तुच्छ महत्वाकांक्षाएं, अमीर बनने की एवं केवल अपने लिए अपनी राजनीतिक सीट बनाए रखो । आम दलितों से उनका कोई सरोकार नहीं था।

आरपीआई अभी भी है लेकिन अपने मूलभूत स्वरूप से एकदम अलग आरपीआई (अठावले), आरपीआई (खोब्राागडे), प्रकाश अंबेडकर की आरपीआई। इन महत्वाकांक्षी दलित आरपीआई नेताओं ने डॉ अंबेडकर के सपनों की पार्टी को अपने उपनाम के ब्रैकेट में बंद कर दिया। उनकी यह पहचान दलित समुदाय को विभाजित करने का एक और फंडा ही है। ऐसे लोगों के लिए पीछे की ओर एक गुणात्मक छलांग थी जिन्होंने जाति के खात्मे की मिशन की शुरुआत की थी। इन

सभी नेताओं ने डॉ अंबेडकर के एक से बढ़कर एक अनुयायी होने का दावा तो किया लेकिन अपने उपनाम द्वारा सब कुछ तहस–नहस भी किया। स्वयं को अंबेडकरवादी एवं बौद्ध धर्म के अनुयायी भी जताते हैं लेकिन स्वयं इसके विध्वंसक भी हैं। जब 1956 में डॉ अंबेडकर ने धर्मांतरण का भव्य आयोजन किया जिसमें लाखों की संख्या में दलितों ने अपने को बौद्ध घोषित किया तो यह दलित आंदोलन को नया सांस्कृतिक आयाम देने वाला कदम साबित हुआ। स्वतंत्रता के बीस साल बाद दलितों में एक ऐसा वर्ग पनपा जो शिक्षा, विज्ञान, कानून एवं अंबेडकरी विचारधारा के साथ स्वाभिमान से बढ़ा रहा था। इस वर्ग को यह समझ में आ रहा था कि इन वर्षों में दलित उत्थान के लिए कुछ भी जमीनी स्तर पर नहीं किया गया है। अंबेडकर के विचारों की विरासत को बचाने वाली रिपब्लिकन पार्टी सत्ता, स्वार्थ, समझौते, लाचारी और गुटबंदी से जूझ रही थी। अस्पृश्यता की समस्या पर संघर्ष करने वाला कोई संगठन नहीं था। दलितों पर अत्याचार लगातार बढ़ रहे थे।

दलित पैंथर्स

शिक्षित ग्रेजुएटस युवा दलित विदेशी अमेरीकी ब्लैक पैंथर की संघर्ष की गाथा से परिचित हुए। दलितों का अपना साहित्य भी उपलब्ध हो रहा था जिसमें दलित व्यथा कथा, कविताओं द्वारा वर्णन किया गया था। दलित शिक्षित युवा अपने को संगठित करने के लिए 9 जुलाई 1975 को 'दलित पैंथर' की स्थापना की।[60] ये युवा आक्रामक क्रांतिकारी थे। दलित पैंथर अपनी आक्रामकता एवं लड़ाकूपन के कारण बहुत जल्द ही लोकप्रिय हो गया था। यह भी गौर करने लायक है कि जितनी जल्दी यह लोकप्रिय हुआ राजनीतिक खेमे में हलचल मचाई उतनी ही तीव्र गति से यह धाराशायी भी हो गए। दलित गरीब बस्तियों में रहने वाले युवाओं ने अमेरिका यूनाइटेड स्टेटस के ब्लैक पैंथर से प्रेरित हो कर दलित पैंथर्स बनाया। दलित शब्द की लोकप्रियता दलित पैंथर आंदोलन के समय ही बढी। नामदेव ढसाल, ज. वि. पवार, राजा ढाले, रामदास सोरटे, लतीफ खटीक, अविनाश महातेकर, प्रहलाद चंन्देवणकर, अर्जुन डांगले, अनिल कांबले, टी एस कांबले, रामदास अठावले, जैसे अग्रणी कार्यकर्ताओं ने दलित पैंथर को आगे बढ़ाया। दलित

---

[60] लिंबाले, शरण कुमार, दलित पैंथर्स, पेज–13

पैंथर्स ने पहली बार डॉ अंबेडकर के विचारों के साथ रेडिकल कार्यवाही को अपना हथियार बनाया। पैंथर के निडर भाषण, भीड़ को आकर्षित करने वाली सभाएं, आंदोलन, हिंसा, पुलिस अभियोग आदि के कारण दलित पैंथर्स ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया था। दलित पैंथर्स में समाज के सभी शोषित वर्ग को शामिल किया गया। जिसमें एससी, एसटी, नव बौद्ध, कामकाजी वर्ग, भूमिहीन गरीब किसान, महिलाएं और वे सभी जो राजनीतिक रूप से शोषित हो रहे थे, आर्थिक रूप से कमजोर तबका और वैसे लोग जिन्हें धर्मों द्वारा बहिष्कृत कर दिया गया था को अपने साथ शामिल कर लिया। स्वतंत्रता के बाद महाराष्ट्र के ग्रामीण इलाकों में अनुसूचित जाति समुदाय की स्थिति बहुत भयावह थी अत्याचार बहुत बढ़ गए थे, महिलाओं से दुराचार, नरसंहार, घर बस्ती जला देना, दमन काफी बढ़ गया था। सरकार किसी भी प्रकार के सुरक्षा को देने में असमर्थ साबित हो रही थी। महाराष्ट्र के मुंबई, पुणे, नासिक, औरंगाबाद जहां दलितों की संख्या ज्यादा थी वहां दलित पैंथर का फैलाव ज्यादा हुआ था। अपने 18 मांगों वाली घोषणा पत्र में दलित पैंर्थस ने दलितों को सशक्त करने की सारी शर्तें डाल दी थी। अपने आरंभिक काल में दलित पैंथर पूर्ण रूप से डॉ अंबेडकर के विचारधारा पर आधारित थी । रेडिकल उग्रवादी प्रकृति थोड़ी मात्रा में निहित अवश्य था। लेकिन बाद में दलित पैंथर के कुछ नेता और संगठन कार्यकर्ताओं का झुकाव वामपंथी मार्क्सिस्ट विचारधारा की ओर होने लगा जिसमें नामदेव धसाल का नाम प्रमुख है। राजा ढाले जो कि अंबेडकरवाद को दलितपैंथर्स का वैचारिक मूलाधार बनाना चाहते थे, वहीं धसाल वामपंथी थे। इसी मुददे पर दोनों युवा दलित पैंथर में टकराव उत्पन्न हो गया। राजा ढाले ने नामदेव धसाल पर कम्युनिस्टों से मिले होने का आरोप लगाया। राजा ढाले मार्क्सवादी विचारधारा की इसलिए आलोचना करते थे कि साम्यवादी देशों में समाज के निम्न वर्गों के उत्थान एवं उनके जीवन में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं लाया। दलित पैंथर अपने पूर्व गामी संगठन आरपीआई की तरह बनने के एक वर्ष के बाद ही खंडों में विभाजित हो गया ढाले बनाम धसाल गुट। कठमुल्लावाद, संगठन के लिए जरूरी आर्थिक बुनियाद की अनदेखी, लंपट प्रवृतियां, वाकपटुता

में सबको पछाड़ देने की प्रवृत्ति, संघर्ष के स्वरूप के विषयों में स्पष्टता का अभाव और नेतृत्व में भ्रष्टीकरण आदि दलित पैंथर्स के पतन का कारण बने।[61]

दलित नेतृत्व के वैचारिक दिवालिएपन और विखंडन की वजह से दलित आंदोलन हर बार पीछे धकेला गया। दलित पैंथर का भी वही हाल हुआ जो आरपीआई का हुआ था। इनके नेता सत्ताधारी पार्टियों के हाथों कठपुतली बने रहे, आपस में ही लड़ते रहे। दलितों की वास्तविक समस्या से यह कोसों दूर चले गए। राजा ढाले ने दलित पैंथर्स को यह कहकर भंग कर दिया कि कट्टरतावाद अंबेडकरवाद का दुश्मन है। दलित पैंथर का वजूद स्वयंभू था और उस वजूद का उद्देश्य दलितों के दुखों को वैश्विक मंच पर आवाज देना है। इस विखंडन के बाद दलित आंदोलन महाराष्ट्र के साथ साथ भारत के राज्यों में भी गतिहीन सा हो गया। अन्य कार्यकर्ताओं ने 1975 में दलित पैंथर्स को पुनः संगठित करने का प्रयास किया जिनमें अरुण कांबले, रामदास अठावले, गंगाधर गताडे ने भारतीय दलित पैंथर बनाया। भारतीय दलित पैंथर ने मंडल आयोग, मराठा विश्वविद्यालय नामांतरण का संघर्ष अत्यंत जुझारू एवं कठोरता से लड़ा। गांव से लेकर राज्य एवं दिल्ली तक पैंथर ने आंदोलन द्वारा अपनी मांगे लोगों और सरकारों के सामने सार्वजनिक रूप में रखीं। पैंथर का जन्म मुंबई में हुआ, मुंबई में ही समाप्त हो गया लेकिन मुंबई के बाहर की असंख्य शाखाओं और असंख्य लोगों ने पैंथर को कभी मरने नहीं दिया। क्योंकि उनके मत में दलित पैंथर कभी भी मात्र संगठन नहीं था अपितु एक जीवित विद्रोही चेतना थी।

भूमिहीनों के सत्याग्रह, नामांतरण का संघर्ष, दलित साहित्य दलित पैंथर का उदय आदि डॉ अंबेडकर के मरणोंपरांत दलित आंदोलन की महत्वपूर्ण घटनाएं हैं। दलित पैंथर दलित साहित्य में व्याप्त विद्रोह को प्रत्यक्ष कार्य की भूमि पर लाया है। नामदेव ढसाल, राजा ढाले, उमाकांत रंधीर, ज वि पवार, अरुण कांबले, अर्जुन डांगले जैसे कवियों और लेखकों ने पैंथर संगठन को आगे बढ़ाया है किंतु इसके बाद दलित लेखक दलित पैंथर से अलग होते चले गए। मध्यमवर्ग भी पैंथर के बारे

---

[61] तेलतुम्बडे आनंद उत्तर अंबेडकर दलित आंदोलन दशा और दिशा, पेज 19

में उदासीन बन चुका है। दलित मुक्ति सेना, समता सैनिक दल, बामसेफ, डी एस फोर, दलित युवक संगठन, रिपब्लिकन युवक, मास मूवमेंट, ढसाल पैंथर आदि के अलावा अन्य संगठनों के कारण दलित युवाओं में जोश बना रहा। किसी भी आंदोलन का चरित्र उसके कार्यकर्ताओं के चरित्र, कार्यशैली पर निर्भर करता है। इस दौर में दलित आंदोलन में वैसे असामाजिक तत्वों का भी समावेश हो गया था जो दलित आंदोलन के लिए घातक साबित हुआ। दास को उसकी दासता का ज्ञान करा दो तो वह विद्रोह करेगा इस विचार को दलित युवाओं के अंतःकरण में पिरोने का कार्य दलित पैंथर ने किया था।[62]

महाराष्ट्र में दलित आंदोलन का स्वरूप बहुत व्यापक था। इनका संघर्ष परंपरागत विचारों एवं संस्कृति से है। दलित आंदोलन को व्यापक सामाजिक, आर्थिक आधार नहीं प्राप्त हो पाया। आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों को मजबूत आधार प्रदान करना आंदोलन की सफलता के लिए आवश्यक है। संगठन को बलशाली बनाना, संगठन को मजबूत दार्शनिक नींव प्रदान करना, संगठन को संघर्षशील, क्रांतिकारी संगठनों से जोड़ना आंदोलन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है।

नामांतर आंदोलन

मई 1970 में भारतीय दलित संसद ने पहली बार मुंबई में नामांतर की सार्वजनिक मांग की। औरंगाबाद के मराठा विश्वविद्यालय का नाम डॉ अंबेडकर विश्वविद्यालय करने के लिए तत्कालीन मुख्यमंत्री वसंतदादा पाटिल को ज्ञापन भी सौंपा गया। औरंगाबाद में इन नव पैंथरों को सभी संगठनों, छात्रों, युवाओं, विचारको एवं साहित्यकारों का समर्थन भी प्राप्त था। मराठवाड़ा विश्वविद्यालय का नाम डॉ अंबेडकर विश्वविद्यालय करने का प्रस्ताव पारित हो गया। महाराष्ट्र में प्रगतिशील जनतांत्रिक दल के नेता शरदराव पवार महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बने उन्होंने जल्द ही सद्भावना से 27 जुलाई 1978 में नामांतर हुआ डॉ बाबासाहेब अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय हो गया। इस नामांतर आंदोलन के दौरान गैर दलितों द्वारा बहुत बड़े

---

[62] लिंबाले, शरण कुमार, दलित पैंथर्स, पेज–192

पैमाने पर हिंसा हुई, अफवाहें भी खूब फैलाई गई। दलितों पर पुलिसिया अत्याचार एवं उनकी हत्याएं भी हुई। नामांतर आंदोलन डॉ अंबेडकर के शैक्षणिक विचारों का प्रभावी कार्यान्वयन था। डॉ अंबेडकर शिक्षा के प्रति कितना जुझारू थे इस आंदोलन द्वारा व्यक्त किया गया था। नामांतर आंदोलन इसलिए आवश्यक था क्योंकि विश्वविद्यालय में दलित छात्रों की संख्या सर्वाधिक थी, डॉ अंबेडकर ने अपना मिलिंद महाविद्यालय यही औरंगाबाद में स्थापित किया था। औरंगाबाद डॉ अंबेडकर का प्रिय स्थान था। इस जिले में बौद्ध गुफाएं, एलोरा अजंता की गुफाएं, डॉ अंबेडकर को आकर्षित करती थी। मराठवाड़ा के सर्व साधारण लोगों ने इस नाम का विरोध नहीं किया। हिंसात्मक संघर्ष के बाद मराठवाड़ा विश्वविधालय का नाम डॉ अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविधालय कर दिया गया।

महाराष्ट्र के दलित आंदोलन पर विभिन्न रिसर्च स्कॉलर्स द्वारा अध्ययन किया गया है जिसमें धनंजय कीर,वसंत मून,गेल आमवेट, ऐलिनार जेलियट ,आनंद तेलतुम्बडे,डॉ शरण कुमार लिंबाले, आदि का काम उल्लेखनीय है। महाराष्ट्र के दलितों की जनसंख्या में सबसे ज्यादा जनसंख्या प्रतिशत महारों की है जिस जाति से डॉ अंबेडकर थे। इस जाति का सबसे ज्यादा राजनीतिकरण भी हुआ। आरपीआई एवं दलित पैंथर आंदोलन में इस जाति के नेताओं की ही प्रमुखता थी। डॉ अंबेडकर के धर्मांतरण में भी महार जाति के दलितों की संख्या सर्वाधिक थी। महाराष्ट्र की अन्य दलित जातियां जैसे मांग, मातंग, चमार स्वयं को हिंदू धर्म से ही जोड़े रहे इन जातियों में अंबेडकरवादी होने एवं नव बौद्ध होने का चलन कम है। यहां यह कहा जा सकता है अंबेडकरोतर काल में दलित आंदोलन सामाजिक सांस्कृतिक रूप से ज्यादा मजबूत होने के बजाय राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने तक सीमित हो गया। सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन का फैलाव नहीं हो पाया। वैचारिक रूप से डॉ अंबेडकर के बाद के दलित नेता ना तो स्वयं एकजुट रहे नाही जनसाधारण को भी जोड़ने का प्रयास किया। नामांतरण आंदोलन में भी इसी विभाजन का फायदा उठाकर हिंदूवादी दक्षिणपंथी शक्तियों ने गैर महार दलितों को अपने साथ ले लिया। हिंसा तथा अत्याचार द्वारा दलित आंदोलन को कमजोर ही किया गया। दलित पैंथर आंदोलन ने इस समाज के अंदर छुपे हुए क्रांतिकारी

आक्रोश को बाहर ले आया। दलित पैंथर ने भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम साहित्य एवं हिंसा किसी से भिड़ जाने वाली प्रवृति को हवा दे दी थी। दलित पैंथर में जो विभाजन हुए राजा ढाले व नामदेव धसाल के बीच, धसाल दलित पैंथर को वर्गीय उत्पीड़ित लोगों से जोड़ना चाहते थे जिसमें सभी कामगार बंधुआ मजदूर एवं समाज के सभी जाति के लोग आएं। गेल ओमवेट के अनुसार दलित पैंथर रैडिकल राजनीति पर सक्रिय था उनके पास नए समाज को संभावनाओं को ध्यान रखते हुए कोई ठोस सामाजिक आर्थिक प्रोग्राम नहीं था। महाराष्ट्र के अंबेडकरोतर काल के दलित आंदोलन को दलित पैंथर आंदोलन ने 1972 से लेकर वर्तमान तक के दलित राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति को प्रभावित किया। दमन और हिंसा के द्वारा यह माना जाने लगा कि दलित पैंथर को खत्म कर दिया गया है लेकिन ऐसा नहीं है। पुस्तकों एवं नेताओं के उपस्थिति के कारण दलित पिछड़ों की उग्रता भले कम हो गई दलित पैंथर से विचार अभी भी हैं । शुरुआत में तो दलित पैंथर ने आरपीआई के पिछलग्गूपन एवं राष्ट्रीय पार्टियों के साथ विलय के कारण चुनावी राजनीति का बहिष्कार किया। लेकिन बाद में उन्हें लगा कि राजनीति से अलग रह कर किसी भी प्रकार का आंदोलन नहीं किया जा सकता। दलित पैंथर्स के कुछ नेता जैसे रामदास अठावले ने आरपीआई के एक धड़े के साथ कांग्रेस से गठबंधन कर लिया। आज भी रामदास अठावले केंद्रीय मंत्री हैं एनडीए सरकार में। यह यही दर्शाता है कि दलित नेताओं का महत्व लोकतंत्र के रिप्रेजेंटेटिव मॉडल में केवल एक दलित प्रतिनिधि के रूप में ही रह गया।

महाराष्ट्र के दलित आंदोलन में किसी भी दलित संगठन का उद्देश्य पार्टी पॉलिटिक्स में सक्रिय रहना प्रमुख हो गया था। उनका यह विश्वास था कि इलेक्टोरल राजनीति द्वारा ही दलितों की आवाज को बुलंद किया जा सकता है। ऐसा डॉ अंबेडकर का भी मानना था कि राजनीति सत्ता प्राप्त करना ही मास्टर की है। पार्टी पॉलिटिक्स के क्षेत्र में हमेशा यह प्रयास भी किया गया कि आरपीआई के विभाजित खंडों को कैसे एक किया जाए। 1989 में छात्रों एवं नेताओं द्वारा भूख हड़ताल कर आरपीआई को एक करने की मांग की गई। यह प्रयास भी सीमित सफल रह पाया। आर पी आई का विभाजन नेताओं की निजी लाभ के कारण

बदस्तूर जारी रहा। आरपीआई के हर धड़े को डॉ अम्बेडकर के विचार धारा से जोड़ना एवं मूल आरपीआई के चुनाव चिन्ह को लेकर भी विवाद होने लगा था। 1999 में इलेक्शन कमीशन उगते सूरज चुनाव चिन्ह किस धड़े को दें इसको लेकर भी संशय में था। उस समय तक आरपीआई के 10 टुकड़े हो चुकी थी। रामदास अठावले की आरपीआई (अठावले) ने इस चिन्ह को साथ लिया। कांग्रेस एवं एनसीपी के साथ पितृसुलभ गठबंधन भी किया। आरपीआई के टुकड़े में से दूसरा महत्वपूर्ण राजनीतिक पार्टी भारिपा बहुजन महासंघ (बीबीएम) बना। जिसका नेतृत्व डॉ अंबेडकर के पौत्र प्रकाश अंबेडकर कर रहे हैं। बीबीएम के कार्यकर्ता बौद्ध महासंघ से भी संबंध है। जो एक बुद्धिस्ट संगठन है जिनका कार्य दलितों के बीच बुद्धिज्म का प्रचार प्रसार करना है। महाराष्ट्र के दलित आंदोलन के अंतर्गत इन दलित पार्टियों ने इलेक्शन लड़ने के अलावा और कोई वैसा काम नहीं किया जिससे दलितों में कोई क्रांतिकारी बदलाव आए। चुनावी नतीजे भी इन पार्टियों के भविष्य एवं उद्देश्य के अनुकूल नहीं रहे। यह केवल चुनावी मेंढक की बनकर रह गए।

महाराष्ट्र के दलित आंदोलन एवं संपूर्ण भारत में जो दलित आंदोलन हुआ उन सभी ने डॉ अंबेडकर का प्रभाव सर्वाधिक है। उन्होंने ही दलितों को ऊर्जावान बनाकर नई राह दिखाई। महाराष्ट्र के दलितों में सबसे ज्यादा जनसंख्या वाले एवं प्रभाव वाले महार जाति हैं जिसमें डॉ अंबेडकर जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व का अभ्युदय हुआ। महार जाति से अंग्रेजों के शासनकाल में सेना में भर्ती होता था। महार रेजीमेंट एक अलग रेजीमेंट भी था। भीमा कोरेगांव स्मृति स्थल महारो के शौर्य प्रतीक के रूप में जाना जाता है। कोरेगांव स्तंभ शिलालेख में लड़ाकू मारे गए 49 कंपनी सैनिकों के नाम शामिल हैं। इन बाइस नामों के प्रत्यय (नाक) के साथ समाप्त होता है जो कि महार जाति के लोगों द्वारा विशेष रूप से उपयोग किया जाता रहा। हालांकि यह ब्रिटिश द्वारा अपनी शक्ति के प्रतीक के रूप में बनाया गया था, आज यह महारों के शौर्य प्रतीक स्मारक के रूप में है। इस कंपनी में अंग्रेजी सेना का साथ बाम्वे नेटिव इफेंट्री ने दिया। जिनमें ज्यादातर महार दलित सैनिक थे। यह युद्ध पेशवाओं और अंग्रेजों की लड़ाई थी जिसमें अंग्रेज विजयी हुए।

उन्होंने इस स्मारक का निर्माण कराया भीमा कोरेगांव जगह पर 1 जनवरी 1818 को कराया। निर्माण के बाद से प्रत्येक वर्ष वहां महारों द्वारा श्रद्धांजलि दी जाती हैं। डॉ अंबेडकर से लेकर अन्य दलित नेता भी वहां जाकर उन सैनिकों का यश गान करते हुए पुष्पांजलि अर्पित करते हैं।

गैर सरकारी संगठनों की भूमिका

1980 के दशक के मध्य से भूमंडलीय नियंत्रित संरचना में गैर सरकारी संगठनों ने एनजीओ ने विशेष स्थान र्निमित किया है। वाशिंगटन कानसेंशस जो कि वैश्विक पूंजीवादी अभियान को संचालित करता था उसने तमाम सरकारों को यह र्निदेश दिया कि वे आर्थिक गातिविधियों से स्वयं को अलग कर लें, कल्याणकारी राज्य की नीतियों को कम कर दें और बाजारीकरण के लिए दी जाने वाली परंपरागत सेवाओं को बंद कर दें। इस र्निदेश से सबसे ज्यादा प्रभावित दलित ही हुए,क्योंकि ये योजनाएं उनके लिए ही थी। इसलिए दलितों की स्थिति में सुधार के लिए एनजीओ आगे आए। महाराष्ट्र में दलितों के लिए कार्य करने के लिए इतने एनजीओ सक्रिय हो गए कि 'दलित आंदोलन के एनजीओकरण' की कहावत प्रचलित हो गइ।[63] किसी खास विषय पर एनजीओ द्वारा व्यवसायिक नजरिए से कार्य किया जाता है और इस कार्य में अधिकांश युवा सामाजिक कार्य करते हुए दिखते है। जैसे–दलित बच्चों को पढाना, महिलाओं को सिलाई बुनाई की ट्रेनिंग देना, दलित युवाओं को विशेष कोर्स की प्रशिक्षण देना इत्यादि। इन सभी कार्यों से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि एनजीओ किसी भी जनप्रतिनिधि की तुलना में ज्यादा अच्छा सामाजिक कार्य कर रहे हैं। एनजीओ प्रभावशाली ढंग से दलितों को दिशाहीन करते हैं। उनको व्यवस्थ्ति ढंग से अपनी मुसीबतों को समझने से भटकाते हैं और टुकड़ों–टुकड़ों में समस्याओं का समाधान बताते हैं। इनमें से अधिकांश एनजीओ अंबेडकर की सौगंध खाते हैं और अपने को अंबेडकरवादी कहते हैं।[64]

---

[63] तेलतुम्बडे आनंद, दलित आंदोलन और अंबेडकर,पेज –126

[64] वही

महाराष्ट्र के दलित आंदोलन में मांग एवं चमार दलित जातियों की भूमिका

मांग या मातंग जाति महारों के बाद महाराष्ट्र की दूसरी सबसे ज्यादा जनसंख्या वाली दलित जाति है। अखिल भारतीय मातंग संघ नामक गैर राजनीतिक संगठन का गठन डॉ बाबा साहब घोलप की अध्यक्षता में किया गया था। इस संगठन ने मातंगों के आर्थिक स्थिति में सुधार लाने, रोजगार देने के लिए संघर्ष किया। 26 दिनों के अनशन के बाद सरकार ने लोक साहिब अन्नाभाउ साठे विकास निगम के गठन को मंजूरी दी, जो 1985 में स्थापित किया गया अलग से 8 प्रतिशत आरक्षण की मांग अनुसूचित जाति की कोटे में किया गया। लाहूजी साल्वे आयोग का गठन 2003 में महाराष्ट्र सरकार द्वारा इस आरक्षण को लेकर किया गया ताकि महाराष्ट्र में मातंग जाति के सामाजिक आर्थिक स्थिति का अध्ययन एवं उनकी वास्तविक उपलब्धि हो सके। दलित महासंघ जिसका नेतृत्व मचिद्र साकटे ने किया। बहुजन रैय्यत पद पद जिसका गठन धोबले ने किया। बहुजन मजूर पक्ष जिन्होंने मातंगे के लिए समानता की मांग की। इन सब में मानवी हक अभियान 90 के दशक में मराठवाड़ा में मातंगों के हक के लिए लड़ने वाला प्रमुख संगठन था जिसका उद्देश्य मातंगों की सामाजिक आर्थिक प्रगति करना था। जाति आधारित यह संगठन अपने सामाजिक राजनीतिक उत्थान के लिए इस बात से भलीभांति परिचित थे कि हिंदुत्व द्वारा केवल उनका इस्तेमाल वोट बैंक के लिए होता है। वे दलित जैसी व्यापक परिकल्पना के अंतर्गत रहकर अंबेडकरवाद के मार्ग पर चलने में ही हित समझते थे। मंचिद्र साक्टे (दलित महासंघ) , सुकुमार कांबले (डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफ इंडिया) जिन्होंने हिंदू वाद के प्रति मोबिलाइजेशन की आलोचना की। कुछ नेताओं ने बुद्धिज्म में धर्मांतरण भी किया।

आज महाराष्ट्र का दलित आंदोलन के प्रमुख कर्ता जैसे आरपीआई अनेक टुकड़ों में बिखर कर रह गया है। भारतीय दलित पैंथर अभी भी है लेकिन उसकी आक्रामकता एवं नेताओं का अधिग्रहण हिंदूवादी पार्टियों द्वारा कर लिया गया। 1980 के दशक में डॉ अंबेडकर के पौत्र प्रकाश अंबेडकर दलित जनता के बीच आए। प्रकाश अंबेडकर भारतीय रिपब्लिक पार्टी द्वारा राजनीति में सक्रिय हैं। प्रकाश अम्बेडकर द्वारा दलितों और अन्य गरीब जनता के लिए आर्थिक विषयों पर

संचालित संघर्षों के कारण दलित जनता के बीच लोकप्रिय हो गए। 2019 के आम चुनाव में प्रकाश अम्बेडकर की बहुजन वंचित अघाड़ी पार्टी ने अन्य पार्टीयों के साथ गठबंधन करके अच्छा प्रदर्शन किया है। 2019 के महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव में भी कुछ नही कर पाई।

महाराष्ट्र में दलितों में चमार जाति अपने को महार एवं मातंग से ज्यादा सर्वश्रेष्ठ समझती है। इस दलित जाति पर हिंदुओं के संस्कृतिकरण का प्रभाव है। जिसका फायदा दक्षिणपंथी पार्टी उठाती है, और दलित अनुसूचित जाति कहती है जिस को संरक्षण देना अपना कर्तव्य समझती है। शिवसेना जैसे क्षत्रप दलित नव बौद्धों को अक्सर अपने हिंसा एवं अत्याचार से दमन करती है। बसपा के प्रभाव को कम करने के लिए शिवसेना ने महाराष्ट्र चर्मकार संघ ,जिसके चमार नेता बावनराव घोलप को अपना नेता बना लिया। जो शिवसेना ,बीजेपी एवं अन्य हिंदूवादी संगठनों का विरोध करते हुए गुरु रविदास समता परिषद और गुरु रविदास सत्यशोधण संगठन, मराठवाड़ा में बनाया। ऐसे संगठन दलित अस्मिता के निर्माण के पक्ष में लोगों को मोबिलाइज करते थे। ऐसे संगठनों ने बसपा के लिए भी मंतव्य बनाया।

महाराष्ट्र में मुख्यधारा की पार्टियां जैसे कांग्रेस, बीजेपी, शिवसेना, एनसीपी ने दलितों को अपने प्रति आकर्षित करने के लिए गैर राजनीतिक दलित सामाजिक आर्थिक संगठन बनाए हुए थे। महाराष्ट्र की राजनीति में दलितों की पार्टियां थी लेकिन वे मुख्यधारा की पार्टियों से ही जुड़ी रहती थी। जिसे दलित नेताओं का व्यक्तिगत हित एवं उनके पार्टी की प्रासंगिकता बनी रहती थी। डॉ अंबेडकर द्वारा किए गए पूना पैक्ट का यही वास्तविक चेहरा था। ऐसे नेता केवल और केवल ब्राह्मणवादी पार्टियों के स्टूज बनकर रह गए हैं। दलितों के हित एवं उनके उत्थान से इनका कोई लेना देना नहीं है। आरपीआई, दलित पैंथर्स जैसे दलितों के अपने संगठनों का और नेताओं का मुख्यधारा के पार्टी द्वारा हड़पने की नीति आत्मसात करने की विडंबना के बावजूद दलित राजनीति बढ़ते गया। दलित आंदोलन का सशक्त एवं प्रभावी धार खत्म हो रहा था टूट रहा था। महाराष्ट्र की राजनीति में दलित प्रजातांत्रिक राजनीति में व्यापक भूमिका का निर्वाह कर रही थी।

गैर पार्टी पॉलिटिक्स वाले दलित संगठन हार नहीं मान रहे थे, उनका प्रचार–प्रसार अभी भी जारी है। महाराष्ट्र में दलितों की राजनीति एवं डॉ अंबेडकर का सपना सत्ता के शीर्ष पर आना बेशक धाराशयी हो गया। जिसका मूल कारण अदालतों में एकजुटता का अभाव और प्रतिनिधित्व लोकतंत्र की खामियां। दलितों का राजनीतिकरण चल ही रहा है लेकिन इन सब आंदोलनों संघर्ष के कारण अंबेडकर का प्रवेश गांवों, छोटे शहरों एवं मलिन बस्तियों में होने लगा। डॉ अंबेडकर अब रक्षक, पैगंबर, विरोध के प्रतीक, संविधान निर्माता, बुद्धिज्म के प्रवर्तक के रूप में पहचाने जाने लगे। महाराष्ट्र में नव बौद्ध की संख्या बढ़ रही है। 1956 में बौद्ध धर्मांतरण के बाद 2007 में लगभग एक लाख दलितों ने निम्न जाति, वन वासियों ने बुद्धिज्म को ग्रहण किया था। ऐसे बहुत से दलितों के सामाजिक सांस्कृतिक संगठन हैं जो अंबेडकर वाद की राजनीति एवं विचारधारा को बढ़ावा देते हैं। बामसेफ एवं बौद्ध महासंघ जैसे संगठनों ने दलितों को हिंदू धर्म से अलग अपनी पहचान बनाने, जन जागरूकता लाने का कार्य किया हैं। ऐसे संगठन दलितों में जोश एवं आत्मविश्वास भरते हैं। साथ ही दलितों का साहित्य उन्हें उनके इतिहास से जोड़ता है एवं अपने हक, समानता के लिए संघर्ष की भावना पैदा करता है। महाराष्ट्र में दलित राजनीति भले ही टुकड़ों में बंटी हो लेकिन वहां के दलित आंदोलन ने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक रूप से दलितों को भारत के अन्य राज्यों से ज्यादा समृद्ध किया है–दलित साहित्य,दलित नुक्कड़ नाटक,दलित सिनेमा,दलित बौद्ध,डॉ अंबेडकर पर विभिन्न रिसर्च संस्थान, स्कालरों द्वारा किए गए रिसर्च, गैर सरकारी संगठनों, बौद्ध विहारों ने महाराष्ट के दलित आंदोलन को गति प्रदान करते हैं।

दलित महिला आंदोलन

आधुनिक महिला आन्दोलन की शुरूआत 18वीं शताब्दी से मानी जाती है परन्तु दलित महिला आन्दोलन की शुरूआत हम बौद्धकाल से ही मानते है। दलित महिला आन्दोलन महज 200 साल पुराना न होकर सदियों पुराना है, जिसमें सर्वप्रथम बौद्ध काल में दलित वर्ग की, थेरी सुमंगला और पूर्णिमा दासी के द्वारा लिखी गई कविताओं को, हम दलित नारीवाद की प्रथम सशक्त अभिव्यक्ति मानते

है।[65] सुंमगला उन्मुक्त स्वर में अपने द्वारा, अपने आप को पा लेने की घोषणा करते हुए यानि अपने अस्तित्व को पहचाने की एक लंबी कष्टदायक प्रक्रिया से गुजरते हुए एक उन्मुक्त और स्वतंत्र स्त्री की तरह अभिव्यक्त करती हैं। दलित स्त्रियां चौतरफा शोषण की शिकार हैं। दलित होने के कारण, स्त्री होने के कारण, और उस पर भी दलित स्त्री तथा चौथा गरीबी के कारण। चौतरफा शोषण, अन्याय, अत्याचार के बावजूद वह अनवरत काल से संघर्ष करती रहीं हैं। दलित महिला आन्दोलन और लेखन की एक लम्बी परम्परा रही है, अब साक्ष्यों का भी अभाव नही है, आज दलित महिलाएं बड़ी शिद्दत और प्रतिबद्धता से अपने अस्तित्व और अस्मिता के सवालों से जूझने के साथ उन्हें उठा ही नहीं रही बल्कि उन पर विमर्श भी चला रही है। दलित महिला आन्दोलन के अपने आदर्श रहे हैं, सावित्रीबाई फुले से लेकर रमाबाई अम्बेडकर और अन्य दलित महिला नेता। तारा बाई शिन्दे, पंडिता रमाबाई ओर सावित्रीबाई फुले जिन्होंने विपरीत सामाजिक और स्त्री विराधी परिस्थितियों में काम ही नही किया अपितु स्त्रियों के पक्ष में भी परिस्थितियां बनाने भरपूर कोशिश की। सावित्रीबाई फुले का दलित एवं गैरदलित महिलाओं के लिए विद्यालय खोलना, विधवा आश्रम चलाना अपने आप में क्रांतिकारी उपलब्धियां है। आज भारतीय महिला आन्दोलन की उच्चवर्गीय व उच्चवर्णीय अगुवा महिला नेता, दलित महिला आन्दोलन के नेता व उनके आईडियल को संम्पूर्ण नारीवादी आंदोलन का आईडियल मानने को तैयार नही है।

दलित महिला आन्दोलन की खासियत यह है कि वह अपने मुक्ति के सवाल को सामाजिक और आर्थिक प्रश्न से जोड़कर देखती है। दलित महिला आन्दोलन के लिए घरेलू हिंसा के साथ–साथ सामाजिक हिंसा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि दलित महिलाएं हर दिन गांवों–शहरों में, फैक्ट्रियों– खेतों में दलित स्त्री होने के कारण अपमान शोषण और अत्याचार की शिकार होती है। दुख की बात है कि इस सामाजिक हिंसा के सवाल को महिला आन्दोलन उस प्रतिबद्धता के साथ नही उठाता जितना कि घरेलू हिंसा को। दांडी यात्रा में गांधी जी के हजारों संख्या में दलित महिलाओं ने भागीदारी निभाई। नमक सत्याग्रह में 80,000 लोग गिरफ्तार

---

[65] अनिता भारती के लेख से

किए गए जिनमें 17,000 महिलाएं थी जिनमें सर्वाधिक संख्या दलित व गरीब महिलाओं की थी। देश की आजादी के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने वालो में झलकारी बाई, उदादेवी पासी, रानी अवन्तीबाई लोधी, वीरांगना महावीरी देवी, सिनगी दई, कइली दई, फूलों, झानों, रानी गूडियालों देवमनी उर्फ बंधनी, राजस्थान की वीर बाला काली बाई आदि अनेक नाम मिल जायेगे। जिन्होने अकेले कई मोर्चों पर संघर्ष किया। पर आज भी आजादी की लड़ाई में उन्ही शिक्षित सभ्य और उंच घरानों की महिलाओँ के नाम ही गिनाएं जाते है जो समाज, घर व अपने परिवार की अच्छी सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक हैसियत होने के कारण जुड़ी थी। दूसरी ओर इन हैसियतों से वंचित दलित वंचित गरीब समुदाय की इन औरतों को याद भी नही किया जाता है। यह पूर्वाग्रह साहित्य से लेकर समाज में गहरे तक व्याप्त है।

डॉ अम्बेडकर का समय दलित महिलाओ की अपनी व समाज की स्वतन्त्रता समानता को लेकर की गई सक्रिय भागीदारी का स्वर्ण काल है। अम्बेडकर कालीन 30–40 साल चले दलित आन्दोलन में इस आन्दोलन में लाखो–लाख शिक्षित–अशिक्षित घरेलू गरीब मजदूर किसान व दलित शोषित महिलाएं जुड़ी। केवल वे दलित आन्दोलन में ही नही जुड़ी अपितु उन्होंने अलग से दलित महिला संगठनों की स्थापना भी की। 25 दिसम्बर 1927 को चावदार तालाब के महाड़ सत्याग्रह में ढाई हजार दलित औरतो ने भाग लिया। 12 अक्टूबर 1929 को डॉ अम्बेडकर और दलित महिला नेता तानुबाई के नेतृत्व में हजारों महिलाओं ने पूना के पार्वतीबाई के मन्दिर में प्रवेश करते हुए लाठी– डंडे खाये। नासिक के कालाराम मन्दिर प्रवेश के दौरान एक पुजारी द्वारा दलित महिलाओं को धक्का मारने पर एक दलित महिला ने पुजारी के मुंह पर सनसनाता थप्पड़ जड़ दिया था। इस आन्दोलन को सम्बोधित करते हुए राधाबाई बडाले नामक सत्याग्रही ने अपने ओजस्वी भाषण में कहा– हमें मंदिरों मे जाने का, पनघट से पानी पीने का, भरने का अधिकर मिलना चाहिए यह हमारा सामाजिक हक है। शासन करने का राजनैतिक अधिकार भी हमें मिलना चाहिए। हम कठोर सजा की चिन्ता नही करतीं । हम देश भर की जेलों को भर देंगे। हम लाठी गोली खाएंगे। हमें हमारा हक चाहिए। योद्धा कभी

अपनी जान की चिन्ता नही करता। गुलामी के साथ मिल कर जी गई जिन्दगी से मौत बेहतर है। हम जान दे देगें मगर अधिकर छीन कर रहेगें।

दलित महिला आन्दोलन अस्पृश्यता, लिंगभेद, असमानता के खिलाफ लड़ता हुआ दलित महिलाओं को स्कूल, कालेज. हॉस्टल खोलने के साथ पत्र–पत्रिकाओं में लिखने की प्रेरणा देता रहा। इस आन्दोलन में कौशल्या बैसन्त्री, बेबीताई काम्बले, सुलोचना डोगरे, सीताबाई गायकवाड़, तानुबाई काबले, राधाबाई बरालै और भी अनेक दलित नेत्रियां प्रमुख थी। जिनके नामों की सूची बहुत लम्बी है। यहां यह सवाल भी महत्वपूर्ण है कि अम्बेडकर के समय चला दलित महिला आन्दोलन 1956 के बाद एकदम रूका क्यों नजर आने लगा? वह वास्तव में रूका था या दलित आन्दोलन की कमी थी जो वह दलित महिलाओं के आन्दोलन व उनके मुद्दों को उचित जगह नही दे पाया। डॉ अंबेडकर के साथ आंदोलन में इतनी बडी सख्या मे जुड़ी दलित महिलाएं उनके परिनिर्वाण के बाद एकाएक घरों में क्यों लौट गई? इसमें कोई शक नही की दलित आंदोलन भी अन्य आन्दोलनों की तरह दलित स्त्री को बराबरी की खैरलाजी में दलित स्त्रियों सुरेखा और प्रियंका की बलात्कार के बाद की गई निर्मम हत्या को प्रशासन, पुलिस, मीडिया व स्त्री संगठनों ने जिस हल्के स्तर से लिया वह अत्यंत चिंतनीय ही नही निंदनीय भी है। दलित समाज के सामने खड़ी चुनौती भूमंडलीकरण, आरक्षण, साम्प्रदायिकता, निजीकरण दलित स्त्री के लिए भी चुनौती है। निजीकरण और भूंमडलीकरण के बढ़ते प्रभाव से खत्म होते रोजगार के अवसर या फिर आरक्षण इन सबसे वह ही सबसे अधिक दलित महिलाएं ही प्रभावित होती है। यह एक गम्भीर चुनौती है।

दलित साहित्यकार दलित नारीवाद को बार–बार अपनी जातीय गुलामी का कारण मान रहे है। दलित स्त्रियों के प्रति मीडिया से लेकर शासन–प्रशासन, पुलिस–न्यायप्रकिया अपनी पूर्वाग्रह ग्रसित भूमिका निभा रहे है। इस चौतरफा शोषण के खिलाफ लड़ने के साथ–साथ उसे अन्य महिला समूहों व विचारधाराओं के अलावा अपने समाज परिवार की मुक्ति के साथ खुद की मुक्ति और बराबरी की भी लड़ाई लड़नी है। इन सबके बीच वह कैसे इन सब मुद्दों पर अपना तालमेल बैठाएगी यह भी चिंतन का विषय है। आज दलित महिलाओं से जुड़े मुद्दे चाहे वह

महिला रिर्जेवेशन का मुद्दा हो या कोई अन्य स्त्री मुद्दा इनके नाम पर उसे अन्य महिला संगठनों द्वारा उसे बार–बार कहा जाता है कि जाति के नाम पर महिला आन्दोलन को दो हिस्सों में मत बांटों, लेकिन अनेकों उदाहरण हैं जहां यह देखा गया है कि दलित महिलाओं का सर्वाधिक शोषण सवर्ण महिलाओं द्वारा ही किया जाता है या उनपर अत्याचार करने में मुख्य भूमिका होती है। जैसे –खैरलांजी हत्याकांड हो, पायल तडवी की हत्या हो। दलित महिलाओं में शिक्षा का प्रतिशत भी कम है, उच्च शिक्षा में तो मात्र 3 प्रतिशत है।

दलित साहित्य

साहित्य समाज का प्रतिबिंब होने के साथ–साथ समाज को दिशा देने वाला मशाल भी होता है। साहित्य समाज के अतीत वर्तमान एवं भविष्य को व्यक्त करने वाला सशक्त माध्यम है । ज्योतिबा फूले, डॉ अंबेडकर के एवं अंग्रेज सरकार द्वारा किए गए प्रयासों से दलितों में थोड़े ही स्तर पर लेकिन शिक्षा का प्रचार हो रहा था। दलित साहित्य की अवधारणा, दलित पैंथर आंदोलन के समय एवं उसके बाद सही स्वरूप में उभर कर आई। 1970 के दशक में दलितों में स्नातक प्रशिक्षित युवा अपने विचारों, कविताओं, आत्मकथा एवं घटनाओं को व्यक्त करने लगे थे। दलित पैंथर के युवाओं ने आम जनता तक अपनी भावनाओं, पीड़ाओं, दुख–दर्द को लेख, कविताओं, निबंधों, जीवनियों, व्यंगयों, कथाओं आदि के माध्यम से पहुंचाया। दलित साहित्य का आरंभ निःसंदेह महाराष्ट्र एवं मराठी भाषा में हुआ यहीं से दलित आंदोलन का स्वरूप स्पष्ट रूप में सामने आया लेकिन वर्तमान समय में दलित साहित्य पूरे भारत में है एवं लगभग सभी स्थानीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। दलित साहित्य दलित समाज के लोगों की यथा स्थिति और वर्णवाद की विरोधी आवाज है। जिस समाज को शिक्षा नहीं ग्रहण करने दिया गया उसका साहित्य ही नहीं बन पाया। जब दलित समाज शिक्षित हुआ तब भावनाओं को अभिव्यक्त करने का उन्हें माध्यम मिला। अन्नाभाऊ साठे, शंकरराव खरात, नारायण सुर्वे आदि के प्रयत्नों से दलित समाज में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आंदोलनों ने जन्म लिया। दलित महिला साहित्यकारों में कौशल्या वैसंतरी, रूथ मनोरमा, अनिता भारती एवं कौशल पंवार का नाम उल्लेखनीय है। दलित साहित्य शब्द का प्रयोग डॉ अंबेडकर के दलित साहित्य

सेवक संघ में प्रयोग किया गया था। महाराष्ट्र में पोस्ट पैंथर दलित राजनीति में सामाजिक सांस्कृतिक रूप से दलितों को संतुष्ट करना तथा चुनावी राजनीति में सक्रिय भागीदारी साथ साथ होती रही। इस अवधि में बसपा एवं मानवी हक्क अभियान अपने कार्य कर रहे थे। बसपा दलितों को जोड़ने एवं गैर दलित जातियों को भी दलित मूवमेंट से जोड़ने का प्रयास कर रही थी।

महाराष्ट्र में कांशीराम

कांशीराम का दलित मूवमेंट से जुड़ना एवं डॉ अंबेडकर के विचारों को जानना, ये सारी घटनाएं महाराष्ट्र की धरती पर ही आरंभ हुई थी। कांशीराम बहुजन अवधारणा के अंतर्गत समाज के सभी तबके को जो कि दलित श्रेणी में है उनको शामिल किया। जबकि महाराष्ट्र में दलित एवं दलित राजनीति पर मुख्य रूप से महार ही हावी थे। एमएचए भी दलितों में जो सबसे निम्न थे उनका प्रतिनिधित्व कर रही थी, मांग या मातंगों का। एमएचए का दलित आंदोलन जिनमें देश एवं विदेश के एनजीओ थे जिनका कार्य दलित गरीब लोगों के हक में आवाज उठाना, उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी जैसे आधारभूत जरूरतों को पूरा करना था। दलितों के हक की लड़ाई लड़ना। इनसे जुड़े मुद्दों को अंतरराष्ट्रीय पटल पर लाना। यह सभी महाराष्ट्र में दलित आंदोलन का एक हिस्सा बने। कांशीराम का आंदोलन एक अलग राजनीति को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करता है जिसने दलित के जगह अनुसूचित जातियां, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़ी जातियों, अन्य पिछड़ी जातियों और धार्मिक अल्पसंख्यकों को सम्मिलित करके बहुजन का नाम दिया। जो व्यवहारिक रूप से केवल अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व करती थी। कांशीराम पंजाब प्रांत के रोपड़ जिले के खासपुर गांव के थे। कांशीराम का परिवार रामदासिया सिख पंथ से जुड़े थे। उन्होने गांव से ही उच्च शिक्षा ग्रहण कर, ग्रेजुएशन तक की पढाई किया। अंबेडकर द्वारा संविधान निर्माण एवं सामाजिक शैक्षणिक प्रगति के लिए जो आरक्षण की व्यवस्था संविधान में थी। उसी प्रावधान के कारण दलित वर्ग सरकारी नौकरियों में आने लगे। कांशीराम की नौकरी 1958 ईस्वी में महाराष्ट्र के पुणे में सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ मिलिट्री एक्सप्लोसिव में हुआ। यह केंद्र सरकार के अधीन था। बुद्ध जयंती और अंबेडकर जयंती पर छुट्टी दिलाने

जिसे रदद कर दिया गया था के लिए रक्षा मंत्रालय तक मुकदमा किए और सफल भी हुए। इसके बाद भी उन्होंने अंबेडकर के विचारों को पढ़ा एवं जाना। अपने सहकर्मी डीके खापर्डेजी के द्वारा दी हुई डॉ अंबेडकर द्वारा लिखी किताब **'एनीहिलेशन ऑफ कास्ट'** को उन्होंने एक ही रात में तीन बार पढ़ा।जिसने उनके अंर्तमन को झकझोर कर रख दिया। टकराव और संघर्ष की इस पहली घटना ने कांशीराम पर दों तरह से असर डाले–पहला, अदालती जीत में उनमें अन्याय के खिलाफ लड़ने के संवैधानिक तरीकों के पक्ष में विश्वास को जगा दिया। आगे चलकर कांशीराम की सभी राजनीतिक नीतियां इसी विश्वास के इर्द–गिर्द बनी। दूसरी इस घटना ने कांशीराम को राजनीति में धकेल दिया। शुरुआती दौर में वे आरपीआई से भी जुड़े लेकिन उनका मोहभंग हो गया। कांशीराम ने देखा कि हजारों वर्षों से जो परंपरा यह सिस्टम है उसमें लाभ केवल कुछ जाति तक ही सीमित है। ज्यादा आबादी इन संसाधनों के लाभ उठाने से वंचित है। 15 प्रतिशत विशिष्ट जातियों के लोगों ने इस देश के शासन और प्रशासन पर अपना आधिपत्य बना रखा है 85 प्रतिशत बाकी आबादी जो बहुसंख्यक है गुलामी और लाचारी का जीवन जीने के लिए विवश है। फूले, अंबेडकर के संघर्षों का भी कोई क्रांतिकारी परिणाम नहीं निकला। पूना पैक्ट के अंतिम परिणति के भुक्तभोगी स्वयं डॉ अंबेडकर भी रहे। इस व्यवस्था में भारतीय प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र के अंतर्गत ऐसे लोगों को चुनाव में उतार दिया जो दलित तो थे लेकिन दलितों के उत्थान से ज्यादा उनका व्यक्तिगत लाभ ज्यादा महत्वपूर्ण बन गया। कांशी राम ने ऐसे दलित नेताओं को चमचा का उपनाम दिया। दलित आंदोलन को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने, डॉ अंबेडकर के विचारों को जन–जन तक पहुंचाने के लिए, दलितों को व्यापक विस्तृत आधार प्रदान करने के लिए कांशीराम ने **बहुजन क्रांति** का नाम दिया। कांशीराम ने सरकारी नौकरी पेशा वर्ग को डॉ अंबेडकर के आह्वान पर **'पे बैक टू सोसायटी'** के लिए एक संगठन बनाया। ऑल इंडिया शेड्यूल कास्ट शेड्यूल ट्राइब ओबीसी एंड माइनॉरिटी एंप्लाइस एसोसिएशन का गठन 1971 में किया। कांशी राम ने बहुजनों के सशक्तिकरण के लिए सरकारी नौकरी, अपना परिवार घर–बार सब त्याग दिया। आजीवन अविवाहित रहकर बहुजन संघर्ष एवं बहुजनों को सत्ता शीर्ष तक पहुंचाने का संकल्प लिया। आरपीआई के नेताओं के

व्यवहार एवं उनके चारीत्रिक पतन से कांशीराम का आरपीआई से मोहभंग हो गया था। 6 दिसंबर 1978 बामसेफ में अपने संगठन को रूपांतरित करना शुरू कर दिया। यह सरकारी कर्मचारियों का संगठन था कांशी राम ने इसे पूरी तरह अनौपचारिक, अपंजीकृत, गैर धार्मिक, गैर आंदोलनात्मक और गैर राजनीतिक संगठन के रूप में बनाया। आंदोलन और राजनीतिक रूप से बामसेफ के सदस्य कार्य नहीं कर सकते थे क्योंकि वह सभी सरकारी कर्मचारी थे उनकी अपनी सीमाएं थी। अपने को या संगठन को राजनीतिक रूप से सक्रिय करने के लिए 6 दिसंबर 1981 को डीएस फोर दलित शोषित समाज संघर्ष समिति नामक संगठन बनाया। डी एस फोर का प्रचार प्रसार गांवों में होने लगा। गरीब, जमीन से जुड़े हुए लोगों, दलित वर्गों तक जन जागरूकता का कार्य आरंभ किया गया। आम जनता इस संगठन से जुड़ने लगे। बहुजन आबादी के राजनीतिक पार्टी के रूप में 14 अप्रैल 1984 बहुजन समाज पार्टी का गठन किया गया। यह भारत के राष्ट्रीय पार्टियों में से एक है। कांशीराम अपनी पार्टी बसपा को परिवर्तनवादी तथा अंबेडकरवादी अर्थात मानववादी जो स्वतंत्रता समानता और बंधुत्व की विचारधारा पर आधारित पार्टी मानते थे। कांशीराम के शब्दों में, बसपा अंबेडकरवादी पार्टी है, यह ब्राह्मणवाद विरोधी दल है।

कांशीराम ने अपने सामाजिक आंदोलन का आरंभ महाराष्ट्र से ही किया। बामसेफ, डीएसफोर एवं बसपा का प्रचार उन्होंने उत्तर भारतीय राज्यों के साथ महाराष्ट्र में भी किया। महाराष्ट्र की भूमि पर दलित आंदोलन एवं दलित राजनीति दोनों अपनी उपस्थिति दर्ज किए हुए थे। सत्ता में ना होते हुए भी दलित पार्टियां व दलित नेता सत्ताधारी पार्टियों एवं चुनाव को प्रभावित करते थे। क्योंकि उनके पास वोट बैंक था। इन परिस्थितियों में भी बसपा का महाराष्ट्र में आगमन चुनौतीपूर्ण था। कांशीराम का गैर महाराष्ट्रीयन एवं गैर महार होते हुए भी महाराष्ट्र के दलित राजनीति में सक्रिय होने का दुःसाहस करना उनके राजनीतिक जुझारूपन को प्रकट करता है। बसपा कैसे अन्य दलित पार्टियों से अलग है कांशीराम इस को सिद्ध करने के लिए जाति को दुधारी तलवार बताया, जिसका इस्तेमाल दोनों तरफ से किया जा सकता है। उनका कहना था कि मैं भी जाति का उपयोग अपने लोगों के

लाभ के साथ–साथ, ब्राह्मण जाति को उनके जातीयता के लाभ से वंचित करने के लिए करूंगा। भारत की सामाजिक संरचना असमानता पर आधारित है। जाति व्यवस्था की उपज है। बसपा के दलित आंदोलन का काम इस असमानता, जातिवाद को समाप्त कर एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण करना जो समानता और मानवीय मूल्यों पर आधारित हो। कांशीराम के इन कथनों में द्वंद स्पष्ट तौर पर झलकता है। शायद यही कांशीराम के धुआंधार राजनीति का रणनीति भी था। पार्टी को अंबेडकरवादी विचारधारा वाली पार्टी बताना। डॉ अंबेडकर के एनीहिलेशन ऑफ कास्ट से विपरीत जाति को मजबूत करके जाति एवं जनसंख्या के नाम पर किसी भी तरह सत्ता प्राप्त करना। दलितों की पार्टी का निर्माण ही इसके लिए किया जाता है कि यह विचारधारा पर आधारित पार्टी है जो समाज में समानता, संसाधनों का न्याय पूर्ण वितरण चाहता है और दूसरी तरफ राजनीतिक सत्ता में बने रहने के लिए किसी भी तरीके से बस राजनीतिक शक्ति के रूप में अपने को बनाए रखना ही है। महाराष्ट्र दलित राजनीति में कमोवेश हर दलित पार्टी का यही एजेंडा रहा। बसपा ने पहले एक सामाजिक आंदोलन के रूप में दलित समाज के हर तबके को अपने विचार से प्रभावित किया।

महाराष्ट्र में बामसेफ का कार्य आरपीआई एवं दलित पैंथर के बाद के लोगों को जोड़ने का कार्य किया। यह समाज के एससी, एसटी, ओबीसी, माइनॉरिटीज सबको अपने अंदर समाहित करने का प्रयास था। महाराष्ट्र के विभिन्न शहरों में सभाएं, सम्मेलन करना। पुस्तकें, पंफलेट, बुकलेटस् वितरित करके अंबेडकर के विचारों को फैलाना था। मराठवाड़ा में कैडर कैम्प्स और साप्ताहिक मैगजीन स्टॉल दलित युवाओं को प्रेरित करने के लिए लगते थे। केवल विचारधारा के दम पर लोगों को एकत्रित किया जाता था। नागपुर से **'बहुजन नायक'** साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया गया। 1980 में **बहुजन संघटक** (हिंदी) तथा **बहुजन नायक** (मराठी) में दो साप्ताहिक पत्रिकाओं का प्रकाशन होता था। जिनके द्वारा दलित विचारधारा एवं दलित संस्कृति से जुड़ी लोगों की चर्चा एवं उनका निष्कर्ष छपता था। यह संवाद लोगों से जुड़ने का अच्छा जरिया था।

महाराष्ट्र में दलित सांस्कृतिक आंदोलन

डॉ अंबेडकर की छवि भारतीय समाज में एक सामाजिक राजनीतिक सुधारक में स्थापित है। लेकिन दलितों के लिए वे एक मसीहा हैं। जिन्हें लोग बाबासाहेब कहते हैं। वर्तमान समय में उनकी मुर्ति देश के खासकर उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र के हर चौराहे पर दिखाइ देते हैं। डॉ अंबेडकर एवं बुद्ध की मुर्तियां दलितों के लिए प्रतीक स्वरूप है। जो हिन्दू संस्कृति के समानांतर प्रतिसंस्कृति के रूप में है। महाराष्ट्र में अंबेडकर जयंती , बुद्ध जयंती के साथ दलितों ने अपनी संस्कृति का विकास किया। डॉ अंबेडकर को भीम के नाम से जाना जाता है, इस नाम का उपयोग भीम जन्मभूमि, जय भीम, भीम स्तंभ, भीम गीत, भीम ध्वज, भीम आर्मी, भीम ऐप, भीम गर्जना आदि में किया जाने लगा है। डॉ अंबेडकर के नाम से कॉलेज, यूनिवर्सिटीज, पुरस्कार, भवनों आदि का नामाकरण किया जाता है।

डॉ अंबेडकर के राजनीतिक दर्शन ने बड़ी संख्या में राजनीतिक दलों, प्रकाशनों, और श्रमिक संघों को जन्म दिया है। जो पूरे भारत में विशेष रूप से महाराष्ट्र में सक्रिय है। उन्होने बौद्ध दर्शन को भारत में लोकप्रिय बनाया। महाराष्ट्र सरकार द्वारा 14 अप्रैल उनके जन्मदिवस को ज्ञान दिवस के रूप में मनाया जाता है। महाराष्ट्र सरकार द्वारा 7 नवंबर अंबेडकर के विधालय प्रवेश दिवस को विधार्थी दिवस घोषित किया गया है। जय भीम यह अंबेडकरवादियों द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला एक अभिवादन वाक्यांश बन गया है। नीला रंग दलितों का रंग बन गया है। डॉ अंबेडकर को नीला रंग प्रिय था क्योंकि यह समानता का प्रतीक था। संयुक्त राष्ट्र संघ 2016 से अंबेडकर जयंती मना रहा है। उनके नाम से डाक टिकट जारी किया गया है। महाराष्ट्र में डॉ अंबेडकर के जीवन पर आधारित कई फिल्में, नाटक, किताबें, गानें, टेलीविजन धारावाहिक और अन्य कार्य है। डॉ अंबेडकर और बुद्ध हर घर में पाए जाते है।

दलित इंडियन चैंम्बर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री (डिक्की)

डिक्की का गठन 2005 में पुणे में दलित नव उद्योगपति मिलिंद कांबले द्वारा किया गया।[66] डिक्की का टैगलाइन जॉब देने वाला बने, न की जॉब लेने वाला। भारत में उदारीकरण के बाद प्राइवेट सेक्टर की कंपनियों में बहुत उछाल आया। जिससे उनके सेवा सेक्टर में भी नौकरियों की भरमार हो गई। दलितों ने प्राइवेट सेक्टर के नौकरियों में आरक्षण की मांग को उठाया। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र जैसे राज्यों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग, जो उद्योग स्थापित करने में रुचि रखते थे उन्हें सरकार पूंजी उपलब्ध कराने लगी। डिक्की दलितों को अपनी उधमिता स्थापित करने वाला ऐसा मंच है। इसकी सराहना सरकार एवं उद्योगपतियों ने भी की। डिक्की दलित मध्यम वर्ग के लिए एक पावरफुल पहचान बन गई है। डिक्की दलित आत्म सम्मान एवं दलितों के अंदर स्वयं की उधमिता विकसित करने का माध्यम बन गया है। डिक्की के 18 राज्यों में एवं 7 अंतरराष्ट्रीय चैप्टर्स हैं। इसके सदस्यों की संख्या 5000 तक हो गई है। डिक्की के संस्थापक एवं इसके सदस्य इसे एक नए आंदोलन के रूप में प्रोजेक्ट करते हैं। जो जाति के साथ पूंजीवाद से भी लड़ रहा है।[67] डिक्की देश में उदितमान दलित पूंजीवाद की अग्रणी संस्थान है और जिसे तत्कालीन योजना आयोग एवं वर्तमान सरकार से भी पूरा समर्थन मिला हुआ है। जिसमें मिलिंद कांबले, अशोक खाड़े एवं अन्य प्रमुख दलित उद्यमियों का योगदान है। दलित पूंजी की अवधारणा रिचर्ड निक्सन की **'अश्वेत पूंजी'** पर आधारित है।[68]

डिक्की का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. दलित युवाओं को उधम एवं व्यापार के क्षेत्र में आकर अपनी प्रतिभा को वैश्विक बनाना है।
2. दलितों में बिजनेस नेतृत्व का विकास करना।

---

[66] Teltumbde Aanand, Dalits Past, Present and Future, Page-149
[67] Teltumbde Aanand, Dalits , Page-150
[68] गताडे सुभाष, बीसवीं सदी में डॉ0 अम्बेडकर के सवाल, पेज–86,

3. देश की अर्थव्यवस्था में अपना सहयोग देना नौकरी देने वाला बनाना, न की नौकरी लेने वाला।

4. भारत के सभी दलित उद्यमियों को डिक्की के अंतर्गत लाना।

डॉ अंबेडकर ब्राह्मणवाद एवं पूंजीवाद को दलितों का सबसे बड़ा शत्रु मानते थे।[69] 1991 में उदारीकरण के बाद दलितों में से एक बहुत छोटा समूह पूंजीवाद को आवश्यकता मानने लगा एवं दलितों को व्यापार में उद्यमिता में सक्रिय रखने के लिए डिक्की की स्थापना की। डिक्की ने भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुत न्यून लेकिन अपनी उपस्थिति अवश्य दर्ज की है। यू.पी.ए. एवं एन.डी.ए. सरकारों ने डिक्की को पहचान दी एवं एक आर्थिक व्यापारिक संगठन के रूप में उनके कार्यों को सराहा भी है। वर्तमान सरकार की विभिन्न योजनाओं, मुद्रा, स्टार्टअप, भीम एप इत्यादि में डिक्की भी अपनी सक्रियता दिखा रहा है। डिक्की के चेयरमैन मिलिंद कांबले ने सरकार के स्टैंडअप स्कीम को माओवाद प्रभावित इलाकों में भी शुरू करने की अपनी इच्छा प्रकट की है एवं उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए।[70] महाराष्ट्र में 12,000 युवा इस योजना पर प्रशिक्षित हो रहे हैं। मिलिंद कांबले बस्तर से गढ़चिरौली तक स्टैंडअप योजना का विस्तार करना चाहते हैं। जिसके लिए डिक्की ने स्थानीय प्रशासन से समन्वयक का कार्य भी प्रारंभ कर दिया है। कांबले का कहना है कि राष्ट्रीय साक्षरता दर 73 प्रतिशत है जिसमें अनुसूचित जाति एवं जनजाति का साक्षरता दर 66 एवं 59 प्रतिशत है। सामाजिक, राजनीतिक बुराई को खत्म करने का एक ही तरीका है। आर्थिक सशक्तिकरण स्टैंडअप योजना के तहत 45,000 SC/ST नामांकन ले चुके हैं। जिसमें से 20,000 युवक अभी तक अपना प्रोजेक्ट आरंभ कर बैंकों से लोन भी ले लिए हैं। समय की मांग को देखते हुए डिक्की अच्छा कार्य कर रही है। दलित उधमिता को मान्यता प्रदान करवा रही है। यह अच्छी शुरुआत है, इससे दलितों के आर्थिक सुदृढ़ीकरण का दावा मजबूत होगा। डिक्की से जुड़े बिजनेसमैन मिलिंद कांबले कल्पना, सरोज, रवि कुमार, राजेश राय को पद्मश्री पुरस्कार से भी नवाजा जा चुका है। आनंद तेलतुम्बडे के

---

[69] वही, पेज–61

[70] इंडियन एक्सप्रेस 7 जून 2019

अनुसार दलितों की मूल समस्या का निवारण केवल कुछ दलितों के पूंजीपति बन जाने से संभव नहीं है। महाराष्ट्र के महार के कुछ व्यवसाय प्रारंभ से उनके साथ जुड़े हुए हैं, जैसे हैंडलूम्स, सैंडल्स, कपड़े, किराना की दुकान, सब्जियों के थोक विक्रेता एवं अन्य प्रकार के स्थानीय व्यवसाय, अन्य दलित जातियां माला, परैया चमार थे भी महारो जैसे छोटे–छोटे व्यापारी का काम करते हैं। एक छोटे व्यापारी एवं आकर के रूप में दलित अभी भी छोटे शहरों में अपना व्यवसाय करते हैं। सुरक्षित सरकारी नौकरी दलितों की पहली प्राथमिकता होती है। दलितों के मन में सेल्फ एंप्लॉयड बिजनेसमैन बनने का असुरक्षा भाव है। भारतीय जातिवादी समाज में अन्य समुदायों एवं जातियों से संघर्ष कर बिजनेसमैन के रूप में स्थापित करना दुरूह कार्य है। महाराष्ट्र के जाटवों एवं अन्य दलित जातियों ने इसका आरंभ कर दिया है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलित आंदोलन

आज महाराष्ट्र दलित आंदोलन के सारे प्रमुख संगठन कई गुटों में विभक्त हैं। यहां तक कि कांग्रेस, बीजेपी, एनसीपी, शिवसेना जैसी पार्टियों के भी दलित नेता एवं दलित गुट हैं। अन्य जो भी दलित संगठन है जो चुनाव के समय चंदा लेने एवं मुख्य राजनीतिक पार्टियों से दलित वोटों को उनके पक्ष में करने के लिए टैक्स लेने के लिए सक्रिय हो जाते हैं। ये सभी संगठन अंबेडकर वाद की कसमें खाते हैं, और अपने को अंबेडकरवादी भी कहते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि अंबेडकर वाद एवं दलित आंदोलन को ऐसे संगठनों ने ही कुछ मायने में प्रासंगिक भी बनाए रखा है और यह भी सत्य है कि बिना अंबेडकर से जुड़े इन गुटों, पार्टियों का अस्तित्व भी नहीं है। महाराष्ट्र के पड़ोसी राज्यों में दलित संगठनों का प्रभाव भी स्पष्ट देखने को मिलता है। गुजरात में शक्तिशाली दलित पैंथर आंदोलन संचालित हुआ यह धीरे–धीरे शांत भी हो गया।[71] कर्नाटक में दलित संघर्ष समिति[72] काफी समय तक सक्रिय रही। प्रेरणादायी संघर्ष भी संचालित किए परंतु संगठन की आंतरिक गुटबाजी जैसा महाराष्ट्र की दलित संगठनों के साथ हुआ,

---

[71] तेलतुम्बडे आनंद, अंबेडकर और दलित आंदोलन, पेज–119

[72] वही

बाहरी प्रलोभन के कारण समाप्त हो गया। इसलिए कांशी राम ने यह कहा था कि हमारे लोग बिकाऊ होते हैं।[73] इसके पीछे का गहरा अर्थ और मजबूरियां हैं। महाराष्ट्र में दलितों की जनसंख्या का प्रतिशत 10–11 प्रतिशत है। पंजाब, उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों से कम होते हुए भी यहां का दलित सांस्कृतिक व सामाजिक जन जागरूकता सबसे ज्यादा है। यहां के दलित संगठनों में हिंदू वाद के विरुद्ध अपनी दलित बुद्धिस्ट का प्रचार साथ ही डॉ अंबेडकर के विचारों का प्रभाव ज्यादा है। सांस्कृतिक रूप से डॉ अंबेडकर के विचार बहुत मजबूत है। डॉ अंबेडकर को पढ़ने वाले उनके विचारों को जानने वालों की संख्या ज्यादा है। दलितों की सांस्कृतिक जड़े बहुत मजबूत है।

दलितों का सांस्कृतिक राजनीतिक दावा एवं साथ ही दलित राजनीति में राजनीतिक प्रतीकीकरण, स्मारकीय सुदृढ़ीकरण, हिंदुत्व के विरुद्ध आलोचनात्मक विरोधी रवैया, दलितों पर हिंसा का मुख्य कारण है। जिसे एलिनोर जेलियट एंगर दक्षिणपंथीय प्रकोप का नाम देती हैं। जैसेः. खैरलांजी हिंसा अभी वर्तमान में भीमा कोरेगांव हिंसा। दलित केवल हिंसा का शिकार ही नहीं होते बल्कि हिंसा करते भी हैं जैसे दलित पैंथर। दलितों के विरूद्ध हिंसा एवं दलितों का अपना हक दोनों का अस्तित्व एक साथ है। जैसे–जैसे दलितों में शिक्षा का प्रतिशत बढ़ेगा, उनकी सामाजिक हैसियत आर्थिक रूप से सुदृढ़ होगी, राजनीतिक रूप से प्रभावी होंगे भले ही वोट बैंक बनकर उनका अपने अधिकारों के प्रति दावा बढ़ता जाएगा। दलितों के प्रति हिंसा होगी,केस मुकदमे होंगे, पुलिसिया दमन होगा लेकिन दलित अब पहले जैसे केवल घुटन, अपमानित और तिरस्कृत भी नहीं रहेंगे। यही डॉ अंबेडकर के विचारों की देन है। 1990 के बाद दलित आंदोलन अपनी अलग विशेषता के साथ है जिसमे मुख्य हैं – दलितों का सामाजिक सांस्कृतिक स्वरूप से लामबंदी साथ ही राजनीति के क्षेत्र में अपने को जनसंख्या के आधार पर स्थापित करना। यह डॉ अंबेडकर के विचारों का ही प्रभाव है कि दलित आंदोलन में इतने विभाजन एवं बिखराव के बाद भी केवल और केवल अंबेडकर ही हैं जो दलितों से जुड़ी संगठनों, संस्थाओं एवं स्वयं दलित को सशक्त करता है। अंबेडकरवादी होना ही उनकी

[73] वही

पहचान बन गया है। दलित शब्द को स्थापित करने के लिए पिछले साठ साल से संघर्ष किया गया। कल का पीड़ित आज का क्रांतिकारी दलित यानी क्रांति, विद्रोही, सांस्कृतिक, क्रांति का प्रतीक बन गया है। शुद्र, अस्पृश्य, डिप्रेस्ड क्लास, अनुसूचित जाति ये सभी शब्द दूसरों के द्वारा दिए हुए थे, दलित जातियों को संबोधित करने के लिए। एक दलित शब्द ही है जिसे इस संवर्ग ने अपने लिए गढा है, यह चेतना परक शब्द है। दलित शब्द से संस्थाएं हैं, शोध हुई है, साहित्य है इसलिए दलित शब्द को मिटाया नही जा सकता है।

दलित आंदोलन को निरंतर बढते रहने के लिए दलितों में शिक्षा का प्रसार करना सबसे अहम है। बिना शिक्षा के किसी भी समाज को सभ्य और सुसंस्कृत नही बनाया जा सकता। हिन्दू धर्म की आलोचना एव हिन्दू धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म को अपनाने के लिए दलितों को प्रेरित करना जैसा डॉ. अंबेडकर चाहते थे। जो पेशा वर्ण व्यवस्था द्वारा निर्धारित किया गया था उसको सदा के लिए त्याग कर सम्मानित जीवन जीना। सवर्ण राजनीति के भ्रष्ट, पाखंडी एवं सामंती व्यवस्था को उजागर करना दलित आंदोलन का उद्देश्य होना चाहिए।

अध्याय–पंचम
उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन

अध्याय–पंचम

उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन

इस अध्याय में उत्तर प्रदेश की भूत वर्तमान एवं भविष्य में दलित आंदोलन के उभार एवं घटनाक्रम का अध्ययन किया गया है। उत्तर प्रदेश भारत देश की सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य है। यहां की दलित जनसंख्या 21.9 प्रतिशत है।[1] जनसंख्या के हिसाब से दलित अपेक्षाकृत ज्यादा है जो कि किसी भी आंदोलन के लिए आवश्यक शर्त है। जब महाराष्ट्र में डॉ अम्बेडकर अपने अधिकारों के प्रति दलित समुदाय को जागरूक कर रहे थे उस समय भी यहां के दलित अपने को डॉ अम्बेडकर से जोड़ते थे उनके द्वारा प्रकाशित दैनिक पत्र पत्रिकाओं का अध्ययन किया जाता था। संत रविदास, कबीर उतर प्रदेश की धरती पर जन्म लिए। इन भक्त कवियों ने जातिप्रथा, वर्ण व्यवस्था पर आधारित सामाजिक व्यवस्था पर दोहे लिखे, लोकोक्तियॉ बनाई। सामाजिक समानता, प्रेम और सौहार्द्र की बात कही। 1920 के दौरान लगभग पूरे देश में दलित शक्तियां अपने को सुदृढ कर रही थी जैसेः–आदि धर्म पंजाब में, नामशूद्र आंदोलन बंगाल में, आदि द्रविड़ आंदोलन तमिलनाडू में आदि हिन्दू आंदोलन उत्तर प्रदेश के कानपुर, आगरा के जिलो में संगठित हो रहा था।[2] डॉ अम्बेडकर महाराष्ट्र में राजनीतिक रूप से दलितों की अलग पहचान बना रहे थे। गोलमेज सम्मेलन एवं पूना पैक्ट के बाद डॉ अम्बेडकर भारत में दलितों के एक मात्र शीर्ष प्रतिनिधि के रूप में मान्य हो गए थे। जिसका प्रभाव उत्तर प्रदेश के तत्कालीन दलित समाज पर भी प्रभाव पड़ा। कांशीराम के अभ्युदय के बाद उत्तर प्रदेश के दलित वास्तविक रूप से सत्ता में आ गए। जो डॉ अम्बेडकर का उद्देश्य था दलितों को राजनितिक सत्ता प्राप्त करना। इस अध्याय में इस विषय पर विस्तार से अध्ययन किया गया है।

भारत में दलित आंदोलन का आरंभ एक सुधारवादी मूवमेंट के रूप में हुआ। दलित आंदोलन कोई संगठित आंदोलन नही था पर प्रत्येक राज्य में इसका स्वरूप

---

[1] जनगणना 2011

[2] Narayan Badri , Kanshiram, page-120

अलग था। यह विभिन्न प्रयासों का एक स्वरूप था जिसमें संतो के व्यक्तिगत प्रयास, समाज सुधारकों द्वारा किए गए कार्य, उनके विचार लेखन, लोक संगीत, संस्कृति और एक दैवीय शक्ति में विश्वास का परिणाम है। दलित आंदोलन स्थापित सामाजिक व्यवस्था में बदलाव का परिणाम है। यह समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति विद्रोह था, निम्न जाति के लोगों को अपने मनुष्य होने के एहसास को बलवती करना था। आखिर हमारे साथ ही पशु से भी नीच दुर्व्यवहार क्यों? दलित आंदोलन इसी सामाजिक व्यवस्था के प्रति सामाजिक सुधारवादी प्रयास था। दलित आंदोलन संगठित सत्ता तंत्र या हिन्दू व्यवस्था द्वारा जो शोषण और अन्याय गैर बराबरी समाज में व्याप्त था उसके खिलाफ संगठित एवं स्वतःस्फूर्त सामूहिक संघर्ष था। ब्रिटीश शासन के पहले भारतीय समाज में पुरोहितों का बोलबाला था। अंधविश्वास, आडंबर, पांखड कर्म कांड द्वारा समाज संचालित होता था। किसी भी तरह की वैज्ञानिकता, तार्किकता, बौद्धिकता का घोर अभाव था। पूरा समाज कूप मंडूक में डूबा हुआ था। अंग्रेजी शासन के आने के बाद पाश्चात्य शिक्षा, ज्ञान विज्ञान के एवं अंग्रेजी शिक्षा भारतीयों के संपर्क में आई, तब उन्हें विश्व में हो रहे बदलाव एंव विज्ञान का ज्ञान हुआ। तत्कालीन ब्रिटीश शासन में दलितों की कुछ जातियां सेना में भर्ती होती थीं। जिसके कारण वे शिक्षा के संपर्क में आए और अपनी वास्तविक स्थिति के विरूद्ध आवाज उठाना प्रारम्भ किए। जो प्रथा उन्हें गुलाम बनाए हुआ था उसके विरूद्ध संगठित होने लगे।

दलित आंदोलन सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन चाहता है। उत्तर प्रदेश का दलित आंदोलन सामाजिक व्यवस्था में सुधार का प्रतिफल है। संत रविदास, कबीर नें समाज सुधार की बात को व्यक्त किया। उनके सीमित प्रयास केवल आध्यात्मिक सुख एवं भगवान तक पहुंच ही रह गया था। क्योंकि उस समय अस्पृश्यों के लिए मंदिर प्रवेश, पूजापाठ वर्जित था। संत कवि सामान्य जन मानस के मन में ब्राहमणवाद एवं सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जन विद्रोह की भावना नही पैदा कर पाए। आदि हिन्दू धर्म के अंतर्गत जब रविदास आंदोलन को बढ़ाया गया तब यह दलितों के लिए धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान बन गया। आदि हिन्दू धर्म आंदोलन बाबू मंगूराम द्वारा उत्तर प्रदेश में फैला जो अंधविश्वास, जातिवाद,

छुआछूत को समाज के वंचित दलित वर्ग से मिटाना चाहता था। इन्होने दलितों की पहचान को भारत के मूल निवासी से जोड़ा जिसे आर्यो ने भगा दिया था।

औपनिवेशिक काल में उत्तर प्रदेश में आर्य समाज समाजसुधार के कार्यों में सक्रिय था। लेकिन कुछ सीमितताओं के साथ केवल छुआछूत खत्म करने के उद्देश्य से ऊंची जातियों के हृदय परिवर्तन पर जोर देता था। दलितों के वास्तविक उद्धार से उनका ज्यादा लेना देना नहीं था। जब कुछ शिक्षित दलित आर्य समाज से जुड़ने लगे तो उनका यह भ्रम टूटा कि आर्य समाजी लोग अस्पृश्यों पर उंची जाति का नियंत्रण कायम रखना चाहते है। स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' फर्रुखाबाद जिले के निवासी थे उन्होने आर्य समाज की वास्तविकता को जानते हुए उससे अलग हो गए। अप्रैल 1924 में स्वामी अछूतानंद आर्य समाज के प्रति हिंसक प्रर्दशन करने लगे थे।[3] स्वामी अछूतानंद ने गजल लिखी संत रैदास और शंबुक पर नाटक लिखे और संत रविदास की जयंतियां मनाना शुरू किया। हिन्दी भाषी क्षेत्र में अस्पृश्य जातियों में शिक्षा और मुद्रण संस्कृति के माध्यम से जागृति लाने का काम स्वामी अछूतानंद ने किया। स्वामी अछूतानंद महाराष्ट्र के दलित आंदोलन से काफी प्रभावित थे। इस आंदोलन के नेताओं के साथ वे निरंतर पत्र व्यवहार करते थे। स्वामी अछूतानंद उत्तर भारत में छापाखाना स्थापित करने वाले और एक दैनिक अखबार निकालने वाले पहले व्यक्ति थे। 1924 उन्होने 'अछूत' नामक अखबार निकाला।[4] 1928 में 'आदि हिन्दू' नामक अखबार निकाला।[5] डॉ अम्बेडकर उत्तर भारत के दलितों के सामाजिक, शैक्षणिक और राजनीतिक उद्धार को लेकर स्वामी अछूतानंद के प्रयासों से बहुत ज्यादा प्रभावित थे। दलितों की विभिन्न जातियों ने अपनी–अपनी सभाऐं बनानी शुरू कर दी। चमार महासभा, रविदास महासभा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाटवों की महासभा लखनऊ के आस पास पासियों ने पासी महासभा, धोबी महासभा, बाल्मिकी महासभाएं बनाई।[6] ये सभाएं अपनी–अपने जातियों के लोगों को गंदे काम छोड़ने और स्वच्छ रहने शिक्षित बनने के लिए जागरूक करने लगे।

---

[3] Narayan Badri,kanshiram, Page-8
[4] नारायण बद्री, दलित विरांगनाएं एवं मुक्ति की राह, पेज–51
[5] वही पेज
[6] प्रसाद माता, भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत, पेज–55

उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का अध्ययन करने में संपूर्ण दलित आंदोलन को तीन खंण्डों में विभाजित किया जा सकता है। डॉ अम्बेडकर को केन्द्र मानकर कालखंण्डों का निम्न विभाजन किया गया है:–

1. डॉ अम्बेडकर के पूर्व का दलित आंदोलन
2. डॉ अम्बेडकर के जीवन काल के दौरान उतरप्रदेश में दलित आंदोलन एवं डॉ अम्बेडकर का प्रभाव
3. अम्बेडकरोतर काल जिसमें कांशीराम के जीवनी का अध्ययन, बीएसपी का गठन, बहुजन राजनीति एवं वर्तमान दलित आंदोलन की दशा एवं दिशा का अध्ययन है।

उत्तर प्रदेश में डॉ. अम्बेडकर से पूर्व के काल में दलित आंदोलन एवं चेतना

डॉ अम्बेडकर से पूर्व के काल में भक्ति काल में जब समाज में व्याप्त उंच नीच, असमानता एवं जातिवाद के खिलाफ संत कवियों ने भगवान से पृथ्वी पर समानता लाने की बात कही एवं अपने दोहों, पंक्तियों, रचनाओं में सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया। समाज वर्ण व्यवस्था के आधार पर विभाजित था। समाज के कुछ वर्णों एवं मनुष्यों को पूजा–पाठ, धार्मिक कार्यों एवं शिक्षा से दूर रखा जाता था। दलित चेतना या निम्न जातियों के चेतना एवं जागरूकता का प्रारम्भिक संकेत जातीय भेदभाव के विरूद्ध इसी समय से देखने को मिलता है। चौदहवीं से सोलहवीं सदी के समय खासकर पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं पंजाब के प्रांतों में इन भक्त कवियों का आम जनता या स्थानीय लोगों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। संत कबीर, रविदास और शिव नारायण इनमें प्रमुख हैं। उन्नीसवीं सदी के आरंम्भिक दौर में घासीदास आदि का प्रभाव था। इन संत कतियों ने जाति व्यवस्था आधारित असमानता के विरूद्ध आवाज उठाई एवं मानव जाति के लिए समानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की। कबीर पंथ, रविदास पंथ, शिवनारायणी पंथ, सतनामी पंथ की स्थापना इन संतों द्वारा किया गया। जिसमें निम्न जाति के लोगों की भागीदारी ज्यादा थी। क्योंकि इन वर्ग के लोगों ने अपने को भगवान से जोड़ने का यह उचित माध्यम प्राप्त हुआ था। संत कबीर, रैदास जैसे संतों ने निम्न जाति

के लोगों में उनके अस्तित्व के भाव को जगा दिया। **संत कबीर** 1398 में उत्तर भारत में अवतरित हुए, वर्ण व्यवस्था और जातिवाद के विरूद्ध उन्होने समाज को समता एवं बंधुत्व में बांधने का सदैव प्रयास किया। उन्होने कहा–'ऊंच नीच है मध्य की बानी, एक पवन, एक है पानी ,एके मटिया, एक कुम्हारा, एक सबन का सिरजनहारा' कबीर ने वर्णव्यवस्था को ढोंग और पांखड कहा।[7] अपने प्रगतिशील सिद्धांत के द्वारा कबीर मानवप्रेम, भाइचारा एकता समानता सदभाव का सामाजिक संगम प्रस्तुत करते है। जिसमें सभी मनुष्य समान है। **संत रविदास** का जन्म 1376 में वाराणसी के चर्मकार परिवार में हुआ था। ये रामानंद के शिष्य थे। इन्होनें भी समाज में जाति आधारित बुराइयों के विरूद्ध अपनी लेखनी उठाई। यह भी उल्लेखनीय है कि ज्ञान वितरित करते हुए भी जूता बनाने का कार्य निरंतर करते रहे, जिससे यह स्पष्ट होता है कि श्रम विभाजन, श्रम की गुणवत्ता और श्रम का मान सदैव सर्वोपरि माना। उन्होने कहा–रविदास जन्म से कारनै, होत न कोउ नीच, नर को नीच करि डारि है, ओढे करम की कीच । संत रविदास का मानना था कि कर्म से ही मनुष्य श्रेष्ठ को प्राप्त करता है।[8] इन निम्नजातीय कवियों का प्रभाव आम लोगों पर था। राजा महाराजा भी इनके सान्निध्य में विद्धता को ग्रहण करते थे। सिक्ख धर्म के पवित्र ग्रंथ की रचना की थी। जिसमें उन्होने संत रविदास की मूल रचनाओं के इकतालीस दोहे उद्धृत किए गए हैं जो आज भी वंदनीय है।[9] इन संतों ने मानवता को समानता की शिक्षा दी सभी इंसानों के साथ समान व्यवहार एकेश्वर वाद के नियमानुसार किया। 13वीं से 17वीं सदी तक ये बहुत लोकप्रिय रहे। इन संतो के नेतृत्व में धार्मिक एवं सांस्कृतिक गुणों ने दलित समाज में सुधार आंदोलन चलाकर समाज के निम्न वर्गीय लोगों के खान पान में सुधार तथा उनके पंरपरागत पेशा को छोड़ने पर बल दिया। इन संत कवियों ने भजन, भंडारा मठों द्वारा दलितों को संगठित करने का प्रयास किया। इमाइल दुर्खीम की शब्दावली में

[7] मौर्या, ओमप्रकाश, जाटव समाज का उदगम एवं दलित आंदोलन, आलोकपर्व प्रकाशन, पेज–33
[8] वही पेज
[9] वही पेज

''मशीनी एकजुटता'' को स्थापित करने तथा बढावा देने में इन सामाजिक धर्मिक नेताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[10]

औपनिवेशिक काल में संयुक्त प्रांत में कोई विशेष एवं प्रमुख निम्न जातीय आंदोलन का प्रादुर्भाव नही हो पाया। किसी–किसी जिले में व्यक्तिगत रूप से दलित लोगों को सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से संगठित करने का प्रयास किया। इस काल में स्वामी अछूतानंद द्वारा किए गए प्रयास महत्वपूर्ण है। अछूतानंद का जन्म 1879 ई. में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में हुआ था। इन्होने पारंपरिक रूप से शिक्षा नहीं ग्रहण किया। सन्यासियों के संसर्ग में रहकर हिंदी, संस्कृत, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, मराठी, बंगला एवं गुरूमुखी भाषा सीखी। अछूतानंद हरिहरानंद के नाम से भी जाने जाते थे। ज्ञान एवं अध्ययन के बाद हिंदू धर्म के असली रूप को उन्होने पहचाना, हिंदू धर्म को स्वर्ग नरक, पाप पुण्य का सिद्धांत भेदभाव और उत्पीड़न का दूसरा नाम मानते है। उनका मानना था कि किताबों के अध्ययन एवं ध्यान को व्यवहार में लाने से, सबकुछ के जानकारी के बाद निष्चित ही उसमें समझ विकसित होती है जिससे वो भगवान एवं अंधविश्वास से दूर हो जाता है। अछूतानंद गौतम बुद्ध और कार्ल मार्क्स से प्रभावित थे।[11] अछूतानंद आध्यात्मिकता से राजनीतिक मंच पर भी अपने विचारों को रखने लगे। 1921 ई में दिल्ली आल इण्डिया शिडयूल्ड कास्ट का एक सम्मेलन आयोजित हुआ जहां वे अपने विचार रखें। जहां वे बौद्ध धर्म एवं शूद्रों के प्राचीनतम इतिहास पर भाषण दिए। नवंबर 1928 ई में वे डॉ अम्बेडकर से मिले थे। ब्रिटीशों के भारत में आने से उन पिछड़ें दलित वर्गो को लाभ हुआ। इन्हें सरकारी नीतियों एवं योजनाओं में शामिल किया जाने लगा। औपनिवेशिक काल की शैक्षणिक नीतियां इन शूद्रों को भी भारत का नागरिक मानती थी। इसाई मिशनरियां शिक्षा एवं धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए भारत के पिछड़े इलाकों जंगलों में वहां रहने वाले लोगो तक पहुंच बनाने लगी थी। हालांकि इसका प्रभाव संयुक्त प्रांत के जिलों में ज्यादा नहीं था।

---

[10] अंसारी इफतखार अहमद, नवीन दलित आंदोलन एवं वर्तमान नेतृत्व, पेज–20

[11] भारती रामविलास, बीसवीं सदी में दलित समाज, पेज–58

पूरे भारत में दलितों की स्थिति एक जैसी थी वे हर तरह से प्रताड़ित होते थे। अस्पृश्यता ने उन्हें पशुवत जीने के लिए विवश कर दिया था। दलितों का जीवन समाज के अन्य वर्णो से तुलनात्मक रूप से बहुत निम्न कोटि का था। ग्रामीण व्यवस्था से पृथक किसी भी प्रकार के मानवीय कार्य से वंचित, केवल वही कार्य करने के लिए थे जो समाज के अन्य लोग नही कर सकते थे – जैसेः– मरे हुए जानवर उठाना, गांव के घरों की गंदगी और मल की सफाई करना, बुरे अशुभ समाचार के संदेशवाहक बनना इत्यादि। शिक्षा के क्षेत्र में दलितों की स्थिती बड़ी ही दयनीय थी, इन्हें विद्यालय में प्रवेश मिलना बहुत कठिन था, कक्षा में प्रवेश वर्जित था, क्योंकि वहां उंची जाति के विद्यार्थी बैठते थे। कक्षा के बाहर बरामदे में चटाई बिछाकर अस्पृश्य बच्चे पढ़ते थे। विद्यालयों में बैठने के लिए दलित विद्यार्थियों को स्वयं चटाई घर से लाना पड़ता था। दलित के खान पान में भी बहुत कुछ वर्जित था। इनके खाने में घी, हलवा आदि का इस्तेमाल करना मना था। सच्चाई तो यह है कि इन्हें कुछ भी अच्छे चीजों को ग्रहण करने से सिद्धातंतः वर्जित किया गया था। अच्छे कपड़े, गहने पहनना सब कुछ शास्त्रों द्वारा ही वर्जित था। इस समय के समाज में तर्क, वैज्ञानिकता, बुद्धि, विवेक की बात बेमानी थी। केवल धर्मांधता, आंडबर, अंधविश्वास, पूजा–पाठ समाज में व्याप्त था। पुरोहित वर्ग पारलौकिक शक्तियों का डर दिखाकर अपना वर्चस्व बनाए हुए थे। भारत में लगभग हर जगह इसी प्रकार की कुरीतियां विधमान था। भक्ति आंदोलन एवं संत कवियों के प्रभाव में आकर दलितों ने हिंदू धर्म से अलग अपने को संगठित करने लगे थे। इन मंदिरों में सत्संग, भजन, वाचन एवं अन्य धार्मिक कर्म होने लगे। उन्नीसवीं सदी के शुरूआत में लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर एवं वाराणसी जैसे शहरों में भक्त गुरूओं ने दान एवं मदद से मंदिर निर्माण हुआ। बाबा सीता राम दास, संत गोपी डोम, एवं स्वामी शिवनारायण जैसे गुरू दलित नेताओं का प्रभाव समाज पर था। भक्ति साधनों द्वारा उभरे दलित नेता एवं संत जातीय समानता पर जोर देते हैं। इन दलित संतों ने भारतीय जातीय संरचना की खामियों को दूर करने के लिए, उसमें बदलाव एवं संरचनात्मक परिवर्तन की मार्गदर्शन नही करते। इनमें क्रांतिकारिता का भी अभाव था।

प्रारंभ से ही उत्तर प्रदेश भारत के केन्द्रीय राजनीति का प्रमुख राज्य रहा है। जनसंख्या एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण राज्य है। यह राज्य हिन्दी पट्टी की विशेषता के लिए ब्राह्मणवाद एवं सनातन धर्म की स्थली रहा। जिनका प्रभाव समाज की सभी जातियों पर था। दलित समुदाय अपने सामाजिक उत्थान के लिए सांस्कृतिक मूल्यों, रीतियों और उन सभी कर्मकांडों को अपनाने लगे जो ब्राह्मणवादी व्यवस्था में विद्यमान थी। ये नई पीढी के दलित राजनीति को भी उसी उद्देश्य से लेते थे। उत्तर प्रदेश के जाटव 1920 से ही राजनीतिक रूप से जागरूक हो एक थे और वे अपने समुदायों के अधिकार की मांग करते थे। बोहरे खेमचंद 1922 में उत्तर प्रदेश विधान सभा के एम एल सी के पद के लिए नामित किए गए जिस पर वे 1936 तक रहे।[12] लिंच के अनुसार वे पूरे कार्यकाल तक उस पद पर बने रहे। बोहरे खेमचंद ने कांउसिल में यह प्रस्ताव रखा कि जाटव समुदाय से एक सदस्य की नियुक्ति उत्तर प्रदेश जिला बोर्ड एवं प्रत्येक नगरपालिका बोर्ड में की जाए।[13] इस तरह दलितों द्वारा राजनीतिक पदों को धारण करने से वे अपने आप को राजनीतिक संरचना में जागरूक रूप से सक्रिय करने लगे।

बीसवीं सदी में भारत में धर्मसुधार आंदोलन एवं हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों एवं जड़ता को दूर करने के लिए अनेक महापुरूष एवं संगठन प्रयासरत थे। उत्तर प्रदेश के मुख्य शहरी इलाकों में ''आर्य समाज'' व्यापक रूप से सक्रिय थे। जो कि हिन्दू धर्म एवं वेदों की पवित्रता पर पुर्नव्याख्या करता थे। शुरू–शुरू में दलित इससे बहुत प्रभावित हो रहे थे एवं हिन्दू धर्म के अंतर्गत स्वयं आर्य समाज से जुड़ भी रहे थे। लेकिन शनै शनै उन्हें एहसास हो गया कि आर्य साज जैसे संगठन केवल उपदेशवादी है जिन पर द्विज वर्णो का ही आधिपत्य है। आर्य समाज के द्वारा हिन्दू समाज में पाए जाने वाले अशपृस्यता ऊंच–नीच को नही दूर किया जा सकता। आर्य समाज से दलितों का मोहभंग होने लगा। लेकिन आर्य समाज के विद्यालयों में दलितों के प्रवेश से कम ही सही साक्षरता बढ रहा था। दलितों में जाटव जाति सरकारी विद्यालयों से शिक्षा प्राप्त करने लगे थे। 1917 में जाटव वीर

---

12 प्रसाद माता, भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत, पेज–77
13 वही

महासभा, 1924 में जाटव स्वयंसेवक मण्डल संगठन का गठन हुआ।[14] जिसके मुख्य सदस्य डॉ मानकचंद्र जाटववीर, सुंदरलाल सागर, खेमचंद बोहरे, प्रभुदयाल व्यास, बाबू नंदकिशोर थे।[15] इन संगठनों द्वारा दलित समाज में जाटवों को अलग पहचान दिया गया। खासकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाटव शिक्षा, संस्कृतिकरण एवं नई पहचान द्वारा चमार से जाटव की नई पहचान में बदल रहे थे। इसी क्रम में जाटव राजनीतिक रूप से भी जागरूक बन रहे थे। उस समय की राजनीतिक क्रियाकलापों में भाग लेते थे एवं अपने मंतव्य को रखते थे। 1920 से ही अपने जाटव कम्युनिटी के लिए अधिकार एवं राजनीतिक हिस्सेदारी की मांग करने लगे थे। आगरा से करन सिंह केन कांग्रेस की टिकट से एम.एल.ए. र्निवाचित हुए थे उन्होने जाटव शब्द को 1937 में पंजीकृत करवाया ।[16] जाटवों की जनसंख्या ज्यादा थी जिनमें से कुछ लोग मध्यम वर्ग एवं आर्थिक रूप से उन्नत थे। जाटवों की यह सामाजिक स्थिति स्पष्ट करती है कि वे सत्ता संरचना में अपने स्थिति एवं हैसियत को लेकर जागरूक हो गए थे। जाटव समुदाय राजनीतिक सहायक के रूप में अपनी स्थिति को स्पष्ट करने लगे थे।

औपनिवेशिक भारत में संचार माध्यम धीमी गति से संचालित होने के बाद भी डॉ अम्बेडकर के राजनीतिक पटल पर उभरना एवं उनसे जुड़े समाचार तथा घटनाएं आगरा, कानपुर, लखनऊ जैसे शहरों में पहुंचते रहता था। लखनउ के चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने साहित्य को दलित सम्मान आंदोलन का माध्यम बनाया। वे ब्राहमणी साहित्य के विपरीत बौद्ध धर्म और दलित उत्थान विशयक साहित्य का प्रमुखता से अध्ययन किए । स्वतंत्रता के बाद डॉ गया प्रसाद प्रशांत ने डॉ अंबेडकर से अनुरोध कर उन्हें लखनउ आमंत्रित किया था । कंपनी गार्डन में डॉ अंबेडकर का सम्मेलन का संबोधन अविस्मरणीय था। जिसे चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने 'बाबासाहेब के पंद्रह व्याख्यान ' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया था।[17]

---

[14] वही, पेज–69
[15] वही
[16] वही ,पेज–165
[17] वही, पेज–48

उत्तर प्रदेश के दलित अपने को डॉ अम्बेडकर के विचारों से जोड़ते थे। 1930 में शिक्षित युवा जाटवों ने जाटव यूथ लीग की स्थापना की, जिसमें उन लोगों ने डॉ अम्बेडकर के राउंड टेबल कांफ्रेंस के व्यक्तव्यों का समर्थन किया एवं डॉ अम्बेडकर को दलितों का वास्तविक प्रतिनिधि होने का समर्थन किए न कि गाधी को।[18] जाटव यूथ लीग की अन्य शाखाएं राजस्थान, पंजाब एवं मध्यप्रदेश में भी फैल गई। 1935 में डॉ अम्बेडकर के येवला उद्घोषणा के बाद– मैं हिन्दू के रूप में मरूंगा नहीं। आदि हिन्दू धर्म एवं संस्कृतिकरण जैसी परंपराओं से अलग हटकर दलित डॉ अम्बेडकर का अनुसरण करने लगे। महाराष्ट्र से प्रसारित होते हुए उत्तर भारत के जाटव चमार शिडयूल्ड कास्ट फेडरेशन में शामिल होने लगे थे। 1944–45 में आगरा में शिडयूल्ड कास्ट फेडरेशन की स्थापना की गई थी। 1947 में भारत स्वंतत्र हुआ। उस समय तक डॉ अम्बेडकर का व्यक्तित्व विराट बन गया। डॉ अम्बेडकर घोषित रूप में दलितों के नेता बन गए। संविधान द्वारा दलितों को अधिकार संपन्न एवं सशक्त किया गया। समुचित प्रतिनिधित्व के लिए शिक्षा एवं सरकारी नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान किया गया। पूना पैक्ट द्वारा संसदीय लोकतंत्र में दलितों की भागीदारी सुनिश्चित की गयी। व्यस्क मताधिकार दलितों को मिला एवं अन्य सुरक्षात्मक प्रावधानों से दलित अपने को सशक्त समझने लगे थे। 1942 में आल इंडिया शिडयूल्ड कास्ट फेडरेशन का गठन किया गया। जिसके अध्यक्ष एन शिवराज और जनरल सेक्रेटरी पी.एन. राजभोज थे। यूपी में एससीएफ की पहली शाखा आगरा में स्थापित हुइ। गोपीचंद पीपल को अध्यक्ष एवं करन सिंह केन को सेक्रेटरी बनाया गया।[19]1944 में कानपुर में एससीएफ की एक विशाल सभा का आयोजन किया गया था जिसमें डॉ अंबेडकर भी सम्मिलित हुए थे। इस सभा के तिलकचंद कुरील अध्यक्ष थे।[20] महाराष्ट्र के समता सैनिक दल की शाखाएं भी उत्तर प्रदेश में बनाई गई।

1950 के दशक में दो महत्वपूर्ण घटनाक्रम हुआ जिनमें पहला दलितों का धर्मांतरण आंदोलन है एवं दूसरा रिपब्लिकन पार्टी आफ इंडिया (आरपीआई) का

---

[18] Research paper, Ramiz Raza, AMU

[19] अंगनेलाल, राहुल राज, उतरप्रदेश में दलित आंदोलन, पेज–167

[20] प्रसाद माता, भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत, पेज–59

गठन है। बहुतायत संख्या में आगरा, अलीगढ़ और उत्तर प्रदेश के अन्य जिलों के अनुसूचित जातियों ने डॉ अम्बेडकर का अनुसरण करते हुए बौद्ध धर्म को अपनाया। यहां के गिने चुने दलित कार्यकर्ताओं नें दलितों की स्थिति को बेहतर करने के लिए प्रयास करते रहे लेकिन उनका प्रभाव क्षेत्र सीमित रहा। संयुक्त प्रान्त में स्वतंत्रता आंदोलन के समय डॉ अम्बेडकर का प्रभाव बहुत कम ही कहा जा सकता है। कांग्रेस द्वारा जो स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई लड़ी जा रही थी उसका प्रभाव यहां के आम जनता पर ज्यादा था। गांधी जी की लोकप्रियता एवं उनके द्वारा किए जा रहे हरिजनोद्धार कार्यक्रम यहां के ग्रामीण एवं अशिक्षित दलितों को ज्यादा लुभाता था। डॉ अम्बेडकर के विचार एवं उनके द्वारा किए आंदोलनकारी कार्यो को सुनने समझने वालों की संख्या कम थी। काग्रेस एवं महात्मा गांधी का प्रभाव दलितों पर था।

1956 के बाद उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन

दलितों का आजादी से पहले का संघर्ष और डॉ अम्बेडकर के भारतीय राजनीति के मुख्यधारा में आने से पहले का काल मात्र सामाजिक सुधारों की मांग को लेकर था जो उनके दैनिक जीवन से जुडा था। डॉ अम्बेडकर ने सामाजिक सुधार का संघर्ष राजनीति और सत्ता के बंटवारें के रूप में परिवर्तन की बात अधिकाधिक करते थे। उनका विश्वास था कि आमुल–चूल परिवर्तन राजनीतिक सत्ता के प्राप्ति द्वारा ही हो सकती है। स्वतंत्रता संग्राम के समय दलितों के अधिकार एवं उनके उद्धार के मुद्दे वैश्विक हो गए। महात्मा गांधी दलितों को हिन्दू धर्म से अलग नहीं करना चाहते थे। इसलिए उन्होने डॉ अम्बेडकर के साथ पैक्ट किया। महात्मा गांधी की पहल पर पूरे देश में 26 सितम्बर से 2 अक्टूबर 1932 तक अस्पृश्यता निवारण सप्ताह मनाया गया। अमृत लाल, बी ठक्कर के नेतृत्व में 'अस्पृश्यता विरोधी लीग' की स्थापना की गई। उसी दौरान 'हरिजन' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। इस पत्र के माध्यम से गांधीजी ने अस्पृश्यता के विरूद्ध हिन्दूओं को जागृत किया।

महात्मा गांधी ने दलितों के उद्धार के लिए दो उपायों पर जोर दिए :–

1. दलितों के बीच में रहकर उनके कष्टों का निवारण करना।
2. सवर्णो के हृदय परिवर्तन करने पर जोर देना, जो अस्पृश्यता का व्यवहार करते थे।

डॉ अम्बेडकर को हिन्दू धर्म में सुधार लाकर एवं ह्रदय परिवर्तन द्वारा अस्पृश्यों के कल्याण कार्यक्रम पर बिलकुल विश्वास नही था। पूना पैक्ट के बाद दलितों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व में हिस्सा मिला। कांग्रेस जो कि उस समय एकमात्र पार्टी थी जिसमें गांधी जी के विचारों का ज्यादा प्रभाव था। कांग्रेस पार्टी के अंतर्गत दलितों को चुनावी प्रतिनिधित्व देने का कोई फायदा नहीं हुआ। जिसके परिणामस्वरूप डॉ अम्बेडकर ने दलितों की अपनी राजनीतिक पार्टी बनाई इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी, शिडयूल्ड कास्ट फेडरेशन जो बाद में रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया बना । एआइएससीएफ का आधार होने के कारण उत्तर प्रदेश में आरपीआई सक्रिय थी। रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया दलित विकास और कांग्रेस के विरूद्ध एक सशक्त आंदोलन के रूप में उभर कर आई और उसने दलितों को एक राजनीतिक मंच प्रदान किया। आरपीआई अपने निर्माण के आरंम्भिक दिनों में दो एजेंडे पर कार्य कर रही थी–

1. दलितों का समुचित विकास
2. ब्राह्मणवादी कांग्रेस पार्टी को पराजित करना।

आरपीआई दलितों को जागरूक करने में सफल रही थी लेकिन गुटबाजी एवं नेताओं के व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण आरपीआई विखंडित होकर कई टुकडों में बंट गई। कांग्रेस का व्यापक जनाधार, दलित नेताओं को को–आप्ट करने की नीति ने दलित नेताओं को लालच के चक्र में फंसा दिया। दलित वोट बैंक पर अपने कमजोर पकड़ के परिणामस्वरूप 1969 तक आरपीआई कईं गुटों में विभाजित हो गई। उत्तर प्रदेश के विधान परिषद चुनाव में आरपीआई के बहुत से स्थानीय और राष्ट्रीय नेता कांग्रेस में शामिल हो गए। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के आरपीआई के जिताउ नेता शिक्षित एवं अम्बेडकरवादी नेता बुद्धप्रिय मौर्य ने अलीगढ़ से जीत दर्ज

की। देश की संसद में आरपीआई की संगठन की ओर से देश भर से लगभग 7 सांसद चुने गए थे। संसद की लोकसभा में बुद्धप्रिय मौर्य को आरपीआई का नेता चुना गया।[21] 1971 में आरपीआई के शीर्ष पदाधिकारियों के रिश्तों के कारण अनबन हो गई एवं मौर्य कांग्रेस में शामिल हो गए। इस प्रकार प्रायः सभी दलित नेता कांग्रेस के हो गए।

उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन को स्वतंत्रता के बाद (1960–70) कमजोर पड़ने का मुख्य कारण कांग्रेस की प्रभुत्ववादी रवैया था। कांग्रेस स्वतंत्रता आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाने वाली पार्टी थी। जिसका आम भारतीयों पर बहुत प्रभाव था। काग्रेसी नेता सच्चे देशभक्त के प्रतिबिम्ब थे खासकर गांधी, नेहरू, शास्त्री, इंदिरा गांधी जैसे नेता। कांग्रेस अपनी समझौतावादी नीतियों एवं दलित नेताओं को अपने में मिलाने के लिए माहिर थी। देश की संशाधन सरकार सबकुछ पर कांग्रेस का एकाधिकार थां। आरपीआई कांग्रेस के विरूद्ध मजबूत सांगठनिक ढांचा नही बना पाइ। अंबेडकर के विचारों का व्यापक प्रचार–प्रसार नही होने के कारण दलित एक जुट नहीं हो पाए। इसके पीछे का कारण दलित नेता एवं दलित जनता के सामाजिक आर्थिक परिस्थितियां भी जिम्मेदार थी। जो कि अपने प्रतियोगी से बहुत निम्न थी।

कांग्रेस का जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, खेतिहर भूमिहीन मजदूर अधिनियम, गरीबी हटाओ कार्यक्रम ने दलितों को आकर्षित करने के लिए था। दलितों को प्राप्त आरक्षण के द्वारा नौकरी पेशा वर्ग एवं मुस्लिम मतदाता इन सबको कांग्रेस अपने पक्ष में करने में कामयाब रहा। जोया हसन के अनुसार कांग्रेस मुसलमानों को वो सारे प्रिविलेज प्रदान कर रही थी जो उन्हें वोट बैंक बनाए रखे जैसे– मुस्लिमों को पार्टी में अच्छा पोजिशन देना साथ ही सरकारी संगठनों में भी, पार्टी एवं सरकार में भी अच्छे पद देना।

साठ से सत्तर के दशक में किसान आंदोलन ,हरित क्रांति एवं भू–सुधार कार्यक्रम से समाज का ताना बाना उलझ गया। हरित क्रांति ने किसानों को गरीब

---

[21] मौर्या ओमप्रकाश, जाटव समाज का उद्गम एवं दलित आंदोलन, पेज–114

एंव अमीर किसान में विभाजित कर दिया। पिछड़ी जातियों के उर्द्धवाधर गतिशीलता को रोक दिया। ग्रीन रिव्योल्यूशन ने किसानों में असमानाता के अंतर को बढ़ा दिया। जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गेहूं उत्पादन करने वाले कृषक थे वे अधिक समृद्ध थें बनिस्वत पूर्वी उत्तर प्रदेश के चावल उत्पादन करने वाले किसानों की तुलना में। पश्चिमी उतर प्रदेश के जाट साधन संम्पन्न होने लगे उनकी राजनीतिक महत्वकांक्षा बढने लगी। कांग्रेस उनकी राजनीतिक महत्वकांक्षाओं को पूरा नही कर पा रहे थे। एंटी काग्रेस बनकर जाटों को चौधरी चरण सिंह जैसा नेता मिला। क्रिस्टोफ जेफरले ने अपनी पुस्तक ''इंडियाज साइलेंट रिव्योल्यूशन द राइज आफ द लो कास्टस इन नार्थ इंडियन पालिटिक्स'' में उत्तर भारत के पिछड़े एवं निम्न जातियों के बीच पनप रहे राजनीतिक महत्वकांक्षा को रेखांकित किया है। यह किताब नब्बे के दशक में ' मंडल कमीशन'' के लागू होने एवं बाद के सामाजिक गतिशीलता तथा निम्न जातियों के लामबंदी के कारणों को दर्शाता हैं। 1990 के बाद एंटी मंडल मोबिलाइजलेशन के साथ साथ ये निम्न जातियों का कांउटर मोबिलाइजेशन को वर्णित करता है। उत्तर भारत में एक ओर सवर्ण उंची जातियां बैलेंस ऑफ पावर बनकर राजनीतिक अभिजात्य वर्ग बन कर सत्ता को अपने अनुसार चला रही थी जिसमें कांग्रेस ही सता का धुरी था । वहीं दूसरी ओर संवैधानिक प्रावधानों एवं आरक्षण से समाज के वंचित वर्ग की राजनीतिक महत्वाकांक्षा इस वर्चस्व को तोड़ना चाहती थी।

कांग्रेस सरकार की जमींदारी उन्मूलन एक्ट, भूमि सुधार एक्ट से दलितों को कोई फायदा नही हुआ। वे पूर्ववत केवल भूमिहीन खेतिहर मजदूर बन कर रह गए। इन अधिनियमों का फायदा जमींदार के नीचे व मझोले किसानों को हुआ जो इंटरमीडियरी कास्ट थे। जैसेः– यादव, कुर्मी, जाट आदि। दलितों की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में कोइ सुधार नही हुआ। एक नया राजनीतिक भूमि संपन्न अभिजात्य वर्ग समाज के पिछड़े वर्ग से उभर आया। जो दलितों का शोषण करते थे उन पर अत्याचार करते थे। 1970 के दशक में इंदिरा गांधी का 'गरीबी हटाओ' जैसे लोक लुभावन कार्यक्रम दलितों को बहुत आकर्षित किया था। काग्रेस निम्न जातियों के बीच अपने आधार को बनाए रखने के लिए गरीबी हटाओं एवं बीस सूत्री

कार्यक्रम को लेकर आई थी। इसी दौरान उत्तर प्रदेश के प्रतिष्ठित दलित नेता छेदी लाल साठी, बीपी मौर्या और राज जी राम कांग्रेस की नीतियों से प्रभावित होकर कांग्रेस में शामिल हो गए। सत्तर के दशक में उत्तर प्रदेश में स्वतंत्र एवं स्वायत्त, राजनीतिक लामबंदी दलित समुदाय में नहीं मिलती है जैसा कि महाराष्ट्र में था। उत्तर प्रदेश के दलित कांग्रेस की छत्रछाया में जी रहे थे। महाराष्ट्र के दलित पैन्थर्स आंदोलन जैसा व्यापक प्रभाव उत्तर प्रदेश में नही पाया गया। कुछ प्रमुख नगरों लखनऊ, कानपुर, जौनपुर में दलित नौजवानों ने अत्याचार के विरूद्ध अपनी लड़ाई लड़ी। महाराष्ट्र की तरह इन दलित लड़ाकों का सत्ताधारी पार्टी द्वारा दमन किया गया। बामसेफ के उदय के बाद दलित पैन्थर्स उत्तर प्रदेश से लुप्त हो गए।[22] आरपीआई के अवसान के साथ ही दलित पैन्थर्स आंदोलन का समाप्त होना ही 1970 के दशक की दलित आंदोलन की महत्वपूर्ण घटना नहीं थी। इस काल खण्ड में दलित साहित्य आंदोलन का प्रचार–प्रसार एवं कांशीराम के बहुजन सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन का प्रादुर्भाव दलित आंदोलन के सुनहरे युग का आगमन था।

कांशीराम एवं दलित आंदोलन

कांशीराम का जन्म अनुसूचित जाति के ग्रामीण परिवार में रोपड़ पंजाब के खवासपुर गांव में हुआ था। वे रामदसिया चमार जाति के थे जो बाद में सिक्ख धर्म में परिवर्तित हो गए। सिक्ख धर्म में उर्ध्वाधर गतिशील होने की संभावना ज्यादा थी अन्य धर्मो की अपेक्षा सिक्ख गुरू ज्यादा समतावादी होते थे। सिक्ख धर्म में भाई–चारे का बोध सबसे ज्यादा है। जिस प्रकार डॉ अम्बेडकर एवं बिहार के जगजीवन राम का परिवार ब्रिटीश आर्मी में शामिल होने के बाद ब्रिटीश नीति से लांभावित होकर अपने परिवार को अन्य दलित परिवारों के मुकाबले ज्यादा समृद्ध कर पाए। वैसे ही कांशीराम का परिवार भी खुशहाल था। उनके दादा, चाचा, पिता सभी आर्मी में थे। आर्मी केवल अच्छी सैलरी वेतन ही नहीं देते थे बल्कि दलित सैनिकों के अंदर आत्म सम्मान की भावना को भी प्रोत्साहित करते थे। शायद इसी पारिवारिक पृष्ठभूमि की वजह से जातिवाद के दंश को कांशीराम अपने शुरूआती

---

[22] Kumar Vivek, India roaring revolution dalit assertion and new horizon, Page-108

युवावस्था में ज्यादा नहीं देखें। कांशीराम ने सरकारी केमिस्ट की नौकरी पूणे महाराष्ट्र में किया। जो अपने आप में संयोग था। कांशीराम वैसे लघु संभ्रातं अनुसूचित जाति ग्रुप का प्रतिनिधित्व करने लगे थे जो आरक्षण का लाभ उठाकर सरकारी नौकरी का लाभ ले रहे थे। दीनाभाना कर्मचारी एवं उसके संघर्ष के प्रकरण ने कांशीराम को नई दिशा दी। कांशीराम ने डॉ अंबेडकर की पुस्तक 'एनिहीलेशन आफ कास्ट', 'व्हाट कांग्रेस एंड गांधी हैव डन टू द अनटचेबलस' को बहुत ध्यान से पढा। डी.के. खापड्रे जो कि महार बुद्धिस्ट थे ने कांशीराम को अम्बेडकरवाद और महाराष्ट्र के दलित आंदोलन के बारे में बहुत सारी जानकारियां दी। 1960 के दशक के बाद से कांशीराम राजनीतिक कार्यवाहियों में ज्यादा सक्रिय हो गए थे। उन्होने परिवार, नौकरी सब कुछ को त्याग दिया। कांशीराम ने जब सरकारी नौकरी छोड़ी उस समय वे आरपीआई से जुड़े हुए थे। लेकिन वे आरपीआई के नेताओं उनके कायशैली, गुटबंदी और महार बौद्ध नेताओं के तुच्छ हितों से दुखी और क्षुब्ध थे। आरपीआई विभाजन गुटबंदी का शिकार हो रही थी और अपने आप को केवल दलितों वोटर्स तक ही सीमित की हुई थी। आरपीआइ में महाराष्ट्र के दलितों की एक ही जाति महारों का प्रभाव था। यह एक तरह से अम्बेडकर के विचारों की हत्या थी क्योंकि उन्होने अपनी पुस्तक 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' में लिखा है कि कोइ भी संगठन केवल एक विशेष समुदाय पर आधारित होगा तो निश्चय ही असफल हो जाएगा। कांशीराम डॉ अंबेडकर के विचारों के साथ–साथ ज्योतिबा फुले के विचारों से भी प्रभावित थें। क्रिस्टोफ जेफरले ने अपने पुस्तक 'इंडियाज साइलेंट रिव्योल्यूशन 'में लिखा हुआ है कि कांशीराम, महात्मा फुले के विचारों से ज्यादा प्रभावित थे। जिसमें फुले ने आर्यो को बाहय आक्रमणकारी बताया। आर्य जो कि 15 प्रतिशत ही थे और निम्न जातियों जो कि शासक वर्ग थे वे 85 प्रतिशत है। निम्न जातियों को ही हराकर 15 प्रतिशत आर्य जातियों शासक बन बैठी है। यह अनुकल्प कि आर्य आक्रमणकारी और दलित बहुजन समाज का जो कांशीराम का विचार था वह फुले के विचारों से स्थानांतरित है। आर्यो ने हमारा शोषण किया है। प्राचीन भारत अपने समृद्धि के लिए जाना जाता है। हमारे पूर्वजों ने बहुजन समाज के शासकों ने इसको महान बनाया तो वर्तमान समय में क्यों नही। कांशीराम ने आर्य आक्रमण थ्योरी को एक भावनात्मक अपील के रूप में

प्रयोग करने की कोशिश की निम्न जातियों को संगठित करने के लिए, धार्मिक अल्पसंख्यक के रूप में भी बहुजन समाज शब्द को इस्तेमाल किया गया। 1970 में अपने संगठन में कांशीराम ने बहुजन समाज शब्द को प्रचलित किए। 14 अक्टू 1971 को कांशीराम ने 'शिडयूल्ड कास्ट एंड शिडयूल्ड ट्राइब्स अदर बैकवर्ड कलासेज एंड माइनोरिटी कम्यूनिटीज एम्लोइज एसोसिएसन' का गठन किया। उन्होनें सर्वप्रथम बहुजन समाज के नौकरी पेशा मध्यम वर्ग को जोड़ना शुरू किया जो शिक्षित थे एवं सवैधानिक आरक्षण से सरकारी नौकरियॉ में थे। उन्होंने बहुजन समाज के सभी जाति के लोगों को वाइस प्रेसिडेंट का पद दिए जिनमें महार, आदिवासी, माली, मुस्लिम और क्रिश्चियन थे। सवर्ण समाज को मनुवादी कहा जो वर्ण व्यवस्था पर आधारित थे। वही संगठन बामसेफ बैकवर्ड एंड माइनारिटीज कम्यूनिटिज इंप्लॉइज फेडरेशन बामसेफ बन गया जिसका उद्‌देश्य भी मूलतः वही था।

बैकवर्ड एंड माइनारिटीज कम्यूनिटिज इंप्लॉइज फेडरेशन (बामसेफ)

बामसेफ दलित सरकारी कर्मचारियों का एक गैर राजनीतिक संगठन था। बामसेफ जल्दी ही अपना विस्तार करने लगा। इसका मुख्य कारण यह था कि शिक्षित एलिट एवं दलितों बहुजनों की संख्या बढ़ रही थी। 1961 में 7 प्रतिशत 1981 में 15 प्रतिशत से बढ़कर 1991 तक 27 प्रतिशत तक हो गइ थी। उत्तर प्रदेश के आईएएस कैडर में दलित अधिकारियों की संख्या ब्राह्मण और कायस्थ जाति के बाद सबसे ज्यादा थी, लेकिन फिर भी ये क्षुब्ध और कुंठित रहते थे क्योंकि उनको जिले में और राज्य राजधानी में अच्छी पोस्टिंग नही मिलती थी। वे ऐसे संघ की तलाश में रहते थे जो हर स्तर पर प्रेशर ग्रूप का काम करें। कांशीराम ने उत्तर भारत और महाराष्ट्र जाकर इन अधिकारी वर्ग से आग्रह किया कि वे बामसेफ से जुड़े। वे बामसेफ को केवल कर्मचारी संघ नहीं बनाना चाहते थे वे ऐसा संगठन चाहते थे जो शिक्षित सभ्य संवेदनशील लोगों का समूह हो जो बहुजन समाज के प्रति थिंक बैंक, टैलेंट बैंक, फाइनेंशियल बैंक का काम करें। उत्तर प्रदेश में धीरे–धीरे बामसेफ दलित सक्रिय जनों को आकर्षित करने लगा। अम्बेडकरवादी विचारधारा वाले लोगों के साथ–साथ समाजवादी भी इससे जुड़ने लगे। समाजवादी

विचारधारा के जगमोहन सिंह लखनऊ यूनिवर्सिटी में लेक्चरर थे उतर प्रदेश में बामसेफ के एक महत्वपूर्ण रचनाकारों में से एक थे। 1980 के दशक में बामसेफ सदस्यों की संख्या 2 लाख पहुंच गई थी जिसमें प्रोफेसर ,वैज्ञानिक, एमबीबीएस ग्रेजुएट्स, पोस्ट ग्रेजुएटस और अन्य डिग्री धारक भी शामिल थे। ये सभी उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र से थे। इसके बाद भी इन वर्गों के सरकारी कर्मचारियों का ट्रांसफर और उत्पीड़न बदस्तूर जारी था। कांशीराम के अनुसार बामसेफ की शुरूआत सामाजिक बदलाव के विचार से किया गया है जिससे दलित समाज का आर्थिक सशक्तिकरण हो। वे चाहते थे कि बहुजन समाज सामाजिक और आर्थिक रूप से उन्नत हो। कांशीराम साथ ही साथ इस बात को भी भलीभंति समझ गए थे कि राजनीतिक प्रभाव और राजनीतिक शक्ति के बिना वे कुछ नहीं कर सकते। अंततोगत्वा डॉ अम्बेडकर के पदचिन्हों पर ही चलते हुए कांशीराम ने राजनीतिक सत्ता को मास्टर की गुरू किल्ली की बात कही।[23]

कांशीराम ने पहली राजनीतिक पार्टी डीएसफोर **दलित शोषित समाज संघर्ष समिति** का गठन 6 दिसम्बर 1981 को किया।[24] कांशीराम महाराष्ट्र के आरपीआई एवं वहा के दलित राजनीति का हश्र देखकर हमेशा सचेत रहे। उन्होने हर बार इस बात पर ज्यादा जोर दिया गया कि कोई भी संगठन, पार्टी जाति विशेश का संगठन बनकर रह जाए। उसके संगठन का प्रकृति बहुजनों दलितों और समाज के दलित वर्ग का समावेशी संगठन था। डीएसफोर में पिछड़ी जातियों, दलित, ट्राइबल सबको बराबरी का दर्जा दिया गया। यहां तक कि उत्तर प्रदेश के मुस्लिम समुदाय भी इस संगठन से जुड़े जिनमें डॉ मसूद अहमद का नाम उल्लेखनीय है।[25] वे अलीगढ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में अस्थायी लेक्चरर थे। एक तरफ जहां बामसेफ शिक्षित एलीट नगरीय बहुजन का संगठन था वही दूसरी तरफ डीएसफोर के द्वारा ग्रामीण दलितों से जुड़ने का कोशिश किया गया। डीएस फोर ज्यादा आक्रामक एवं तेजी से फैलने वाला आंदोलन अभियान बना। यह उत्तर भारत के गांवों के दलित समाज में बहुत

---

[23] Narayan Badri,Kanshiram,page-28
[24] वही, पेज–53
[25] वही

लोकप्रिय हो रहा था। 1980 दषक के मध्य में साम्यवादियों से भी ज्यादा रैडिकल संगठन था।

कांशीराम में बहुजन समाज पार्टी के रूप में राजनीतिक पारी की शुरूआत किया जिसमें कांग्रेस को सबसे बडे शत्रु के रूप में चिन्हित किया गया। 1932 पूना पैक्ट के 50वीं वर्षगांठ पर कांशीराम ने 1982 में अपनी बुकलेट **'द चमचा एज'** को प्रकाशित करवाया पूना पैक्ट से उपजी राजनीतिक पौध को चमचा कहा।[26] जिसमें मुख्य रूप से यह बताया गया कि किस तरह पूना पैक्ट के द्वारा रिर्जब्ड सीट पर अनुसूचित जाति के उम्मीदवार होते तो है,लेकिन वे केवल उच्च जातियों के यस मैन बन कर रह गए। जिसका हमेशा से अम्बेडकर विरोध करते रहे। डीएस फोर ने सर्वप्रथम हरियाणा में अपने उम्मीदवारों को चुनाव में उतारा लेकिन वहा सफलता नही मिला। 1983 में कांशीराम ने साइकिल रैली निकाल कर बहुजन समाज को राजनीतिक रूप से शिक्षित करने का कार्य आरंभ किया। 100 दिन का कैम्पेन 7 राज्यों का भ्रमण करने, जन–सभाएं एंव लोगों को संबोधित करने के बाद दिल्ली में इस रैली का समापन हुआ। इस रैली का मुख्य उद्‌देश्य था बहुजन समाज के लिए राजनीतिक पृष्ठ भूमि तैयार करना जिस पर आगे चल कर आधिकारिक रूप से बीएसपी का गठन किया गया। कांशी राम ने सामाजिक कार्यो को पार्टी कार्य की ओर मोड़ कर राजनीतिक कर दिया। बीएसपी बहुत जल्द ही चुनावी राजनीति में अपने आपको फिट कर लिया। 1989 में जहां बीएसपी को 2.07 प्रतिशत वोट मिले वहीं 1999 तक वोट प्रतिशत 4.2 हो गई। 1996 में चुनाव आयोग के समक्ष बीएसपी ने राष्ट्रीय पार्टी बनने का प्रस्ताव रखा और राष्ट्रीय पार्टी बन भी गई। ये सब केवल कांशीराम के लम्बे संघर्षों का परिणाम था जिससे बहुजन समाज एक जगह संगठित हुए। मध्य प्रदेश, राजस्थान, जम्मू–कश्मीर, पंजाब जेसै राज्यों में भी बीएसपी का जनाधार बढ़ने लगा। कांशीराम ने जनसंख्या के अनुपात में हमेशा इस बात पर जोर दिया कि बहुजन समाज जिसकी आबादी 85 प्रतिशत है वही उंच जातियां जिसकी आबादी 15 प्रतिशत है अल्पसंख्यक होते हुए भी राज करते आए है लेकिन अब ऐसा नही होगा। इस संदर्भ में कांशीराम ने अनेक नारों व उदाहरणों द्वारा अपने

[26] कुमार प्रवेश, दलित अस्मिता की राजनीति, पेज–116

संदेश को बहुजन जनता तक पहुंचाया। जिसकी जितनी संख्या भारी उसकी उतनी भागीदारी, 85 पर 15 का राज नहीं चलेगा, नही चलेगा। 90 के दशक के पहले कांशीराम का बहुजन समाज आंदोलन दलितों को आकर्षित करने में सफल रहा। उसमें भी विशेषकर चमार (जाटव) जाति का आकर्षण या जुड़ाव ज्यादा रहा। जिस प्रकार आरपीआई महाराष्ट्र में महारों की पार्टी बनकर रह गई थी। वैसे ही उत्तर प्रदेश में जाटव आरंभ से ही आरपीआई से जुड़े थे, इसलिए बीएसपी से उनका जुड़ना अवश्यंभावी था। कांशीराम हमेशा से यही प्रयत्न में रहे कि बहुजन समाज में सभी अति पिछड़ी जातियों और अल्प संख्यक समुदायों को भी शामिल कर पार्टी का वृहद आधार बनाया जाए। इसमें कुछ हद तक वे सफल भी हुए। 1999 में बसपा ने 13 प्रतिशत गैर यादव ओबीसी वोट हासिल कर लिया था। कुर्मी वोट भी बसपा से जुड़े रहे। राज बहादुर, जंग बहादुर सोने लाल पटेल जैसे नेता बसपा के कर्मठ कार्यकर्ता थे। 90 के दशक के मध्य में इन्होने बसपा से अलग होकर 'अपना दल' बना लिया। सुधा पई के अनुसार यह कांशीराम का पोस्ट बहुजन फेज था, जिसमें बीएसपी ने ओबीसी जातियों को मिलाने के लिए उन्हे टिकट दिये। कांशीराम ने जातियों की जनसंख्या के अनुपात में टिकट बंटवारे को ध्यान में रखा। 1999 के लोक सभा चुनाव में 85 उम्मीदवारों में 17 मुस्लिम जिनकी जनसंख्या उत्तर प्रदेश में 20 प्रतिशत है, 20 एससी उम्मीदवारों को 38 ओबीसी उम्मीदवारों को जिनकी आबादी 45 प्रतिशत है, 10 अगड़ी जातियों को 12 प्रतिशत है को टिकट दिए। राज्य पार्टी के पदों में भी बैकवर्ड जातियों का अनुपात को ध्यान में रखा गया, खासकर एमबीसी का जिनकी स्थिति बहुत कुछ एससी के जैसे ही थी। वहीं ओबीसी, एससी और एमबीसी को रोजगार न देने एवं दमन के लिए प्रसिद्ध थे। अनुसूचित जातियों एवं अत्यंत पिछड़ी जातियों में आपसी एकता का अभाव था। पिछड़ी जातियों को ज्यादा से ज्यादा टिकट देने के कारण एवं उनके जनसंख्या के अनुपात में बसपा में बने रहने के लिए 90 के दशक के उतर्राद्ध में मध्य प्रदेश, उप्र के सीमावर्ती इलाकों पर पिछडी जातियां बसपा से जुड़ी एवं अम्बेडकर के विचारधारा को अपनाए। सामंती व्यवस्था एवं मानसिकता से ग्रस्त पार्टियों के एकाधिकार को तोड़ने के लिए बसपा बहुत अच्छा प्रदर्शन कर रही थी।

डॉ अम्बेडकर के बाद कांशीराम एक ऐसे मसीहा के रूप में दलितों के हक के लिए आगे आए। जिन्होने सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से दलितों को सशक्त होने की प्रेरणा दी। दलितों पर जो आए दिन होने वाले अत्याचार, अन्याय, अपमान और उत्पीड़न उंची जातियों और पुलिस द्वारा किया जाता था उसके विरूद्ध दलितों को संगठित किए। कांशीराम संवैधानिक और प्रजातांत्रिक मूल्यों में विश्वास करते थे। उन्होने सभी दलितों को एक छतरी के नीचे लाने का प्रयास किया। जिसमें पिछड़े, एससी, एसटी अल्पसंख्यक आते है जिसे उन्होनें बहुजन समाज नाम दिया, और बहुमत समुदाय भी कहा क्योंकि कुल भारतीय जनसंख्या में इनकी संख्या 85 प्रतिशत है। उन्होंने इस समुदाय के वोट प्रतिशत का आकलन कर इन्हें सताधारी वर्ग बनने के लिए प्रेरित किया।

कांशीराम ने 'मनुवादी' धारणा को गढा एवं जो मनुसंहिता का अनुसरण करते हैं। मनुसंहिता उंच जातियों की सामाजिक संहिता है। कांशीराम इसके कटु आलोचक थे। एक ओर जहां अम्बेडकर भारतीय प्रजातंत्र को संवैधानिक संरचनात्मक सुदृढ़ता प्रदान किए, वही कांशीराम इनको सांगठनिक क्षमता और राजनीतिक दक्षता के साथ संगठन बनाकर हाशिए पर पडे लोगों को राजनीति में शामिल किया तथा उन्हें वैधता भी प्रदान कराई। कांशीराम ने अपने अनुभव एवं विश्वास के आधार पर राजनीति शुरु की, उनका दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट था – जिसकी जितनी संख्या भारी उसकी उतनी हिस्सेदारी। वे भारतीय समाज को दो हिस्सों में बांटते थे –

1. मनुवादी समाज मनु के धर्मशास्त्र पर विश्वास रखने वाला जिसकी भारत में आबादी का 15 प्रतिशत हिस्सा है।

2. बहुजन समाज जो बहुसंख्यक 85 प्रतिशत होते हुए भी मनु वादियों से पीड़ित थे। कांशीराम न ही बहुत अच्छे के एकेडेमिसियन थे न ही अच्छे वक्ता थे। वे कोई महान बुद्धिजीवी भी न थे लेकिन उनकी संगठन क्षमता कमाल अद्‌भुत थी। अपने श्रोताओं को अच्छी तरह समझते थे इसलिए वे अत्यंत सरल भाषा का इस्तेमाल करते थे वाक्यों को दोहराते थे, ताकि

बहुजन समाज अच्छी तरह समझ सके। बहुजन समाज के लोगों को कांशीराम के प्रति गहरी आस्था थी।कांशीराम अच्छी तरह जानते थे कि बिना ऐतिहासिक गौरव गाथा के वर्तमान समय के बहुजन लोगों को प्रेरित नहीं किया जा सकता है। वे अपने प्रशिक्षण शिविर में कहा करते थे– जिन लोगों की गैर राजनीतिक जड़ें मजबूत नहीं है वे राजनीति में सफल नहीं हो सकते।[27] कांशीराम को वैसे समाज में आत्मसम्मान, आत्मगौरव की भावना को भरना था जो सदियों से दलित, उत्पीड़ित उपेक्षित थे। कांशीराम ने ऐतिहासिक गौरवगाथा के लिए हिन्दू महापुरूषों के समानांतर दलित एवं पिछडी जातियों के स्थानीय नायकों का महिमामंडन करना आरंभ किए। लोगों को इनसे जुड़ाव एवं आत्मगौरव का एहसास हुआ। इसके लिए उन्होंने पिरामिडीय स्ट्रक्चर (सारणी–1) तैयार किया। जिसमें दलित नायकों एवं संत पुरुषों का महिमामंडन किया गया।[28]

कांशीराम द्वारा तैयार ढांचा

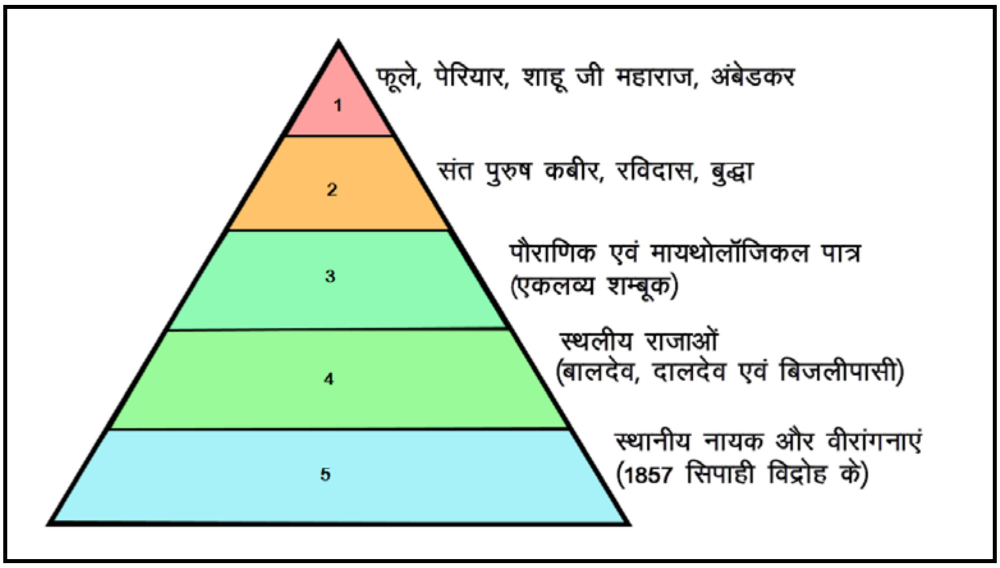

सारणी –1

जिसका संदेश एकदम स्पष्ट था प्रतीकात्मक आवरण जो यह दिखाता है कि शक्ति कैसे संचित होती गयी और अंत में इस पिरामीडिये संरचना के समानान्तर

---

[27] कुमार विवेक, प्रजातंत्र, पेज–74
[28] Narayan, Badri Kanshi Ram, Page 128,

कांशीराम एवं मायावती स्वयं को प्रस्तुत करते हैं। अपनी वीर ऐतिहासिक परंपरा को जोड़ना। कांशीराम की साइकिल यात्रा बहुत ही प्रभावपूर्ण एवं दूरगामी परिणाम वाला था। साइकिल बिना खर्च के चलने वाली वाहन थी। जिसमें कोई खर्च भी नहीं था। साइकिल यात्रा गांव–गांव जाकर बहुजन समाज के लोगों को जागरूक एवं प्रेरित करते थे। कांशीराम का भदेसपन, सपाटबयानी लोगों को आसानी से समझ में आ जाता था। जिस वर्ग को उन्हें समझाना था, उस वर्ग के लिए यही उचित माध्यम था। कांशीराम विशाल अंबेडकर रैली का आयोजन किया करते थे, जिसमें आने वाले को केवल एक रुपया चंदा के रूप में देना होता था वही उनके आय का स्त्रोत था या प्रचार माध्यम का आय था। बहुजन समाज की रैलियों में अस्पृश्य समाज से जुड़े महापुरुषों, वीर योद्धाओं, वीरांगनाओं की पोस्टर, स्मृति चित्र, वीरगाथा की पंफलेट एवं सीडी कैसेट इत्यादि का भी स्टॉल लगाया जाता है। ताकि रैली से लौटते वक्त ये सामान लोग अपने घर ले जाएं और अपने इतिहास पर गर्व करें। जब कांशीराम का सामाजिक एवं राजनीतिक पटल पर पदार्पण हुआ। उस समय दलित जनता अपनी यथास्थिति पर कायम थे। दलित नेता दो खेमों में बंटे हुए थे। महाराष्ट्र में दलित युवा अमेरिका के ब्लैक पैंथर से प्रभावित होकर चरमपंथी बन रहे थे, अपने अंदर के रोष को हिंसा में तब्दील करने को उतावले रहते थे। दलित पैंथर संगठन जोश में अपना होश खो बैठा और दिग्भ्रमित होकर जल्दी खत्म भी हो गया। वहीं दूसरी तरफ दलितों के जो अनुभवी नेतागण थे वे अपनी महत्वकांक्षा, स्वाभिमान एवं लालच की वजह से कांग्रेस में शामिल हो गए। ऐसे समय कांशीराम एकदम नए विचार और ठेठ देसीपन के साथ दलित राजनीति में आए। जिन्होंने दलित मतदाता और दलित राजनीति को मुख्यधारा की राजनीति में लाया। कांशीराम के जीवन के प्रथम फेज में जो 1958–1964 तक का समय है। इस समय जन्म से लेकर नौकरी तक की घटनाओं का क्रम है। उनके जीवन का सबसे निर्णायक पल था जब दीनाभाना के संघर्ष के लिए लड़कर उसको अधिकार दिलाने तक के घटना से कांशीराम बहुत प्रभावित हुए। टकराव और संघर्ष की इस पहली घटना ने कांशीराम पर दो तरह से असर डाला। पहला, संविधान के प्रति उनका विश्वास सुदृढ़ हुआ। क्योंकि इस संर्घष में संवैधानिक संस्थाओं ने साथ दिया। दूसरा, इस घटना के बाद कांशीराम में महापरिवर्तन आया, वे राजनीति एवं

दलितों को जागरूक करना ही उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य बन गया। कांशीराम भारतीय राजनीति में अपनी विचारधारा व उसको मूर्तरूप देने वाले संगठनिक ढांचे की अवधारणा के साथ तैयार थे। जो कि तत्कालीन अन्य दलित नेताओं में नहीं दिखाई देता है। कांशीराम ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। अपनी मां को 24 पेज का पत्र लिखकर यह भी स्पष्ट कर दिया कि उनका कोई परिवार नहीं है, न ही कोई घर बार, रिश्ता नाता। शादी भी न करने का प्रण लिया।[29] अपना जीवन उन्होंने वैसे समाज के लिए त्याग दिया जिसको शक्ति, सत्ता का केंद्र बनाना था, ताकतवर मजबूत बनाना था। कांशीराम ने डॉ0 अंबेडकर की 'एनिहीलेशन ऑफ कास्ट' पुस्तक को तीन बार पढ़ा। दलित पैंथर से भी कांशीराम जुड़े। लेकिन वे जल्द ही समझ गए कि दलित पैंथर का उग्रपंथी होना एवं अंबेडकर के विचारों से भटकना गुमराह कर रहा है। भारतीय लोकतंत्र एवं संसदीय व्यवस्था के अंतर्गत दलित पैंथर उचित नहीं बैठता था। कांशीराम ने दलित पैंथर से भी दूरी बना ली। कांशीराम यह समझ गए थे कि इन संगठनों के नेताओं के बीच आपसी मतभेद बहुत ज्यादा है जिसे सुलझाने में ही सारी शक्ति व्यय हो जाएगी। अहम, अहंकार, लालच का कोई इलाज नहीं है। ऐसे संगठन अपने समाज का उद्धार क्या करेंगे। दलित आंदोलन को नई ऊर्जा एवं दिशा देने के उद्देश्य से कांशीराम ने अपनी स्वतंत्र राह बनाई।

दलित आंदोलन को राजनीतिक आयाम देने से पहले उन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक पहलू पर ज्यादा जोर दिया। राजनीति के द्वारा सामाजिक परिवर्तन करने का निर्णय कांशीराम ने बहुत सोच समझ कर लिया। उन्होंने डॉ अंबेडकर द्वारा रेखांकित राजनीति के महत्व को अच्छी तरह आत्मसात किया। कांशीराम के कार्यशैली में सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना ज्यादा महत्वपूर्ण था। अंबेडकर ने राजसत्ता को अंग्रेजी में 'मास्टर की' कहा था, कांशीराम ने इसे पंजाबी में 'गुरु किल्ली' कहा। कांशीराम संविधान सम्मत मार्ग से शांतिपूर्ण और लोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा राजसत्ता हासिल करना चाहते थे। कांशीराम का शुरुआती संगठन बामसेफ गैर राजनीतिक था। 'पे बैक टू सोसायटी '

[29] निरंजन अलख, नई राह की खोज में, पेज–76

से प्रेरित सरकारी नौकरी करने वाले कर्मचारियों का संगठन था। 6 दिसंबर 1978 को बामसेफ गठन किया गया। इस संगठन का उद्देश्य उत्पीड़ित बहुजन समाज के उद्धार के लिए कार्य करना। सरकारी कर्मचारियों पर सवर्ण समाज द्वारा किए जाने वाले उत्पीड़न को रोकना भी इसका उद्देश्य था। 1978–1984 तक के काल में पूरे विश्व में हिंसा, उग्रवाद, आंदोलन सरकारों के प्रति युवाओं में असंतोष देखने को मिलता है। महाराष्ट्र में दलित पैंथर की सक्रियता चरम पर थी। दलित युवा बहुत आक्रोश में रहते थे। उसी क्रम में कांशीराम ने डीएसफोर दलित शोषित समाज संघर्ष समिति का गठन किया। कांशीराम सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन पर ज्यादा जोर देते थे। कांशीराम ने 1988 तक अस्पृश्यता, अन्याय, असुरक्षा और असमानता के विरुद्ध एक सघन सामाजिक कार्यक्रम चलाया। 1990 तक उन्होंने पूरे देश में सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत 5 कार्यक्रम चलाए थे:– 1.आत्म सम्मान 2.स्वतंत्रता 3.समता 4.जाति का विनाश 5.अस्पृश्यता अन्याय अत्याचार प्रथा का उन्मूलन । कांशीराम ने बहुजन समाज के आर्थिक आधार को भी मजबूत करने का प्रयास किया एवं इसके अंतर्गत भी आंदोलनों का दौर शुरू किया:– 1.किसान मजदूर आंदोलन 2. सफाई मजदूर आंदोलन 3. दस्तकार आंदोलन 4. शरणार्थी आंदोलन 5. भागीदारी आंदोलन। कांशीराम का बहुजन को जागरूक करने वाला मिशन समाज के हर पहलू को छूने वाला था। कांशीराम यह अच्छी तरह से जानते थे कि सामाजिक आंदोलनों के द्वारा बहुजन समाज अपना वोट के महत्व को समझेगा एवं सही नेतृत्व का चुनाव करेंगे। इसलिए वे अपनी पार्टी द्वारा राजनीति में सक्रिय होना चाहते थे और उन्होंने अपनी बहुजन समाज पार्टी का 1984 में गठन किया।

बहुजन समाज पार्टी

बसपा का गठन 14 मार्च 1984 को कांशीराम द्वारा किया गया। यह बहुजन समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक आंदोलन को राजनीतिक शक्ति उपलब्ध कराने का माध्यम था। बसपा राजनीतिक पार्टी के द्वारा बहुजन स्वयं अपने दम पर राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर सकते थे। बसपा का एजेंडा दलितों के लिए था। बहुत कम समय में दलितों के नेतृत्व एवं दलितों की पार्टी राष्ट्रीय पार्टी बन गई। भारतीय राजनीतिक पार्टी सिस्टम में कांग्रेस एवं विपक्ष की परिपाटी चली आ रही थी फिर

क्षेत्रीय पार्टियों का अभ्यूदय हुआ। 1981 में भारतीय जनता पार्टी बनी जो सवर्णों की पार्टी कहलाई। दलितों के लिए एकल पार्टियां भी थी जैसे – शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन (1942), रिपब्लिकन पार्टी (1957), दलित पैंथर (1972) एवं अन्य जो राजनीतिक क्षेत्र में उनमें स्वतंत्र दलित उभार के बीज बोये पर वे भी एक सीमित प्रभाव क्षेत्र एवं काल तक ही सिमटे रहे। बसपा राष्ट्रीय आधार एवं जनाधार दोनों बनाने में सफल रही। कांशीराम स्वयं पंजाब के रामदसिया चमार जाति से थे। उत्तर प्रदेश में संख्या में सबसे ज्यादा चमार थे जो कि पढ़े–लिखे और राजनीतिक रूप से जागरूक थे इसलिए कांशीराम उत्तर प्रदेश में बसपा के उद्‌भव एवं बहुजन आंदोलन को सफल बनाने में कामयाब रहे। परंपरागत रूप से चमार जाति चमड़ा व्यवसाय से जुड़े हुए थे एवं महिलाएं नाड़ काटने की प्रथा से। औपनिवेशिक काल में ही इस जाति के लोग गांव से निकलकर शहरों में आकर बसने लगे थे। गांव के दमन अत्याचार के वातावरण से बाहर निकलकर उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयास जारी रखा। कुछ चमार पश्चिमी प्रभाव में आकर अंग्रेजी एवं अन्य यूरोपीय भाषाओं को पढ़ने लगे। मिशनरी स्कूल उन्हें शिक्षा दिक्षा दे रही थी। आज समाज द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थाएं जाटवों (जो कि चमार जाति की उपजाति है) को शिक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया। स्वामी अछुतानंद जो स्वयं इसी जाति से थे, चमारों को जागरूक एवं शिक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह किया था।

उत्तर प्रदेश के पढ़े–लिखे दलित परिवार अंबेडकरवाद एवं अंबेडकर के विचार से प्रभावित थे। उन्हीं के प्रेरणा से शिक्षा का प्रसार अपने बच्चों में किया। उत्तर प्रदेश में आरपीआई की शाखा 1958 में आगरा में बनाई गई थी। महाराष्ट्र के महार की तरह उत्तर प्रदेश के जाटव अंबेडकर के अनुयायी थे। उन्हें उम्मीद थी कि आरपीआई उनकी समस्याओं और हित को अच्छी तरह से समझेगा। कांशीराम ने रणनीति के तहत दिल्ली से रांची तक चमारों को एक साथ लाने का काम किया। वे दलित ग्रेजुएट्स की पार्टी बनाना चाहते थे। कांशीराम मानते थे कि अगर ब्राह्मणों के बाद कोई जाति सबसे ज्यादा पढ़ी लिखी है तो वह चमारों की है और जागरूक भी है। कांशीराम गंगा से यमुना नदी के बीच की धरती को आर्यावर्त से

चमरावर्त बनाना चाहते थे।[30] 1950 के दशक में नाड़ा मवेशी आंदोलन ने कांशीराम को बसपा के लिए बना बनाया कैडर उपलब्ध करवा दिया। उत्तर प्रदेश में समाजवादी आंदोलन से कांशीराम के लिए जमीन निर्माण में अपनी भूमिका अदा की। राम मनोहर लोहिया का नारा 'पिछड़ी एवं दलित जातियों को 60 प्रतिशत राज्य विधानसभा में शेयर चाहिए। इसी आधार पर कांशीराम ने नारा दिया 'जिसकी जितनी संख्या भारी उसकी उतनी हिस्सेदारी। कांशीराम एवं लोहिया दोनों ने जनसंख्या के महत्व को लोकतंत्र में कितना उपयोगी होता है यह बताया। अर्जक संघ जिसकी स्थापना रामस्वरूप वर्मा ने 1968 में किया। जो कि समाजवादी ग्रुप था एवं लोहिया के विचारों से प्रभावित था। 1970 के दशक में उत्तर प्रदेश में सक्रिय थे। जिसने दलितों खासकर चमारों को सशक्त करने में मदद की। दलित एवं पिछड़ी जातियों को साथ लाने का भी प्रयास किया। अर्जक संघ का मुख्य उद्देश्य था – ब्राह्मणवाद का नाश एवं समतावादी समाज की स्थापना।

कांशीराम राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने को प्राथमिकता दी साथ ही वे सामाजिक बदलाव भी लाना चाहते थे। इसी कारण बसपा केवल राजनीतिक पार्टी न होकर एक आंदोलन एवं मिशन भी है। कांशीराम ने दलितों के अंदर आत्मविश्वास भरने का कार्य किया उसमें आत्मगौरव की भावना को जगाया। ब्राह्मणवादी समाज के खिलाफ विद्रोह करना, शहीद होना, अपने लोगों के बीच भाईचारा बढ़ाने, भगवान की मोह माया से आजाद कर, अपने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना सिखाया। लोकतंत्र में एक व्यक्ति एक वोट के महत्व को बताया। बाबासाहेब द्वारा बताए गए रास्ते पर चलना सिखाया। कांशीराम ने अपने समर्थकों को स्पष्ट रूप से बताया कि जिस संघर्ष की शुरुआत महात्मा फुले, शाहूजी महाराज, बाबासाहेब ने किया था वो अब उनके कंधे पर आ गया है। कांशीराम द्वारा बीएसपी का गठन चुनाव चिन्ह के रूप में हाथी का चयन, नीला झंडा यह सब बहुजन समाज का प्रतीक बन गया। डॉ अंबेडकर कहते थे– जिस समाज को मिटाना है तो उसका इतिहास मिटा दो फिर समाज अपने आप मिट जाएगा। दलितों के साथ यही ब्राह्मणवादी व्यवस्था मनुवादी समाज में सोची समझी साजिश

[30] नारायण बद्री, कांशीराम, पेज–117

के तहत इतिहास मिटा दिया गया। जबकि दलित बहुतजनों का इतिहास बहुत गौरवशाली रहा। इसी कथन पर कार्य करते हुए कांशीराम ने बहुजन के अंदर आत्मसम्मान की भावना को जगाने भरने के लिए कल्चरल पॉलिटिक्स का निर्माण किया जिसके लिए कांशी राम ने निम्न कार्य किए—

1. दलित और पिछड़ी जातियों के वीर पुरुष, नायकों, संत गुरुओं की महत्वता एवं महानता एवं साहस का गुणगान शुरू कर दिए।

2. इन नायकों की कथाओं, गाथागीत एवं पौराणिक कथाओं को गांवों में सुनाया जाने लगा। स्थानीय हीरो का महिमामंडन गीतों द्वारा चौपालों में होने लगा।

3. गरीब, अशिक्षित, कम साक्षर दलितों महिलाओं में इस तरह का कार्यक्रम कर राजनीतिक स्त्रोत के रूप में प्रेरित किया जाने लगा था।

कांशीराम ने राजनीतिक शक्ति बनने से पहले उत्तर प्रदेश में बहुजन सांस्कृतिक आंदोलन द्वारा जबरदस्त तरीके से दलितों, पिछड़ों को मोबिलाइज किया। सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन के बाद ही राजनीतिक आंदोलन एवं सत्ता प्राप्त करना सफल होता है। बहुजन समाज पार्टी की उत्तर प्रदेश में राजनीतिक सफलता मिली। उसके पीछे कांशीराम की स्पष्टवादिता, उनकी सांस्कृतिक सामाजिक आंदोलन ही है। संत रविदास, कबीर जैसे अन्य संतों के एवं अंबेडकर, फुले, शाहूजी महाराज, पेरियार, नारायण गुरु आदि की बुकलेट्स बनाकर जिसे सस्ते न्यूजप्रिंट में प्रिंट किया जाता था। बहुजन लोगों को राजनीतिक रूप से लामबंद करने के लिए रैली एवं चेतना मंडप में कम दामों पर फ्री में बांटा जाता था। कांशीराम एवं अन्य दलित नेता इन महापुरुषों की वीरगाथा, मूर्तियां, तस्वीरों को पोस्टर रूप देकर दलितों में बांटते थे। ये गरीब दलित अपनी दीवार पर चिपका देते थे एवं हिंदू देवी देवताओं के साथ बराबरी का दर्जा देने लगे। कांशीराम का बहुजन आंदोलन उत्तर प्रदेश में 1970—80 के दशक में दलित समाज को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से बहुत जागरूक बना दिया था। जिसका फायदा राजनीतिक पार्टी बसपा बनने के बाद हुआ। बसपा का वोट प्रतिशत बढ़ता चला गया। प्रथम चुनाव से 2007 के चुनाव तक ।

बसपा का सीट और वोट प्रतिशत चुनाव वार

वर्ष	बी.एस.पी सीट.	वोट प्रतिशत
1989	13	9.4
1991	12	9.4
1993	69	11.3
1996	97	11.2
2002	98	23.19
2007	206	30.46

सारणी – 2 (स्रोत–https://eci.gov.in/)

2007 के बाद भी चुनावों में बसपा का वोट प्रतिशत और सीट लगातार कम होता गया। जिसे हम उपरोक्त सारणी से समझ सकते हैं। सारणी–2 में दिए हुए वोट प्रतिशत को देखा जाए तो बहुजन समाज के अंतर्गत दलित एवं ओबीसी वोट अभी भी बसपा के साथ थी। लेकिन प्रदेश राजनीति में समाजवादी पार्टी के कारण ओबीसी एवं मुसलमान वोटर बसपा से नहीं जुड़ पा रहे थे। 1980 के पूर्व चुनावों में दलित, मुस्लिम एवं पिछड़ा वर्ग कांग्रेस के परंपरागत वोट बैंक हुआ करते थे। मंडल कमीशन लागू होने के बाद, समाजवादी पार्टी, बसपा जैसी पार्टियां उत्तर प्रदेश में ज्यादा प्रभावी होने लगी। हिंदुत्व का गढ़ माने जाने वाला उत्तर प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी भी अपना पैर जमाने की कोशिश कर रही थी। लेकिन बीजेपी केवल सवर्ण तक ही सीमित थी। बसपा उत्तर प्रदेश में मायावती के नेतृत्व में चार बार सत्ता में 1995, 1997, 2002, 2007 में आयी। इन वर्षों में अल्प अवधि के लिए बसपा एवं मायावती को मुख्यमंत्री बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वो भी भाजपा के सहयोग से। इस कदम एवं इस बेमेल गठबंधन के लिए बसपा एवं कांशीराम एवं मायावती को राजनीतिक पार्टियों तथा मेनस्ट्रीम मीडिया एवं दलित बुद्धिजीवियों द्वारा काफी आलोचना भी सुनना पड़ा तथा अवसरवादी सत्तालोलुप होने का आरोप लगा। भाजपा और बसपा की विचारधारा बिल्कुल अलग था दो ध्रुव की तरह, बसपा जिसका निर्माण ही हुआ था मनुवाद, ब्राह्मणवाद के खिलाफ। हालांकि कांशीराम 1996 से ही जितनी बार भी बसपा की सरकार बनी भाजपा के सहयोग से ही बनी। कांशीराम के आलोचक मानते थे कि वे मूल्य एवं नैतिकताविहीन राजनीति के जनक

हैं। जिनके अनुसार दलितों को केवल सता मिलनी ही चाहिए। यहां कांशीराम डॉ अंबेडकर से बिलकुल विपरीत थे। कांशीराम पर आधिकारिक विशेषज्ञ विधाभूषण रावत का कहना है कि कांशीराम सामाजिक विरोधाभास और विभिन्न जातियों को अच्छी तरह समझते थे। उनके केंद्रीय चिन्तन का विषय दलित वर्ग तथा राजनीतिक हस्तक्षेप द्वारा उसका सशक्तिकरण करना था। देखा जाए तो कांशीराम ने डॉ अंबेडकर के विचारों को पुर्नजीवित कर उनके व्यक्तित्व को भारतीय राजनीति में केंद्रीय स्थिति में ला दिया। कांशीराम का योगदान भारतीय राजनीति में निचली जाति के पार्टी को राजनीति की मुख्यधारा में स्थान दिलाने का है। जिसे कोई भी दलित नेता नहीं कर पाए थे।

2007 की सफलता के कारण और बहुजन आंदोलन

बसपा सुप्रीमो मायावती ने नीतियों, चुनावी एजेंडा में परिवर्तन। जिस आधार पर बसपा का निर्माण हुआ था। जिसमें कांशीराम ने समाज के पिछड़े हाशिए पर रह रहे जनता को वर्षों से दबाए हुए लोगों को आत्मगौरव एवं संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूक किया। भारतीय लोकतंत्र में उनकी संख्या के अनुसार उनके वोटों के महत्व एवं सत्ता में भागीदारी को बताया। इस बहुजन समाज में दलित, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों को एक साथ लाकर बहुजन समाज का निर्माण किया। 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' का नारा दिया। बसपा का निर्माण ही इस नारे को दलित तक पहुंचाने के लिए हुआ था।

मायावती एवं बसपा

कुमारी मायावती का जन्म 15 जनवरी 1956 को नई दिल्ली में हुआ। वे उत्तर प्रदेश के गौतम बुद्ध नगर की निवासी हैं। मायावती अपने शिक्षा–दीक्षा के बाद परिवार को त्यागकर बहुजन आंदोलन से जुड़ गए। बसपा संस्थापक कांशीराम को राजनीतिक गुरु के रूप में गुरु शिष्य की तरह रहने लगी। कुमारी मायावती जी ने उत्तर प्रदेश के दलित मुख्यमंत्री होने का गौरव प्राप्त है। अपने विचार एवं सख्त निर्णय के कारण इन्हें 'आयरन लेडी' भी कहा जाता है। अपनी युवावस्था में ही उन्होंने अपने कैरियर परिवार सब कुछ त्यागकर ऐसे संस्था और उन लोगों से जुड़

गए जो संघर्षरत थे। जो निर्माण के दौर से गुजर रहे थे। उनकी लोकप्रियता और राजनीतिक जुझारूपन से उत्तर प्रदेश के बहुजन समाज के लोग 'बहन जी' कहकर संबोधित करते हैं। मायावती कालिंदी कॉलेज दिल्ली यूनिवर्सिटी की छात्रा थी। उन दिनों वे ऑल इंडिया लेडीस यूथ स्टूडेंट नामक संगठन में भी सक्रिय रूप से जुड़ी हुई थी। दिल्ली में जाति तोड़ो सम्मेलन का आयोजन हुआ था। जिसका उद्घाटन केंद्रीय मंत्री श्री राज नारायण ने अपने उद्बोधन से किया। भाषण में वे बार–बार हरिजन शब्द का इस्तेमाल कर रहे थे। मायावती भी वहां वक्ता के रूप में उपस्थित थी। उन्होंने अपने भाषण में राजनारायण को बहुत लताड़ा की एक तो आप जाति तोड़ने की वकालत कर रहे हैं। दूसरी ओर अपने उद्बोधन में हरिजन शब्द भी प्रयोग करके अपनी जाति की सर्वोच्चता को दर्शा रहे हैं,जबकि यह शब्द भारतीय संविधान द्वारा प्रतिबंधित है। हरिजन शब्द बोलना संविधान का खुला उल्लंघन है। राजनारायण जैसे नेता इस देश से जातिवाद को कैसे समाप्त कर सकते हैं? इस प्रकार जाति तोड़ो आंदोलन के नाम पर बुलाया गया आज का यह सम्मेलन मुझे तो दलित जातियों के आंखों में धूल झोंकने वाला दिखाई देता है। इस सभागार में उपस्थित सभी लोग राजनारायण मुर्दाबाद, जनता पार्टी मुर्दाबाद के नारे लगाने लगे। जिससे सम्मेलन अव्यवस्थित हो गया। इस घटना की खबर कांशीराम को दी गई। तभी उन्होंने मायावती से मिलने का निश्चय लेकर उनके घर गए। मायावती सिविल सर्विस पास कर आईएएस बनना चाहती थी। कांशीराम ने कहा ऐसा बनो कि आईएएस तुम्हारे आगे पीछे फाइल लेकर खड़े रहे। मायावती के पिता जी प्रभु दयाल अपनी बेटी को अनिश्चितता भरे राजनीति में नहीं जाने देना चाहते थे। लेकिन मायावती कांशीराम के साथ बहुजन आंदोलन से जुड़ने का निर्णय ले चुकी थी। मायावती को उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य एवं दिल्ली की सत्ता तक ले जाने वाले मुख्य राज्य का चार बार मुख्यमंत्री बनने का गौरव प्राप्त है। मायावती को सर्वजन हिताय की सोशल इंजीनियरिंग के माध्यम से 2007 के राज्य विधानसभा चुनाव में पूर्ण बहुमत की सरकार बना पाई। 16 साल बाद उत्तर प्रदेश में एकल पार्टी बसपा ने अपने दम पर सरकार बनाया था। मायावती, कांशीराम की सबसे विश्वास पात्रों में से एक थी। साथ ही उनकी अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता, साहस, प्रशासनिक कौशल समझ, प्रशासनिक क्षमता, वक्ता होना उनकी व्यक्तित्व को

मजबूती प्रदान करता है। 2007 के ऐतिहासिक विजय के बाद वे स्वयं को प्रधानमंत्री उम्मीदवार के रूप में प्रोजेक्ट करने लगी थी। मायावती का मानना था कि पद या सत्ता हमारा लक्ष्य नहीं है, यह केवल एक माध्यम है जिसके द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है। परिस्थिति में बदलाव लाया जा सकता है। हमारा अभियान ऐसे परिवर्तन से है, जिसके द्वारा शोषित और पीड़ित समाज के लोगों को सामान्य जीवन व्यतीत करने का स्वच्छ वातावरण तैयार हो। शिक्षा प्राप्त करने और आत्मनिर्भर होने का अवसर प्राप्त हो। मायावती का मुख्यमंत्री बनना दलित समाज और भारतीय राजनीति दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। वर्षों से दबी कुचली दलित समाज लोकतांत्रिक समाज में अपने वोट के बल पर अपने प्रतिनिधि को चुना। जो उनके विकास के लिए नीतियां बनाए दलित समाज में जागरूकता और आत्मविश्वास भी भर गया कि हम भी साथ हो सकते हैं।

मायावती प्रतीकात्मक रूप से दलित सशक्तिकरण का प्रतीक बन गई। यह सशक्तिकरण हर स्तर पर देखा गया – ग्रामीण स्तर पर, शिक्षा के स्तर पर, कर्मचारियों, नौकरशाही, एवं दलित महिलाओं के सशक्तिकरण पर। मायावती ने अपने समाज के विकास के लिए अनेक योजनाओं की शुरुआत की। इन योजनाओं का कार्यान्वयन सही तरीके से एवं उसका लाभ उन लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने नौकरशाहों को यह भी सिखाया कि आपका काम जनता की सेवा करना है। अंबेडकर ग्राम विकास योजना के माध्यम से दलितों को आवास प्रदान करने एवं स्वच्छ वातावरण, रहन–सहन और आवागमन के माध्यमों को सुधारने का प्रयास किया। इसके लिए व्यापक कार्यक्रम तैयार किए गए और लक्ष्यों को पाने की कोशिश की गई। बसपा सरकार के दलितोत्थान कार्यक्रम में सड़क, हैंडपंप, आवास, शिक्षा पर योजनाओं को मूर्तरूप देने का कार्य किया। अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए भी अल्पसंख्यक कल्याण विभाग की शुरुआत की। अपने प्रशासनिक सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत दलित अधिकारियों के मनोबल को ऊंचा करने के लिए अच्छे पद दिए गए। उनके अंदर सुरक्षा भाव एवं कर्मठता विकसित हो सके। मायावती की प्रशासनिक नीतियां एवं अन्य जन कल्याण कार्यक्रम, मजबूत निर्णय आदि ने कांशीराम से अलग एक पूर्ण क्षमता वाला व्यक्तित्व बना लिया था जो कि हर तरह

दलितों में लोकप्रिय हो रहा था। जिसके बल पर मायावती एक आइकॉनिक नेता, लोकप्रिय और महत्वपूर्ण राजनीतिक नेता समझी जाने लगी। मायावती 1995, 1997, 2002, 2007 में उत्तर प्रदेश की चार बार मुख्यमंत्री बने। उनके कार्यकाल में बसपा सरकार द्वारा यहां के दलितों में मुख्य रूप से राजनीतिक चेतना लाने का जो कार्य किया वह संपूर्ण भारत के दलितों के लिए प्रेरणा स्त्रोत है। सामाजिक परिवर्तन लाने वाले महापुरुषों गौतम बुद्ध, एकलव्य, संत रविदास, कबीर दास, ज्योतिबा फूले, शाहू जी महाराज, पेरियार एवं स्थानीय दलित नायक गयिकाओं का महिमामंडन दलितों को अपने इतिहास पर गौरव से भर दिया गया।

बसपा के सत्ता में आने पर हुए बदलाव

1. दलितों के मनोबल, आत्मविश्वास को बढ़ाया।
2. दलित हित में सरकारी योजनाओं का कार्यान्वयन।
3. आधारभूत सुविधा पर जोर।
4. प्रशासनिक सुधार।
5. मूर्तियों और स्मारकों पार्कों का निर्माण।
6. शहरों, कॉलेजों का नामांतर।
7. दलित महापुरुषों के नाम से मेले का आयोजन।
8. राज्य की कानून व्यवस्था को दुरूस्त करना ।

बसपा शासनकाल की कमियां

1. भ्रष्टाचार
2. संवर्जन के नारे से बहुजन का नारा मुद्दे पीछे होते चला गया ।
3. सवर्ण जातियां सरकार का पार्ट होकर अत्याचार ज्यादा करने लगे थे।

4. ये भी प्रश्न उठा कि स्मृति स्मारक पार्क बनवाने की जगह कॉलेज, विद्यालय, अस्पताल बनवाती तो ज्यादा फायदा होता।

5. एम बी सी जातियां एवं गैर जाटव और दलित जातियां छिटकते चली गई।

6. दलितों के लिए कोइ आर्थिक नीति नही थी।

7. महिला एवं शिक्षा पर विशेष नीतियों का अभाव।

ब्राह्मणों के मिलने से अल्पसंख्यक भी सपा की तरफ चले गये । पहली बार आधुनिक भारतीय राजनीति में ऐसी पार्टी ने राज्य में सत्ता संभाली है जिसका नेतृत्व दलित है एवं पार्टी में दलित लोग भी डोमिनेंट है। उत्तर प्रदेश में 2007–12 मायावाती के नेतृत्व में बसपा की पूर्ण बहुमत वाली सरकार रही है। देखा जाए तो प्रत्येक राजनीतिक पार्टी एवं राजनीतिक घटनाक्रम अपने समय एवं स्थिति से प्रभावित होता है। आत्म आलोचनात्मक विश्लेषण से कोसों दूर रहकर सत्ता के मद में चूर रहता है। बहुजन के नारे को त्यागकर बसपा ने सर्वजन का नारा दिया अपने जितने भी चिरपरिचित नारे थे सबमें ब्राह्मणवादी प्रतीकों का प्रवेश किया गया। बसपा का उदय ही मनुवाद एवं ब्राह्मणवाद के खिलाफ हुआ था। ब्राह्मणों एवं सवर्णों से गठजोड़ लाभकारी तो रहा लेकिन 2012 के बाद बसपा के लिए सर्वजन का नारा बहुत ही विनाशकारी या आत्मघाती सिद्ध हुआ। बहुजन समाज के मन मे अपनी बसपा पार्टी से मोहभंग होने लगा और जल्द ही दूसरी पार्टियों की तरफ शिफट करने लगे । 2009 के आम चुनाव से ही स्थिति स्पष्ट दिखने लगी थी। जब सता में रहते हुए उत्तर प्रदेश में बसपा को केवल 19 लोकसभा सीटें मिली थी।

कांशीराम ने जिस बहुजन समाज को एक छतरी के नीचे लाकर एकत्रित किया था जिसमें सारी पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जाति एवं जनजाति, अल्पसंख्यक एवं समाज के वंचित वर्ग हैं। बसपा नेतृत्व एवं उसकी नीतियों की वजह से वह सभी छोटी–छोटी जातियां बसपा से टूटने लगे। बसपा का आधार सिकुड़ने लगा

एवं बसपा का सीट तथा उसकी वोट प्रतिशत लगातार घटने लगा। जिसे सारणी–3 से समझा जा सकता है:–

बसपा का वोट प्रतिशत

वर्ष	बसपा का वोट प्रतिशत
2007(वि.स.)	33.3
2009(लो.स.)	6.17
2012(वि.स.)	25.95
2014(लो.स.)	4.3
2017(वि.स.)	19.2
2019(लो.स.)	1.2

सारणी – 3 (स्रोतः– https://eci.gov.in/)

2002 के असेंबली इलेक्शन में बसपा को उत्तर प्रदेश में 23.02 प्रतिशत वोट मिले थे। वहीं 2007 में वोट प्रतिशत बढ़कर 33.3 प्रतिशत हो गया। 2007 के राज्य विधान सभा चुनाव में 16 वर्षो बाद बसपा ने पूर्ण बहुमत प्राप्त अपनी सरकार बनाइ। यह भारतीय इतिहास में राजनीतिक रूप से दलित सशक्तिकरण का नया अध्याय था। ये डॉ अम्बेडकर के सपने को मूर्त रूप देने जैसा था। ''राजनीतिक सत्ता'' प्राप्त करना जिसे डॉ अम्बेडकर मास्टर की कहते थे। कांशीराम के बहुजन आंदोलन उनके मेहनत त्याग एवं दलितों पिछड़ों अल्पसंख्यकों को बहुजन छतरी के नीचे लाने का परिणाम था। लेकिन 2007 के चुनावी विजय में जो सबसे प्रमुख भूमिका में रही वो थी सुश्री मायावती। जो कि वर्तमान में बसपा अध्यक्ष है। मायावती ने बहुजन समाज पार्टी को ज्यादा व्यापक बनाते हुए एवं इसमें समाज के सभी उच्च जाति को शामिल करते हुए, एक नए सोशल इंजीनियरिंग फार्मूले का इजाद किया ''सर्वजन हिताय'' यानि कि जिस आधार पर बसपा बनी थी कांशीराम जिस चीजों के विरोध में बसपा का जनाधार तैयार किया था। ब्राम्हणवाद के खिलाफ, मनुवादी व्यवस्था के विरोध में, उन सबको छोड़ते हुए मायावती ने ब्राहमणों, बनिया, राजपूत, सभी जातियों को बसपा में मिलाने के लिए नीतियां बनाने लगीं। दो हजार

के दशक में क्षेत्रीय पार्टियों को बोल बाला था। उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी से ज्यादा मजबूत अवस्था में थी। 2007 से पहले मायावती तीन बार उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बन चुकी थीं। लेकिन तीनों बार भाजपा के सहयोग से बनी थी। कोर वोटर्स का वोट बसपा को मिल जाता था। वोट प्रतिशत ठीक था लेकिन सरकार बनाने लायक सीटें नहीं मिल पाती थी। पिछड़ा वर्ग और मुस्लिम समाजवादी पार्टी की ओर चले जा रहे थे। पहले जो कभी कांग्रेस का बेस वोट बैक होता था दलित एवं मुस्लिम का, वो दोनों पार्टियों सपा एवं बसपा में बंट गए थे। अब सवर्ण बोट बैंक रह गए, चूकि भाजपा एवं उसका नेतृत्व उस समय उतने सशक्त एजेंडा के साथ नहीं थे कि कोई चमत्कार कर सकें। इसलिए सवर्णो के वोट को हासिल करने के लिए बहुजन छोड सर्वजन का नारा दिया गया, बसपा द्वारा कांशीराम की बहुजन हिताय वाली संदेश एवं दलित समाज को एकजुटता देने वाली शक्ति को मायावती ने सर्वजन रणनीति में परिवर्तित कर उसे कमजोर, ढीला कर दिया। उंच वर्णो को शामिल करने से भले ही सत्ता बसपा को मिल गई लेकिन दलित आंदोलन बहुत कमजोर हो गया। क्योंकि दलित आंदोलन का बुनियाद ही ब्राम्हणवाद का विरोध हैं। 2007 के उत्तर प्रदेश के असेंबली चुनाव में बसपा ने जो टिकट बंटवारा किया उसमें सभी जातियों को प्रतिनिधित्व दिया। 138 उॅची जातियों को टिकट प्रदान करने के क्रम में 86 ब्राम्हणों को, 38 ठाकुरों को और 14 बनिया को उम्मीदवारी दिया गया। बसपा ने ओ0बी0सी0 को भी अपने वोट बैंक में शामिल करते हुए 110 टिकट दिए। मुस्लिम और दलितों को 61 और 92 टिकट दिया गया था। चुनावी परिणाम बसपा के प़क्ष में गया सबसे ज्यादा वोट प्राप्त कर उत्तर प्रदेश की सबसे बड़ी पार्टी बनी। 30.46 प्रतिशत वोट प्रतिशत मिला, पूर्ण बहुमत भी प्राप्त हुआ, 402 सीटों में से 206 सीटें मिली। बसपा अपने बहुजन लोगों के प्रति अभी भी प्रतिबद्ध थी। अपना नारा भी इस चुनाव में दिया ''जिसकी जितनी तैयारी उसकी उतनी भागीदारी '' बाद के चुनावों में भी बसपा की यही रणनीति बरकरार रही। पार्टी उन्हीं जाति के उम्मीदवारों को टिकट देती थी जिनकी बसपा के प्रति निष्ठा थी। भाईचारा बढ़ाओ समिति का गठन विधान सभा के हर क्षेत्र में किया गया था। इस विधान सभा चुनाव में बसपा की रणनीति एवं पार्टी के कैडर पर पकड़ बहुत सराहनीय रही। डायरेक्ट जनता से

जुड़ाव का कोई माध्यम पार्टी नही था। चाहे वे किसी जाति समुदाय के हो। 2009 में 15वीं लोकसभा आम चुनाव संपन्न हुआ, इस चुनाव परिणाम ने बसपा सुप्रीमों के मनसूबों पर पानी फेर दिया। 80 लोक सभा सीटों वाले राज्य उत्तर प्रदेश में बसपा शासित प्रदेश से सत्ताधारी पार्टी को मात्र 20 सीटें ही मिल पाई। यह कु० मायावती के सर्वजन के नारे का पहला झटका था। 2007 के पूर्ण बहुमत की सरकार बनाने के बाद ज्यादातर राजनीतिक विषेशज्ञ यही कयास लगा रहे थे कि 2009 के लोकसभा चुनाव मायावती के इर्दगिर्द ही रहेगी। लेकिन चुनाव परिणाम चौकाने वाला था। 2004 के चुनाव से केवल एक ही सीट की बढ़ोत्तरी हुई। मायावती के सर्वजन की नीति से बसपा ने सत्ता सुख प्राप्त किया लेकिन केवल सत्ता एवं पांच साल के पूर्ण बहुमत की फ्री हैंडेड सरकार के अलावा दलित आंदोलन को इस सोशल इंजीनियरिंग से नुकसान ज्यादा हुआ। बसपा का भी जनाधार 2007 के बाद के सभी चुनावों में लगातार गिरता चला गया। सवर्ण जातियां, अति पिछड़ी जातियां, गैर जाटव, जातियां बसपा से अलग होती चली गइ। बसपा अपना मुख्य सामाजिक उद्देश्य से भटक गई। 2017 के यूपी विधानसभा चुनाव परिणाम यही बताता है कि सपा एवं बसपा जो कि एक के बाद एक क्रमशः यूपी में अपना शासन सत्ता चला रहे थे। उसको खत्म करके भाजपा आश्चर्यजनक रूप से उत्तर प्रदेश में अपनी जीत दर्ज कर ली है। जहां पहले यह माना जाता था कि बीजेपी ब्राह्मणवादी हिन्दूत्व पार्टी है और मुस्लिम हमेशा बीजेपी को हराने के लिए वोट करती है सारी अटकलों को मिटाते हुए भाजपा ने अप्रत्याशित जीत दर्ज की है। 2017 के विधानसभा चुनाव में बसपा ने मात्र 19 सीटों पर ही अपनी जीत दर्ज कर पाई। अनुसूचित जाति प्रभावी इलाकों में भी बीजेपी ने 84 प्रतिशत सीट जीत कर और 41 प्रतिशत वोट प्राप्त कर बसपा को जबरदस्त झटका दिया है। सीटों पर विजयी होना यही दिखाता है दलित बहुजन लोगों ने एकमुश्त वोट हिन्दू दक्षिण पंथी पार्टी बीजेपी को दिया है। बसपा उन सीटों से भी हार गई जो एस.सी. रिजर्वड सीट थी। भाजपा की यह जीत बसपा के लिए बहुत ज्यादा नुकसानदायक रहा। 2012 के बाद से बसपा उत्तर प्रदेश में लगातार अपना जनाधार खो रही है।

2012 के चुनाव में बसपा ने 75 टिकट ब्राम्हण उम्मीदवार को दिया, दलित ब्राम्हण गढबंधन पर पुनः विश्वास करते हुए। जबकि 2009 के लोकसभा चुनाव में ब्राम्हण वोटरों ने बसपा को वोट नहीं दिया था और 80 में से 60 या 70 सीट मायावती के जीतने का सपना पुरा नही हो पाया। फिर भी बसपा ने 2012 के विधान सभा चुनाव में इस ब्राम्हण दलित गढबंधन पर विश्वास किया और उनको हार का सामना करना पड़ा। बसपा महज 80 सीटों पर सिमट गई। स्पष्ट रूप से सीटों के बंटवारा को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 2017 के चुनाव में बसपा को सोशल इंजीनियरिंग रणनीति 'दलित मुस्लिम गढबंधन' था। देखा जाए तो सर्वजन की नीति को अपनाने से 2007 में भले ही मायावती पूर्ण बहुमत की सरकार बना ली थी। जो कि इस समय का राजनीतिक विवशता थी क्योंकि सपा, भाजपा, कांग्रेस सभी अपनी कमियों से जूझ रहे थे। लेकिन समग्र रूप से देखा जाय तो सुश्री मायावती का बहुजन से सर्वजन की ओर जाना बसपा एवं दलित आंदोलन दोनों के लिए आत्मघाती सिद्ध हुआ। शुरू–शुरू में निम्न जातियों की जनता ने बसपा को समर्थन दिया लेकिन इस पार्टी में उचित महत्व न देने एवं पार्टी में एक ही दलित जाति के प्रभुत्व से ये जातियां बसपा से छिटकने लगी। मायावती ने बहुजन समाज पार्टी की बेहतरी के लिए इसको सभी जाति, धर्म, की पार्टी बनाकर इसका स्वरूप बृहद करना चाहा। शुरूआती सफलता भी मिली लेकिन बहुजन ही इस पार्टी से अलग होने लगे।

बसपा के 2007–2012 तक का शासन काल दलित गौरव का प्रतीक है। दलित अब शासक वर्ग में आने लगे। दलितों की बस्तियों में स्वाभिमान एवं विरोध की आवाज आने लगी लेकिन इस शासनकाल के बाद दुबारा वो उचाई नही हासिल करना। बसपा एवं दलित आंदोलन दोनो के लिए निराशाजनक था। इस असफलता के निम्न कारण हैं.–

1. बसपा शासनकाल के दौरान सार्वभौम आर्थिक योजना नहीं बना पाई। दलितों के उत्थान के लिए योजनाएं थी लेकिन उसका प्रभावकारी कार्यान्वयन नहीं हो पाया। शीर्ष नेतृत्व एवं पार्टी के अन्य नेताओं पर भयंकर भ्रष्टाचार का आरोप लगा। जो जांच का विषय बना हुआ है।

2. आइडेंडिटी पोलिटिक्स पर ही केंद्रित रही मतलब केवल दलितों के आत्मगौरव, आत्मसम्मान के बात तक ही सीमित करना। दलितों के आर्थिक सशक्तिकरण रोजगार व शिक्षा स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए नाम मात्र का प्रयास किया गया। बसपा सभी दलितों को अपने पार्टी में यथोचित स्थान नही दे पाई। केवल एक खास दलित जाति ही जो प्रारंभ से थोड़े बेहतर स्थिति में थे दलित सत्ता वर्ग के प्रतिनिधि बने रहे। गरीब निर्धन दलित जाति जिसमें कि पासी, वाल्मिकी, बसफोड,नट, मुसहर आदि जातियों का समुचित विकास एवं प्रतिनिधित्व नही हो पाया। कांशीराम जहां अति पिछडा वर्ग को बहुजन समाज पार्टी से जोड़ने के लिए लगातार सक्रिय रहे। 2007के बाद बसपा से ये वर्ग अलग होता चला गया। क्योंकि पार्टी में इन नेताओं का प्रभाव कम होते चला गया था ये पार्टी से अलग हो गए निकाल दिए गए। ये ऐसी जातियॉ थी जो हमेशा से बहुजन समाज पार्टी वोट बैंक माने जाते थे। जैसे– राजभर, मल्लाह आदि ।

उत्तर प्रदेश में बीजेपी एवं आरएसएस ने जमीनी स्तर पर 2014 के चुनाव को जीतने के लिए गैर जाटव दलितों को बहुत मोबिलाइज किया, एवं हिन्दूत्व की राजनीति के तहत करते रहते हुए व्यवस्थित रूप से दलितों के स्थानीय देवी देवताओं को हिन्दू धर्म से जोड़कर आत्म सात करते चले गए। समरसता सम्मेलन का आयोजन किया। जिससे गैर जाटव दलित भाजपा की ओर होते गए। बसपा अतिउत्साह में स्वयं अपने सोशल इंजीनियरिंग को सर्वजन पार्टी मानने लगी जिससे दलित वोटर्स उपेक्षित हो रहे थे। बसपा में शीर्षस्थान या तो गैर दलित के पास था या मुस्लिम के पास अपनी ही पार्टी में दलित अपने आपको बेगाना समझने लगे। दलितों का न तो कोई प्रतिनिधि ही था ना ही वे किसी कार्य की शुरूआत कर सकते थे। मायावती से मिलने के लिए भी कार्यकर्ताओं को मुश्किल होता था। मायावती के सर्वजन वाले नियम से गैर जाटव दलित, एमबीसी, बीएसपी से छिटकने भागने लगे। मायावती द्वारा विधायकों एवं मंत्रियों को निकालना भी गलत संकेत दिया। साथ ही पैसे लेकर टिकट देने का हो हल्ला भी बसपा के जनाधार को कम करते गया। 2014 का चुनाव मोदी बनाम अन्य थ। नरेन्द्र मोदी ने 15 साल

तक गुजरात के मुख्यमंत्री के शासनकाल में अपनी छवि ईमानदार, वक्ता, विकास पुरूष की छवि गढ़ी थी। नरेन्द्र मोदी का व्यक्तित्व, भाजपा का विकास गर्जना, सभी को रोजगार, नए युवा मतदाताओं का जुड़ना ये सभी फैक्टर एक साथ काम कर गया और 2014 में भारत में भाजपा की पूर्ण बहुमत से शासन आ गया। जिसे दक्षिणपंथी हिन्दुत्व वादी पार्टी माना जाता था। पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की तुलना में मोदी की भाषणशैली लोगों से संवाद कायम करना, आक्रामकता एवं विकास तथा रोजगार देने का भरोसा भारत के मतदाताओं खासकर युवा मतदाताओं को बहुत प्रभावित किया साथ ही हिंन्दूत्व के एजेण्डे को मजबूती से पेश करना, पाकिस्तान के खिलाफ उनकी भाषा, राष्ट्रवाद ये सब कुछ ऐसे संवेदनशील मुद्दे थे जो विगत दस वर्षो से भारत के नेताओं की भाषण से गायब थे। जब मोदी अपनी धुआंधार चुनावी प्रचार रैलियों में इन मुद्दों पर बोलते थे तो तुलनात्मक रूप से अन्य नेता विपक्षी नेताओं से ज्यादा प्रभावी होता था।

वहीं दूसरी तरफ भाजपा की सामाजिक सांस्कृति संगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक सघं पूरी ताकत से उत्तर प्रदेश में अपना आधार तैयार कर रहा था। दलितों, एससी ओबीसी पिछड़ा वर्ग सबको ंलुभाने के तरीके आजमाए जा रहे थे। दलितों को हिन्दु से जोड़ने के लिए समरसत्ता सम्मेलन रात्रि भोज, दलित के घर खाना खाना जैसे कार्य किए जा रहे थे। जाति आधारित छोटी–छोटी पार्टियों को भाजपा में मिलाने का काम बीजेपी बहुत बारीकी से कर रहे थे। आरएसएस सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा दलितों एवं एमबीसी में हिन्दू धर्म के प्रति प्रेम की भावना भर रहे थे। ऐसे बौद्ध भिक्षु बनाए जा रहे थे जो दलितों को भाजपा के प्रति मोबिलाइज कर सके।

वहीं सपा जो उस समय सत्ता में थी अपनी आपसी पारिवारिक झगड़ों में उलझी हुई थी, जो प्रदेश का सबसे बड़ा वोट बैंक है दलित व पिछड़ा वर्ग उसके लिए इनके पास कोई एजेंडा नही था। बहुजन समाज पार्टी अपने दलित ब्राम्हण गठबंधन के सोशल इंजीनियरिंग से आगे सोच ही नही पा रही थी। मोदी के विकास वाले नारे को उसके पास कोई तोड़ ही नहीं था। जब सवर्णो की अपनी पार्टी भाजपा है ही तो ब्राह्मण एवं अन्य सवर्ण बसपा को क्यूं वोट देगा। बसपा

सुप्रीमो को 2009 के चुनावी परिणाम के बाद ही अपनी सर्वजन वाली रणनीति में संशोधन लाना चाहिए था। ब्राम्हण पंरपरागत रूप से बीजेपी के वोटर है। जब मोदी लहर के साथ बीजेपी के जीतना निश्चित था तो वो बसपा को क्यों वोट देंगे। बसपा प्रमुख समय एवं चुनावी आधुनिकता को भी नही समझ पाई। सूचना प्रसार एवं इंटरनेट के इस दौर में हर वर्ग के लोगों की उम्मीदें महत्वाकांक्षाए बढ़ने लगी हैं। लोग उन्हीं नेताओं से ज्यादा प्रभावित होते हैं जो इनके साथ कम्यूनिकेट करते है। ये न कि जनसंख्या के हिसाब जातिवार वोट प्रतिशत बंद कमरे में अंकगणित कर सीट का बंटवारा हो जाए और वोटर्स जीता देगें। पारदर्शिता, खुलेपन के दौर में लोग अपने नेता को सुनना चाहते हैं। सभी जाति वर्ग में एक मध्यम वर्ग बन रहा है। जिसकी महत्वकांक्षाएं हर तरह की होती है। राजनीतिक रूप से ये वर्ग सबसे ज्यादा जागरूक होता है। इन लोगों ने बीजेपी को वोट किया। श्री नरेंद्र मोदी के विकास के नारे पर भरोसा जताया।

मायावती की ओबीसी एमबीसी के लिए नीतियां

बसपा यह भी बताने में असफल रहीं कि उस पार्टी के अंदर दलित सुरक्षित है। बसपा यह निर्धारित करने में असफल रही कि वो वही पार्टी थी जो दलितो के हितों की रक्षा करती थी। बसपा के बहुत से पूर्व नेता जो कि अब बसपा से बाहर कर दिए गए वे भी महत्वपूर्ण हैं, उन्होंने पार्टी छोड़कर अपनी नई पार्टी बना ली। ये नेता ज्यादातर उत्तर प्रदेश के अत्यंत पिछड़ी जातियों से थे। सोने लाल पटेल, जिन्होने अपना दल बना कर बीजेपी से गढबंधन कर लिया। भाजपा ने वर्तमान में इसकी अध्यक्षा अनुप्रिया पटेल को मंत्री पद दिया है। ओम प्रकाश राजभर जो कि मायावती के वफादार माने जाते थे उन्होने भी अलग होकर भारतीय समाज पार्टी बनाया। आरके चौधरी पूर्व बसपाई मंत्री को निकाल दिया। मसूद, जिन्होने नेशनल लोकतांत्रिक हिन्द पार्टी बनाया। राजा राम पाल पूर्व बसपा प्रेसिडेण्ट भारतीय सर्वोदय पार्टी थे सभी पार्टियॉ एक गढबंधन बनाया अधिकार मंच, वंचित पार्टी, लोकप्रिय समाज पार्टी। अभी 2017 के चुनाव से पहले स्वामी प्रसाद मौर्य का पार्टी से अलग होना एमबीसी के एक बड़े नेता का बीजेपी में जाना बसपा के लिए नुकसानदायक रहा।। ये पार्टी से निकाले गए एवं छोड़े गए नेता जिस प्रकार का

इल्जाम बसपा प्रमुख पर लगाते है उससे बसपा के समर्थक क्षुब्ध हो जाते है। क्योंकि बसपा पार्टी से पहले बहुजनों का व्यापक आंदोलन है। कहने को तो बसपा अभी भी पार्टी के रूप में सुदृढ़ है कोई विभाजन नहीं है। लेकिन इससे निकाले गए नेताओं ने अपनी जाति के आधार पर जिन पार्टियों का निर्माण कर दिया है उससे बसपा के जनाधार को ही नुकसान हुआ। केवल जाटवों एवं चमारों की पार्टी बन कर रह गईं बसपा पर ऐसे आरोप अन्य दलित समुदाय के लोग लगाते है। महाराष्ट्र के आरपीआई की तरह जो कि अलग–अलग महारों की विंखडित पार्टी एवं नेताओं के निजी स्वार्थ के कारण मुख्यधारा की पार्टी के गुलाम बन कर रह गइ।

किसी भी प्रकार के कंटेम्परारी सोशल मूवमेंट ने दलित पोलिटिक्स को प्रभावित किया है उत्तर प्रदेश में अन्य विकसित राज्यों की तुलना में विकास कार्य बहुत नीचे है। जिससे सबसे ज्यादा भुक्तभोगी होते है गरीब, निर्धन दलित शिक्षा, स्वास्थ्य नौकरी सबमें यही तबका सबसे ज्यादा झेलता है। एक तो गरीबी उपर से दलित होने का अत्याचार भी झेलना पड़ता है। पुलिस, थाना ,राजनीतिक व्यवस्था कोई स्थानीय स्तर पर साथ नही देता है। सत्ताधारी दलित वर्ग बनने के वावजूद दलितों के हालात में ज्यादा सुधार नहीं आया। 2007–12 के बसपा शासनकाल में ही दलितों पर अत्याचार, बलात्कार के मामले होते ही रहते थे। क्योंकि जो उच्च वर्ग दमन करता था वही बसपा के टिकट से राजनीतिक रहनुमा बन कर आ गए। बहुजन समाज पार्टी एवं उसके नेतृत्व में त्रुटियॉ भी है जो कि युवा दलित, शिक्षित दलित चाहते है कि उन विसंगतियों को दूर किया जाए। पार्टी संरचना को लोकतांत्रिक होना चाहिए । आर.पी.आइ. एवं महाराष्ट्र के दलित राजनीतिक पार्टियां से सबक लेते हुए उत्तर प्रदेश में दलितों की पार्टी बसपा केंद्रीकृत पार्टी है। पार्टी का स्वरूप प्रजातांत्रिक नहीं है। शीर्ष नेतृत्व के विरूद्ध कोई भी आवाज नही उठा सकता। इसलिए यह अन्य सवर्ण पार्टियों की तुलना में अलग है। पार्टी में सेकंड लाइन लीडरशीप की फिलहाल कोई संभावना नजर नही आती। मीडिया में पार्टी के तरफ से कोई प्रवक्ता को नही भेजा जाता है। बसपा के प्रतियोगी पार्टीयों का युवा छात्र सघं है, महिला विंग है लेकिन बसपा में इस तरह का कोई संगठन नहीं है।

वर्तमान समय में बामसेफ है वो भी कई धड़ों में विंखडित है। जिसका यह कारण है कि दलित नेता, दलित लोग बहुत थोड़े के लिए धोखा दे देते है। पार्टी के लिए कमिटेड नही होते। अभाव में रहने के कारण बहुत थोड़े से प्रलोभन में ही फंस जाते है। बसपा प्रमुख पर यह आरोप भी लगाया जाता है कि तीसरी राष्ट्रीय पार्टी बहुजन समाज पार्टी है जिससे वे एक राष्ट्रीय दलित नेता है। लेकिन फिर भी वे संपूर्ण दलितों का, दलित आंदोलन दलित राजनीति का प्रतिनिधित्व नही करती है। उनका प्रभाव उत्तर प्रदेश तक सीमित है। पंजाब में सबसे ज्यादा अनुसूचित जाति की सख्या के बावजूद बसपा का पंजाब में कोई रोल नही है। उत्तर प्रदेश से सटे बिहार में बसपा का कोई प्रभाव नही है। बिहार के दलित नेता केंद्र से सत्ताधारी पार्टी के अनुसार एडजस्ट होते रहते है। अब तो बसपा में परिवारवाद भी हावी होने लगा हैं।

भारतीय जनता पार्टी इसी दलित विभाजन का लाभ उठाते हुए फूट डालों और राज करो की नीति का अनुसरण करती रही जिसके परिणाम 2014, 2017 के चुनाव में स्पष्ट रूप से देखा गया है। संपूर्ण भारत में दलित आंदोलन हुआ लेकिन उसमें एकरूपता का अभाव है, जो कि दलितों की पहचान की एकता सुदृढता प्रदान कर सकें। दलितों के स्थानीय आंदोलन हुए है। पूरे भारत के दलित आंदोलन को एक साथ लाने का कभी प्रयास नही किया गया। इसी दरार, विभाजन विभिन्नता का फायदा बीजेपी ने बखूबी उठाया।

दलित आंदोलन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पहले से ज्यादा जागरूक और विस्तारित हो गए हैं। जैसे–जैसे समाज के वंचित वर्ग में शिक्षा का प्रसार होगा वैसे–वैसे अधिकारों के प्रति सजगता एवं अपनी स्थिति के लिए स्पष्टता तेज होती जाएगी। यही दलित आंदोलन के साथ भी हो रहा है। राजनीतिक रूप से बसपा केवल एक राजनीतिक पार्टी ही रह गई है। वह भी एक केंद्रीय जबकि उत्तर प्रदेश में ही दलितों का सामाजिक आंदोलन का स्वरूप स्वतंत्र रूप से अलग–अलग व्यक्तित्व एवं जातियों द्वारा संचालित हो रहा है। उत्तर प्रदेश के ही विभिन्न भागों में दलित जागरूकता लगातार जारी है। लोग मोबिलाइज हो रहे हैं। पश्चिम उत्तर प्रदेश में एवं पूर्वांचल में भीम आर्मी का फैलाव, बुद्धिज्म एवं डॉ अंबेडकर के विचारों का

प्रचार–प्रसार, जाति व्यवस्था की आलोचना ये सब अब खुलेआम संगठित होकर जागरूक दलित कर रहे हैं। शिक्षित दलित अब हर उस व्यवस्था से सवाल करने लगे हैं जो शोषण का जरिया है। स्वतंत्रता के बाद से दलित आंदोलन विभिन्न चरणों से होकर आज की स्थिति में है। जिसमें बहुत सारे सामाजिक, राजनीतिक कृत्यों को अपनाया गया एवं त्याग भी किया गया।

बहुजन मीडिया

बहुजन मीडिया जो अपने समाज के लोगों की पीड़ा उनकी दयनीय स्थिति अत्याचार को लिख सके। समाज के मुखपृष्ठ पर ला सके। क्योंकि मीडिया का जो भी रूप था सब उच्च जातियों का साधन था। बहुजन की आवाज बुलंद करने वाला भारतीय मीडिया नहीं था। डॉ अंबेडकर ने भी अपने समाज के लोगों की बात को एक मंच देने के लिए मूकनायक पत्र को निकाला था। जिसे बाद में बहिष्कृत भारत, जनता, प्रबुद्ध भारत नाम द्वारा रूपांतरित किया गया। कांशीराम ने जनता को जोड़ने के लिए एक समानांतर बहुजन मीडिया स्थापित करने का प्रयास किया। जिसके लिए उन्होंने अपनी स्वयं की पत्रिकाओं तथा अखबारों का प्रकाशन शुरू किया। उनकी पहली पत्रिका 'अनटचेबल इंडिया'(अछूत भारत) का प्रकाशन 1 जून 1972 से शुरू किया।[31] सन 1979 के बाद बामसेफ के साथ मिलकर 'द ओप्रेस्ड इंडिया' नामक मासिक का प्रकाशन शुरू किया। जिसका संपादकीय लेख कांशीराम स्वयं लिखा करते थे। कांशीराम ने अन्य मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू किया जिसमें बहुजन साहित्य, श्रामिक साहित्य, इकोनॉमिक अपसर्ज, आर्थिक उत्थान व बीआरसी बुलेटिन था।[32] कांशीराम ने 'बहुजन संगठक' व 'बहुजन नायक' नाम से क्रमशः हिंदी और मराठी में नई दिल्ली व महाराष्ट्र से दो साप्ताहिकों का प्रकाशन शुरू किया इन बहुजन पत्र–पत्रिकाओं ने बहुजनों को जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलित मीडिया की बात की जाए तो दलितों की जागरूकता को देखते हुए सोशल मीडिया, सबसे बेहतरीन प्लेटफॉर्म मिला है। यह

---

31 कुमार विवेक, प्रजातंत्र, पेज–75

32 वही

पत्र–पत्रिकाओं से भी ज्यादा कारगर विचारोत्तेजक विमर्श का मंच बन गया है। इंटरनेट एवं मोबाइल सुविधा होने की वजह से सूचना का प्रसार भी तेजी से होता है। इसके अलावा अनेक पत्रिकाएं एवं समाचार पत्र भी प्रकाशित होते हैं:– फारवर्ड प्रेस, दलित दस्तक इत्यादि।

उत्तर प्रदेश में दलित साहित्य

राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ स्वाधीनता मिली। भारत स्वतंत्र होने से एक राष्ट्र बना। संविधान का निर्माण किया गया। यह चेतना भारत के प्रत्येक वर्ग तक संचारित हुई। संविधान निर्माण का मुख्य उद्देश्यों में से एक था समाज में स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारा लाना। भारतीय हिंदू व्यवस्था के अंतर्गत अस्पृश्य वर्ग के विकास के प्रत्येक मार्ग को अवरुद्ध रखा गया। संवैधानिक प्रावधानों के तहत कानून बनाकर सबके लिए समानता प्रदान किया गया। समाज के वंचित वर्ग को कानूनन शिक्षा देने का प्रावधान भी है। जिससे अब इस अस्पृश्य समाज के बच्चे भी शिक्षित होने लगे। आजादी के बाद जो राष्ट्र बना, जो संविधान बना, उसने शिक्षा में छुआछूत मिटाकर निचली जातियों को शिक्षा से जोड़ने के लिए अनेक योजनाएं शुरू की। इन सब के संयुक्त प्रभाव से दलित जातियों में शिक्षित, शिक्षक एवं लेखक भी पैदा हुए। औपनिवेशिक काल में हीरा डोम, अछूतानंद जैसी निचली जातियों के लेखक हिंदी साहित्यिक परिदृश्य पर आने लगे। अछूतानंद ने तो उत्तर भारत में दलितों को पोस्टकार्ड पर लिखकर पेटिशंस के माध्यम से अंग्रेजी सत्ता के समक्ष अपने हितों की बात रखने को प्रेरित किया ही, दलित समुदायों के लिए लेखन को प्रतिरोध के एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में विकसित करने की प्रेरणा भी दी। दलितों की अभिव्यक्ति को छापने के लिए प्रिंटिंग प्रेस बैठाये, विधालय बनाए एवं आदि हिंदू छात्रावास बनवाए। अछूतानंद ने उत्तर भारत के दलितों का पहला अखबार निकाला। भारतीय समाज के निचले तबकों में चले इन सभी अभियानों का प्रभाव यह पड़ा कि दलितों में धीरे–धीरे शिक्षित होने एवं लेखन से जोड़ने का बोध प्रबल हुआ। 1980 के दशक के बाद में नए जनतांत्रिक आंदोलनों, मंडल आयोग, आरक्षण बीएसपी का उभार इत्यादि ने भारत में शिक्षा एवं ज्ञान की

प्रक्रिया को जनतांत्रिक करते हुए उससे दलित समुदायों को जोड़ने की दिशा में महत्वपूर्ण संभावनाएं खोलीं।

जब दलित समुदाय में शिक्षा बढी तो पढ़ने वालों की संख्या भी बढ़ी। इस पाठक वर्ग को अपना दलित साहित्य की लालसा भी बढ़ी तो पढ़े–लिखे दलित वर्ग ने स्वयं का इतिहास, वर्तमान लिखना शुरू कर दिया। परिणामस्वरूप आज अनेक महत्वपूर्ण दलित लेखक, कवि, कथाकार, पत्रकार हिंदी क्षेत्र के साहित्यिक परिदृश्य पर सक्रिय हैं। ओमप्रकाश बाल्मीकि, धर्मवीर ,मोहनदास नेमिशराय, श्योराज सिंह बेचैन, तुलसीराम, कंवल भारती जैसे सक्रिय लेखक हुए। उत्तर प्रदेश के छोटे–छोटे कस्बों एवं जिला शहरों में रहकर छोटी–छोटी पुस्तकों के माध्यम से दलितों का राजनीतिक, सामाजिक, वैचारिक एवं सांस्कृतिक साहित्य लिखने वालों का एक बड़ा वर्ग विकसित हो गया है।

गुरुप्रसाद मदन, आर. बी. त्रिशरण, बुध शरण हंस, शांति स्वरूप बौद्ध, समता साहित्य संघ, दलित दस्तक, फारवर्ड प्रेस, सम्यक प्रकाशन जैसे लेखक प्रकाशक मैगजीन अपने पाठकों के लिए न केवल साहित्य लिख रहे हैं बल्कि सामाजिक चिंतन, दलित सौंदर्यशास्त्र, दलित जागरण का साहित्य भी लिख रहे हैं। दलित इतिहासकार भी इतिहास लिख रहे हैं।

डॉ अंबेडकर शिक्षा एवं ज्ञान पर सबसे ज्यादा जोर देते हैं। फूले अंग्रेजी शिक्षा को शेरनी का दूध कहते थे जिसे पीकर कोई भी दहाड़ने लगता था, क्योंकि ज्ञान में शक्ति है। हिंदी में दलितों की छोटी–छोटी किताबें लिखने का श्रेय अछूतानंद को जाता है। चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु, पेरियार ललई सिंह इत्यादि ने ऐसी ही किताबें लिखकर अपने संतो, गुरुओं एवं समाज सुधारकों के वैचारिक साहित्य का अनुवाद कर उसे छापकर उन्हें दलितों के लोकप्रिय ज्ञान में तब्दील करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इन्हीं के हिंदी माध्यम से हिंदी क्षेत्र के दलित वर्गों में अंबेडकर, पेरियार, फुले, शाहू जी महाराज के विचार लोकप्रिय हुए एवं हो रहे हैं।

उत्तर प्रदेश के वाराणसी में एक अलग तरह के पुरस्कार शुरू किए गए हैं। जिसका मकसद बहुजन नायकों को याद करना है। यह प्रयास गांव के लोग

सोशल एंड एजुकेशन ट्रस्ट द्वारा शुरू किया गया है। इसके तहत शिक्षा, पत्रकारिता, लेखन और समाज तथा लोक संस्कृति के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान करने वाले लोगों के लिए तीन सम्मान दिए जाते हैं। इसमें पेरियार ललई स्मृति सम्मान, हीरू राम स्मृति सम्मान, रामप्रताप दास स्मृति सम्मान शामिल हैं। सम्मान का उद्देश्य हिंदी क्षेत्र के बहुजनों के नायक ललइ सिंह यादव और दक्षिण भारत में सामाजिक न्याय के पुरोधा पेरियार के बारे में जागरूकता बढ़ाना है।[33] सम्यक प्रकाशन भी अपने दलित लेखकों को सम्मानित करता है।

उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म आंदोलन

सारनाथ, कुशीनगर , संकिसा ,सिद्धार्थनगर से सटा लुम्बिनी ये सभी जगह गौतमबुद्ध के जीवन से जुड़ी हुइ महत्वपूर्ण घटनाओं से संबंधित है। ये सभी शहर उप्र में है फिर भी यहां बौद्ध धर्म को मानने वालों की संख्या कुल आबादी का 3 प्रतिशत से भी कम है। डॉ अंबेडकर के बौद्ध धर्म में कंवर्जन के पहले से पश्चिमी यूपी में बौद्ध विहार एवं बौद्ध धर्म के उपासक विधमान थे। जो कि दलित समुदाय से थे। आगरा स्थित पूर्वोदय बौद्ध विहार जिसका उदघाटन डॉ. अंबेडकर द्वारा किया गया था।[34] मथुरा भी बौद्ध धर्म का केंद्र हुआ करता था। भदंते बोधानंद महाथेर भारत के वरिष्ठतम बौद्ध भिक्खु थे। उनकी कर्मभूमि लखनउ थी। ये डॉ अंबेडकर, राहुल सांकृत्यायन, भदंते आनंद कौसल्यायन आदि विद्वानों के धर्मगुरू एवं मार्गदर्शक भी रहें। बोधानंद जी ने लखनउ में 156, गौतमबुद्ध मार्ग पर तथा रिसालदार पार्क में दो बुद्ध विहार का निर्माण करवाया। यहीं से उनके सारे सामाजिक एवं वैचारिक क्रियाकलापों का संचालन होता था। डॉ. अंबेडकर यहां आया करते थें। रिसालदार पार्क स्थित विहार में पुराने व अप्राप्य हिंदी,संस्कृत,पालि, अंग्रेजी भाषाओं के धर्मग्रंथों की लाइब्रेरी है। प्रज्ञानंद महाथेर भी इसी विहार से संबद्ध थे। जिन्होने अन्य बौद्ध भिक्खुओं के संग अंबेडकर को नागपुर दीक्षाभूमि में बौद्ध धर्म की दीक्षा दी थी।

---

[33] Forward Press.in

[34] प्रसाद माता, उतरप्रदेश में दलित आंदोलन, पेज–176

उत्तर प्रदेश में महाराष्ट्र की अपेक्षा बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार कम हुआ। यहां के दलित नेतृत्व में भी बौद्ध धर्म में परिवर्तन पर जोर नही दिया गया। गैर जाटव दलितों में हिंदुत्व एवं स्थानीय देवी देवताओं का प्रभाव है। बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के लिए शिक्षित व्यक्तियों का होना आवश्यक है, क्योकि यह तर्क एवं वैज्ञानिकता पर आधारित धर्म है।

अध्याय–षष्ठम्

महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन

अध्याय–षष्ठम्

महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन

महाराष्ट्र भारत के विकसित राज्यों में से एक है। महाराष्ट्र की राजधानी मुम्बई को भारत की आर्थिक राजधानी कहते हैं। शिक्षा एवं प्रति व्यक्ति आय का प्रतिशत यहां उच्च है। साक्षरता दर 82.3 प्रतिशत है।[1] ऐतिहासिक दृष्टि से महाराष्ट्र संपन्न रहा है। यहां का स्थानीय राजसी गौरव शिवाजी मराठों का इतिहास गौरवपूर्ण एव शौर्य वीर गाथाओं से परिपूर्ण है। महाराष्ट्र में चितपावन ब्राह्मण, मराठा एवं निम्न जाति के महारों का शौर्य आधुनिक काल के इतिहास में उल्लेखनीय है। महार जाति जो कि महाराष्ट्र में लगभग सभी जगह पाए जाते हैं। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में महार रेजिमेंट अंग्रेजों के लिए युद्ध लड़ा करते थे। जब महार ब्रिटिश रेजिमेंटों मे सैनिक रूप में नियुक्त होते थे तो उन सभी के नामों के अंत में ''नाक'' शब्द जुड़ा होता था।[2] भीमा कोरेगांव में शौर्य स्तंभ में नाक ही लिखा है। ये सैनिक महार, चमार और नाग जातियों से थे। महाराष्ट्र के दलितों में चेतना का प्रचार–प्रसार उन्नीसवीं सदी से स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। डॉ अम्बेडकर के महाराष्ट्र का दलित आंदोलन विभिन्न रिसर्च स्कालरों एवं बुद्धिजीवियों का रुचिपूर्ण शोध विषय रहा है। जिनमें मराठी शोधार्थियो के साथ विदेशी रिसर्च स्कालरों ने भी बहुत प्रमाणित कार्य किया है। एलिनोर जेलियट, गेल आमवेट, धनंजय कीर, गजभिए, आनंद तेलतुम्बड़े, नरेंद्र जाधव, वसंत मून इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है।

दलित शब्द संस्कृत भाषा से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है टूटा हुआ, टुकड़े–टुकड़े होना, जिसका दलन किया गया है। दलित आंदोलन दलितों पर सदियों से होने वाले वर्ण व्यवस्था पर आधारित अत्याचार का प्रतिफल है। यह मनुष्य को मनुष्य बनाये रखने का प्रतिक्रियावादी आंदोलन है। भारत के उत्तर भाग

---

[1] 2017 जनगणना रिर्पोट

[2] अलेक्जेंडर राबर्टसन, संपादक डा.संजय गजभिरा,भारतीय जातीय व्यवस्था में महार लोक, पेज–83

से पहले दक्षिण एवं पश्चिम भाग में दलित आंदोलन का आरंभ हुआ। क्योंकि यहां दमनकारी उच्च जातियां एवं दलितों के बीच कोर मध्यस्थ जातियां बहुतायत में नहीं थी। यहां के अस्पृश्य जातियों को अपना नेतृत्व भी मिल गया। दक्षिण एवं पश्चिम भारत के दलितों में चेतना का प्रसार भी तेजी से हुआ। ज्योतिबा फुले, गोपाल बाबा वलंगकर, नारायण गुरू, इयोथी दास जैसे समाज सुधारकों ने समाज के निम्न तबकों में चेतना का संचार किया।

उत्तर प्रदेश में औपनिवेशिक काल के बाद अपना स्वतंत्र दलित नेतृत्व प्राप्त हुआ। यहां निम्न जातियों का सामाजिक सांस्कृतिक विद्रोह भारत के दक्षिण पश्चिम राज्यों के जैसा नहीं देखने को मिलता है। इस काउ बेल्ट रिजन में हिन्दुत्व का प्रभाव है। दलित हिन्दू धर्म के प्रभाव एवं संस्कृतिकरण से स्वयं को अलग नहीं कर पाये। इसलिए उतर प्रदेश में 1980 के पूर्व दलित आंदोलन का प्रभाव स्पष्ट नजर नही आता है। सुधा पई जिन्होंने उत्तर प्रदेश के दलित राजनीति पर पुस्तकें लिखी हैं। वे कहती हैं कि दक्षिण एवं पश्चिमी भारत की तुलना में संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) में औपनिवेशिक काल के अंत तक किसी बड़े एवं निरंतर दलित आंदोलन को नहीं देखा गया। छोटे–छोटे, अलग–थलग एवं कमजोर आंदोलनों की श्रृंखला रही। किन्तु वह बम्बई प्रांत जैसे बड़े एवं राष्ट्रीय स्तर का ध्यान नहीं आकर्षित कर पाई। इन आंदोलनों का स्वरूप सुधार वादी अधिक, परिवर्तनकारी एवं जातिविरोधी कम था।[3]

महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन के तुलनात्मक अध्ययन का वर्गीकरण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है:–

1. दोनो राज्यों के दलित आंदोलन का सामाजिक विश्लेषण एवं तुलनात्मक अध्ययन
2. महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश की दलित राजनीति
3. महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का शैक्षणिक एवं साहित्यिक तुलना

---

[3] अंसारी अहमद इफ्तखार, नवीन दलित आंदोलन एवं वर्तमान नेतृत्व, पेज–87

4. सांस्कृतिक अध्ययन तुलनात्मक रूप से
5. महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का प्रभाव
6. दलित आंदोलन का भविष्य

1. सामाजिक आधार पर महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन

महाराष्ट्र में दलितों की जनसंख्या का प्रतिशत 10.11 है। जिसमें जनसंख्यानुसार सबसे ज्यादा प्रतिशत महारों, मांग भाम्बी (चमार) जातियों का हैं। महार जाति महाराष्ट्रियन दलितों का गौरवशाली एतिहासिक परंपरा का वाहक है। जिन्हें सेना में प्रवेश की अनुमति थी। महारों का अपना सैन्य रेजिमेंट था। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में हजारों की संख्या में महारों ने सेना में प्रवेश खासकर रत्नागिरी एवं दक्षिणी मुम्बई के तटीय इलाकों से थे।[4] गोपाल बाबा वलंगकर पेंशन पाने वाले एक सैनिक थे, जो रत्नागिरी से थे जिन्होंने पहला महार समाचार पत्र निकाला था। उन्होंने ब्रिटिश सरकार को पेटिशन दायर कर अस्पृश्य आर्मी को फिर से बहाल करने की मांग की थी।[5] हिन्दू नेताओं से यह बात भी की कि अश्पृस्यों से सार्वजनिक रूप से उचित व्यवहार किया जाए । 1886 में अनार्य दोष परिहार मंडली की स्थापना रत्नागिरी में की। दलितों को गोमांस न खाने एवं शराब नहीं पीने के लिए प्रेरित किया जाता था। सूबेदार बहादुर गंगाराम कृष्णा जी पूना से, सूबेदार सवादकर जैसे कुछ अन्य नाम भी हैं। शिवराम जनबा काम्बले जो कि सबसे ज्यादा पेटिशन डालने वाले महार सैनिक थे। जिन्होंने जनसभाएं, दलितों का नैतिक स्तर उंचा उठाने, रात्रि पाठशाला एवं मंदिर प्रवेश आंदोलन को अपना नेतृत्व प्रदर्शन दिखलाया। 1903 में संमार्ग बोधक निराश्रित समाज, 1904 ई. में नागपूर में फागू जी बापू जी बनसोड़े ने महातरसण मंडल की स्थापना की। इन संगठनों का उददेश्य दलित समाज में शिक्षा, सुधार एवं अपने अधिकारों के प्रति सजग करना था। 1917 ई. में गणेश अक्का जी गवइं ने पूना में डिप्रेस्ड इंडिया एसोसिएशन की स्थापना की। इस तरह महार आंदोलन के लिए डॉ अम्बेडकर की पृष्ठभूमि पहले से

---

[4] Zelliot Eleanor, From Untouchable to Dalits, Page-36

[5] वही।

तैयार थी। एम. सी राजा ने डिप्रेस्ड क्लासेज एसोसिएशन की 1928 में स्थापना की अंबेडकर के विरोधी थे लेकिन 1942 में गठित एससीएफ में शामिल हो गए।

अनुसूचित जातियों का प्रतिशत (2001 की जनगणना के अनुसार)				
महाराष्ट्र (कुल आबादी में 10.2 प्रतिशत) 59 उपजातियाँ		**उत्तर प्रदेश (कुल आबादी में 21.1 प्रतिशत) 66 उपजातियाँ**		
महार	**57.5 %**	**चमार**	**56.3 %**	**कुल अनुसूचित जाति की आबादी का 87.5 %**
मांग	**20.3 %**	**पासी**	**15.9 %**	
भाम्बी	**12.5 %**	**धोबी**		
भंगी	**1.9 %**	**कोरी**		
		बाल्मिकी		
		गोंड, धानुक एवं खटिक		**अजा आबादी का 5%**
		रावत, बहेलिया, खरवार, कोल एवं अन्य 9 उपजातियाँ		**अजा आबादी का 4.5 %**

सारणी–4 (जनगणना–2001 के आधार पर)

उत्तर प्रदेश में दलितों में सर्वाधिक प्रतिशत पश्चिम उत्तर प्रदेश के जाटवों का है। सारणी–1 में दर्शाये गए आंकड़ों के आधार पर । जिसमें चमड़े से जुड़े व्यवसाय के वजह आर्थिक स्थिति उन्नत थी। चौदहवीं सदी में संत शिरोमणि संत रविदास चमार जाति से थे। वे वास्तविकतावादी भक्त कवि थे। चमार जाति समूह अपने आप में विशाल है। इस अपार जनजाति समूह से एक बड़ा जनसमूह योजनाबद्ध तरीके से अलग हो गया। उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित आगरा जनपद से चमार जाति समूह के लोगों से अलग होकर एक

विशाल संगठन बनाया जिसे जाटव जाति में परिवर्तित करने का निर्णय लिया गया। डोनाल्ड स्मिथ के अनुसार जाटव जाति के नामकरण का उल्लेख सन् 1820 में होना बताया गया है।[6] डेविड मंडेलावाउम के अनुसार आगरा के जाटव समाज के लोग गहन परिश्रम, निष्ठा, संकल्प और प्रतिबद्धता बनाइ। जाटव समाज के लोगों ने 1917, 1924 और 1930 में अपने समाज के लिए संगठन बनाई।[7] यह जाति पहले संस्कृतिकरण से अपने को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का कार्य किया। कालांतर में डॉ अम्बेडकर के विचारों का प्रचार–प्रसार उत्तर प्रदेश में इसी जाति समूह ने किया। 80 के दशक के दलित आंदोलन में जाटव जाति ने अन्य दलितों से जुड़कर राजनीतिक पार्टी की आधार रखी। वर्तमान बसपा अध्यक्ष इसी जाति का प्रतिनिधित्व करती हैं।

महाराष्ट्र की अन्य दलित जातियों ने दलित आंदोलन में सक्रिय भूमिका का निर्वहन किया जिनमें चमार, मातंग जातियां प्रमुख थीं। डॉ अम्बेडकर के प्रत्यक्ष प्रभाव एवं उनकी कर्मभूमि के कारण महाराष्ट्र में मंदिर प्रवेश सत्याग्रह, चावदार तालाब सत्याग्रह, महिला जागरूकता अभियान, अश्यपृस्यता एवं शोषण के विरूद्ध एकजुट आंदोलन ये सभी बहुत संगठित तरीके से लड़ा गया। जिसमें दलित समाज की हर जाति व लिंग, उम्र के सदस्यों ने उत्साह से भाग लिया। 1920 से 1956 तक का काल खंड डॉ अम्बेडकर के प्रभाव में सफल दलित आंदोलन का काल था। गांवों से पलायन कर दलित शहर के बस्तियों में रोजी–रोटी के लिए आने लगे। शहरों में गांवों के जैसा अस्पृश्यता, छुआछूत का चलन कम था। इसी से डॉ अम्बेडकर गांव को कूपमंडूक व्यवस्था कहते थे जहां कोई बदलाव और प्रगति संभव नहीं है। महाराष्ट्र में शहरी करण ज्यादा है इसलिए वहां के दलित सामाजिक रूप से ज्यादा विकसित हैं।

उत्तर प्रदेश में औपनिवेशिक काल में कांग्रेस एवं गांधी का प्रभाव समाज के हर जाति पर था। यहां के दलितों का अपना स्वतंत्र आंदोलन और नेतृत्व नहीं था। औपनिवेशिक भारत में दलित आंदोलन का मुख्य चेहरा डॉ अम्बेडकर ही थे। 1913

---

[6] मौर्या ओम प्रकाश, जाटव समाज का उद्‌गम एवं दलित आंदोलन, पेज–19

[7] वही, पेज–21

में जब वे पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण कर बंबई आए तो दलितो के आंदोलन में सक्रिय हो गए जिसकी बनी बनाइ जमीन पहले से उर्वर थी। जिसको उन्होंने अपना नेतृत्व दिया।

गेल आमवेट ने आकलन किया है कि उपनिवेशवादी समाज में दलित आंदोलन को तीन ताकतों से संघर्ष करना था—

1. समाज में ऐतिहासिक रूप से गहरी पैठ जमाए ब्राम्हणवादी हिन्दुत्व के प्रभुत्व के विरोध में।
2. राष्ट्रवाद आंदोलन के प्रभुत्व से जो कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में दलित शोषित जनता के बहुत से आंदोलनों का अपने में समावेश कर इनके प्रजातांत्रिक तथा समाजवादी एजेण्डे को कुंद करने का प्रयास कर रहा था।
3. कम्युनिस्ट आंदोलन से, जिसे प्राकृतिक रूप से इसका साथी होना चाहिए था। लेकिन कम्युनिस्ट दलित आंदोलन को महत्व नहीं दिए वे जाति नहीं वर्ग आधारित थे।

डॉ अम्बेडकर ने दलितों को अपने इतिहास का ज्ञान कराया। उनकी विभिन्न महत्वपूर्ण रचनाओं में दलित की उत्पत्ति एवं हिन्दू व्यवस्था के सामाजिक आधार का गहन विश्लेषण किया। एनिहिलेशन आफ कास्ट, हू वेयर शूद्राज जैसी पुस्तकें दलितों के इतिहास को रेखांकित करती हैं। डॉ अम्बेडकर का मानना था कि जिस भी कौम एवं समुदाय का इतिहास नहीं होता वो सामाजिक रूप से विलुप्त हो जाता है। उत्तर प्रदेश में अछूतानंद ने प्रिंट के माध्यम से दलितों की चेतना को जगाया। डॉ अम्बेडकर के संगठन एआइएसएफ से भी जुड़े रहे। उत्तर प्रदेश में सामाजिक बहिष्कार के रूप में इक्का दुक्का आंदोलन बहुत कम प्रभाव वाले हुए जैसेः— नाड़ा मवेशी आंदोलन।[8]

डॉ अंबेडकर के प्रभाव के बाद दलित आंदोलन में निर्वात की स्थिति बनी हुइ थी। सतर के दशक में कांशीराम का अभ्युदय हुआ। कांशीराम डॉ अम्बेडकर

---

[8] Narayan Badri, KanshiRam, page - 46

एवं फुले के विचारों से प्रभावित थे। कांशीराम का मानना था कि जिस समाज की गैर राजनीतिक जड़ें मजबूत नहीं होती वह समाज राजनीतिक तौर पर कभी सफल नहीं हो सकता है। इस के प्रयास में कांशीराम ने दलित शोषित समाज की गैर राजनीतिक जड़ों को मजबूत करने की दिशा में सफलतापूर्वक कार्य किया। उन्होंने दलित समाज के शिक्षित, नौकरी पेशा वर्ग, जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक थी, जिन्हें डॉ अम्बेडकर के द्वारा दिये गये संवैधानिक संरक्षण के कायदे का एहसास था उनको ''बामसेफ'' नाम के दलित संगठन से सिविल सोसयटी को संगठित किया। दलितों के लिए **'पे बैक टू सोसाइटी'** का नारा दिया। दलितों के इतिहास की पुर्नव्याख्या की जिसमें सभी ऐतिहासिक दलित महापुरूषों एवं दलित वीरांगनाओं का गुणगान किया। ऐतिहासिक दलित गाथा एवं जीवनी को पर्चो में छपवा कर जन–जन तक पहुंचाया। हिन्दू देवी देवताओं की तरह ही ज्योतिबा फुले, सावित्रिबाई फुले, शाहू जी महाराज, सुहेलदेव, चूहड़मल, उदा देवी, झलकारीबाई, मदारी पासी आदि दलित महापुरूषों के वीर पराक्रम गाथा से आम दलित जन के मन में गौरव का भाव जगाया। डी एस 4 सगठन ने ग्रामीण अशिक्षित दलितों में चेतना एवं जागरूकता का संचार करने का अहम कार्य किया। कांशीराम उत्तर प्रदेश के दलितों में सामाजिक आंदोलन में नई अवधारणाओं का प्रयोग किये। बामसेफ अपने सम्मेलनों एवं अधिवेशनों द्वारा सतत जनजागरण अभियान में जुट गया। अम्बेडकर मेला आन व्हील्स, जिसमें साइकिल पर अम्बेडकर से जुड़ी किताबें एवं पैम्फलेट होते थे। ऐसे मेले का आयोजन सालों भर किया जाता। दो पैरों और दो पहियों का कमाल सरीखे कार्यक्रम और विभिन्न प्रकार के स्लोगन से वंचित तबके में अपना संदेश पहुंचाकर सामाजिक रूप से जागरूक बनाया।

अम्बेडकर काल के बाद महाराष्ट्र में आरपीआई एवं दलित पैन्थर्स ने सामाजिक अत्याचार के विरूद्ध अपने आवाज को बुलंद रखा। भीमा कोरेगांव जैसे स्थल पर अपने ऐतिहासिक शौर्य को मनाते रहे । भूमि सुधार, कृषि सुधार आंदोलन में दलित काश्तकारों का साथ दिया।

महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश की दलित राजनीति

20 अगस्त 1932 मैकडोनाल्ड अवार्ड डॉ अम्बेडकर की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। इस कम्युनल अवार्ड को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने अल्पसंख्यकों की साम्प्रदायिक समस्याओं पर अपना फैसला दिया।[9] इस अवार्ड के अंतर्गत दलित वर्ग के लिए प्रांतीय सभाओं में अलग से सुरक्षित सीटें स्वीकृत की गई तथा दलित वर्ग के लोगों को दो वोट देने का अधिकार मिला। दो में से एक वोट का अधिकार अपने दलित वर्ग का प्रतिनिधि चुनने के लिए तथा दूसरा वोट का अधिकार सामान्य चुनाव क्षेत्र से सामान्य प्रतिनिधि चुनने के लिए मिला। अपने प्रतिनिधियों को खुद के वोट से चुनना। दलित स्वतंत्रता के साथ कहीं भी चुनाव में उम्मीदवार बन सकते हैं। लंदन में गोलमेज सम्मेलन में कम्युनल अवार्ड में दलितों के अलावा मुसलमानों,सिखों, यूरोपियनों तथा इसाईयों को भी पृथ्क से वोट देने का अधिकार मिला।[10] दलितों को राजनीतिक अधिकार मिलने की डा अम्बेडकर की यह वैश्विक जीत थी लेकिन गांधी जी इससे बहुत नाराज थे वे दलितों को हिन्दू वर्ण व्यवस्था का हिस्सा मानते थे। दलितों ने अम्बेडकर को अपना सिरमौर बनाया। वहीं दूसरी तरफ भारत में राजनीतिक भूचाल जैसा आ गया। तत्कालीन न्यूज पेपर्स ने डॉ अम्बेडकर की बहुत भर्त्सना की। गांधी जी ने अस्पृश्यों को दिए गए पृथक प्रतिनिधित्व के खिलाफ आमरण अनशन शुरू कर दिया। क्योंकि हिंदू अल्पसंख्यक बन जाते। गांधीजी को जीवनदान देने के लिए डॉ अम्बेडकर को ''पूना पैक्ट'' पर हस्ताक्षर करना पड़ा। एम सी राजा एवं शिवतरकर दलित नेता भी इसमें उपस्थित थे। हिन्दुओं की तरफ से पं. मदनमोहन मालवीय ने हस्ताक्षर किए। 'पूना पैक्ट' के बाद दलित वोटर्स बन गए। दलित समुदाय को राज्य विधानसभाओं में 148 सुरक्षित सीटें मिल गई। डॉ अम्बेडकर ने अस्पृश्यता के सवाल को राजनीतिक महत्व का सवाल बना दिया था। डॉ अम्बेडकर दलितों के सर्वमान्य नेता बन गए और गांधी हिन्दुओं के। पूना पैक्ट के बाद दलितों की राजनीतिक स्थिति वैसी सुदृढ़ नहीं हुई। रिजर्व्ड सीट पर उच्च वर्ग के पिट्ठूनुमा दलित उम्मीदवार अब दलितों का प्रतिनिधित्व करने लगे। डॉ अम्बेडकर दलित वर्ग के सशक्तिकरण के लिए प्रयास किए लेकिन दलितों के ऐसे

---

[9] Zelliot Eleanor, Ambedkars world, page-134

[10] आमवेट गेल, डॉ अम्बेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, पेज–70

नेता बनने लगे जिनका दलित हित से ज्यादा व्यक्तिगत हित सर्वोपरि था। दलितों की समस्याओं का सीधे प्रतिनिधित्व करने के लिए डॉ अम्बेडकर ने 1936 में इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी का गठन किया। इसका उद्देश्य ''जनता'' पत्रिका में प्रकाशित किया गया। जिसका स्वरूप सामाजिक तथा लोकतांत्रिक था। यह समकालीन किसी भी समाजवादी उद्देश्य की भांति प्रगतिशील था। मजदूरों किसान आंदोलनों के मुद्दे जुड़े होने के कारण मार्क्सवादी सिद्धान्त और कम्युनिस्ट के निकट देखा गया।

1937 के चुनाव परिणाम के बाद आईएलपी बम्बई प्रांत में मुख्य विपक्षी उम्मीदवार पार्टी रही। आई एल पी के तहत बम्बई प्रान्त के सभी मजदूर 8 जातियों को जोड़ नहीं पाये। 15 कम्युनिस्ट पार्टियों ने साथ नहीं दिया। 1942 में डॉ अंबेडकर ने शिडयूल्ड कास्ट फेडरेशन की स्थापना की । पूरे भारत में एससीएफ के अनुषंगी शाखाएं बनी।

उत्तर प्रदेश में दलित राजनीति

औपनिवेशिक काल में संयुक्त प्रांत में वैसी कोई दलित राजनीति नहीं थी जैसा महाराष्ट्र में डॉ अम्बेडकर के नेतृत्व में हो रहा था। पश्चिमी भाग में कुछ खास दलित जातियां डॉ अम्बेडकर के प्रभाव से आल इंडिया शिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की शाखा की स्थापना हुई। डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में 1944 में उत्तर प्रदेश अनुसूचित जाति फेडरेशन की स्थापना हुई। 1945–46 के चुनावों में यूपीएससीएफ तथा मुस्लिम लीग का सहयोग प्राप्त हुआ किन्तु अप्रैल 1948 में यह विखंडित हो कांग्रेस में समाहित हो गई।

स्वतंत्रता के बाद दलित पार्टियां

महाराष्ट्र में रिपब्लिकन पार्टी आफ इण्डिया का गठन 1957 मे किया गया। 1967 तक इस पार्टी का प्रभाव उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं गुजरात तक रहा। सारणी–2 द्वारा यह स्पष्ट होता है कि आरपीआई अपना राष्ट्रीय स्वरू पाने में विफल रही।

1960 के वर्षो में आरपीआई के चुनावी परिणाम

वर्ष	सीटें	जीत	जमानत जब्त	वोट प्रतिशत
1962	**122**	**2**	**96**	**3.7**
1967	**168**	**10**	**199**	**4.1**
1969	**187**	**2**	**159**	**3.5**

सारणी–5 (स्रोत – सुधा पई, 2001)

बामसेफ, डी.एस.फोर एवं बसपा का उदय

भारत को सर्वाधिक प्रधानमंत्री उत्तर प्रदेश राज्य ने ही दिया। जब कांग्रेस प्रणाली थी तब उत्तर प्रदेश के आवाम पर कांग्रेस एवं उसके नेताओं का जबर्दस्त प्रभाव था। दलितों ने इंदिरा गांधी के 'गरीबी हटाओ' तथा कांग्रेस के ' बीस सूत्री कार्यक्रम'में शेष कृषि भूमि वितरण, प्रिवी पर्स की समाप्ति तथा बैंकों के राष्ट्रीयकरण को जोरदार समर्थन दिया। इसी क्रम में दलित पैंथर्स भी विखंडित हो गया क्योंकि दलित पैंथर्स के फाउंडर मेम्बर्स' गरीबी हटाओ' का समर्थन करने लगे। उत्तर प्रदेश के प्रभुत्व प्राप्त पिछड़ी जाति खेतिहर किसान संग्रहण की बी के एस/बीएलडी समर्थित राजनीति ने इन योजनाओं को रोक दिया। जातीय उत्पीड़न, अत्याचार एवं आर्थिक संसाधनों पर कुछ नए प्रभु वर्ग का प्रभुत्व ने दलितों का कांग्रेस से पूर्ण रूप से मोहभंग कर दिया और वे कांग्रेस के उत्तर प्रदेश में पतन मुख्य कारण बने। इस समय तक 1970–75 तक स्वतंत्रता के बाद तक संवैधानिक प्रावधानों से नौकरी पेशा करने वाला दलितों का एक लघु शिक्षित वर्ग भी तैयार हो गया था। जो किसी सांगठनिक नेतृत्व के अभाव में भटक रहा था।

आरपीआई में विखण्डन, दलित पैंथर्स का दमन, अम्बेडकरवादी नेताओं का व्यक्तिगत स्वार्थ, कांग्रेस की दलित प्रभुत्वकारी पार्टी एवं दलितों के ऐसे राजनीतिक नेतृत्व का उभरना जो मुख्य धारा पार्टियों के भक्त हों। इन परिस्थितियों मे कांशीराम ने अपनी कड़ी मेहनत, लगनशीलता एवं त्याग से दलितों को एकजुट करना शुरू कर दिया। सर्वप्रथम उन्होंने महाराष्ट्र में प्रयास किया लेकिन महार नेताओं के अक्खड़ रवैये के कारण वे सफल नहीं हो पाए। कांशीराम को उतर

प्रदेश में संभावना नजर आया क्योंकि उत्तर प्रदेश की जनसंख्या में दलितों की जनसंख्या का प्रतिशत ज्यादा था एवं दलितों में एक ऐसा समूह या जाति जो थोड़ा आर्थिक रूप से संपन्न, शिक्षित एवं नेतृत्व की तलाश में था। कांशीराम को उत्तर प्रदेश की धरती उर्वर लगी। यहां कोई संगठित आंदोलन नहीं था। कांशीराम ने बहुजन के छतरी तले दलितों पिछड़ों अल्पसंख्यकों को जोड़ना शुरू किया। कांशीराम ने बामसेफ की स्थापना की। फिर दलित शोषित समाज संघर्ष समिति डीएस 4 एवं 1984 में बहुजन समाज पार्टी की आधारशिला रखी। गौरतलब है कि यही वह समय था दक्षिणपंथी हिन्दू पार्टियां भी उभर रही थीं। भाजपा का गठन भी 1981 में हुआ।

बसपा दलित आंदोलन से उभरी एक पार्टी है। अपने शुरूआती दिनों में 90 के दशक में वोट की शक्ति द्वारा अन्य गैर दलित पार्टियों के साथ शक्ति समीकरण बनाने में सक्षम थी। वर्तमान में वोट प्रतिशत के आधार पर यह तीसरे नम्बर की पार्टी है। बसपा ने अपनी राष्ट्रीय अध्यक्ष के नेतृत्व में चार बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पद को संभाला। 3 अल्पकाल के लिए एवं 2007–2012 का पूर्णकालिक काल बसपा एवं दलित आंदोलन के चरमोत्कर्ष का काल था। इस समय बसपा 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' से नारे को और सर्वसमावेशी बनाते हुए **'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय'** की सफलता को भुना रही थी। बसपा को अगड़ी पिछड़ी सभी जातियों का वोट प्राप्त हुआ था। निःसंदेह भारत के सबसे बड़े राज्य में दलित पार्टी द्वारा दलित महिला मुख्यमंत्री का सतासीन होना दलितों के लिए गौरव की बात है। अजय बोस की पुस्तक ''बहनजी'' में एक उद्धरण से, दलित महिलाएं अब ये कहने लगी कि दलित महिला मुख्यमंत्री बहन कु. मायावती के कारण उनके मान–सम्मान में वृद्धि हुआ है। साथ–साथ खामियां भी चलती रहीं जिसके कारण बहुजन समाज पार्टी दुबारा उस ऐतिहासिक विजय को कभी भी दुहरा नहीं पाई। 2007 के उत्तर प्रदेश विधानसभा में 206 सीटें जीतने के बाद बसपा एवं उसकी राष्ट्रीय अध्यक्ष ने दलितों के सामाजिक न्याय एवं आर्थिक सशक्तिकरण के मुद्दों को दरकिनार करते हुए केवल अल्पकालीन समस्या निराकरण पर ही जोर दिया।[11]

[11] अंसारी इफतखार अहमद, नवीन दलित आंदोलन,पेज–91

बसपा की विचारधारा ब्राह्मणवादी विरोधी विचारधारा पर आधारित है। सुधा पई का विश्लेषण बताता है कि उनका मुख्य उद्देश्य जातिप्रथा के चक्रव्यूह को भेदने तथा ऊंचे वर्गो के शासन को उखाड़ फेंकने के लिए दबे कुचले तथा शोषितों के संगठन के अतिरिक्त रिपब्लिकन पार्टी आफ इण्डिया और बसपा के पास डॉ अम्बेडकर के अतिरिक्त कोई कार्यक्रम या विचार नहीं था। बसपा ने दलित और अम्बेडकरवादी विचारधारा का प्रारंभ किया। लेकिन डॉ अंबेडकर के विचारों को सही मुकाम तक नही पहुंचा पाई, सत्ता प्राप्ति के अतिरिक्त सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक मुददों पर दलितों के लिए कोई मूलभूत कार्य एवं कार्ययोजना नही किया गया। इसलिए दलित पार्टियां कमजोर होती गई। आरपीआई और बसपा ने अम्बेडकरवादी राजनीति को ही आगे बढ़ाया। किंतु बसपा की विचारधारा चरमपंथी थी। अपने शुरूआती दौर में कांशीराम की बसपा की विचारधारा घोर ब्राह्मण विरोधी विचारधारा थी। आंदोलन का स्वरूप ही मनुवाद के विरूद्ध था। जब पहली बार 1993 में सपा बसपा गठबंधन हुआ तो उसका उद्देश्य ही यही था। बसपा को कांशीराम एक प्रेशर ग्रुप के रूप में प्रोजेक्ट करने लगे थे। कांशीराम 'मजबूत नहीं मजबूर सरकार' को बसपा के लिए उचित ठहराते थे ताकि निम्न जातीय पार्टियों को तवज्जो मिले। क्योंकि डॉ अम्बेडकर की कथन अनुसार कांशीराम भी ''राजनीति सत्ता को वह चाभी मानते थे जो किसी भी ताले को खोल सकती है।'' बसपा का विरोध सांस्कृतिक की अपेक्षा राजनीतिक विरोध अधिक है। दलित बहुजन अभिजात वर्ग का निर्माण करना जो बहुजनों की सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक विकास को सुनिश्चित कर सके। बसपा ने आरपीआई के विखंडन के उपरांत राजनीतिक संगठन निर्माण कर कांशीराम एवं मायावती ने जमीनी प्रयास कर सम्मानजनक परिवेश की प्राप्ति की।

उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन के विकास का स्वरूप प्रारंभिक दशक में यानि 1984 से बसपा अग्रणी भूमिका में रहते हुए उच्च वर्गीय हिन्दू समाज तथा पार्टियों से बिल्कुल अलग रही। उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति की वृहद जनसंख्या कांग्रेस पार्टी से अलग बसपा का समर्थक बन गया। बसपा का प्रतिकारी सामाजिक न्याय, हिंदुवादी सामाजिक व्यवस्था के आलोचनात्मक परीक्षण का

प्रतिफल था जो उस समय के भारतीय राजनीतिक तंत्र का हिस्सा बन गया। मंडल कमीशन जनित आंदोलन ने दलितों से अलग अत्यंत पिछड़ वर्ग, ओबीसी की आरक्षित वर्ग को उत्पन्न किया जिसने बसपा को नया चुनाव क्षेत्र दिया। जिसे सदस्य दलितों से ही उत्पन्न हुए थे। बसपा ने इन वर्गो को राजनीतिक सक्रियता का अवसर दिया और उनके प्रतिनिधित्व को लेकर मजबूत सौदेबाजी की स्थिति में आ गया। बसपा कम वोट प्रतिशत से सत्ता का शीर्ष पद नहीं पा रही थी। तब अपने नीतियों एवं विचाराधरा से समझौता करते हुए समाज के उच्च्च वर्णों को आत्मसात करना आरंभ कर दिया। जिसे सोशल इंजीनियरिंग नाम दिया गया। तात्कालिक परिणाम में बसपा को पूर्ण बहुमत मिला लेकिन उसके बाद बसपा का मूल स्वरूप ही छिन्न–भिन्न हो गया।

2006 में कांशीराम बसपा के संस्थापक की मृत्यु के समय तक बहुजन अपनी नीति, कार्यक्रमों विचारधारा को पूर्णतः पलटते हुए सत्ता की होड़ में जिस विचार और लोगों के विरूद्ध पार्टी बनी थी उन्हीं सब को आत्मसात कर पार्टी की विचारधारा का मूलस्वरूप ही खत्म हो गया। कांशीराम की सत्ता की चाहत किसी भी कीमत की नीति में बसपा की शक्ल और दशा ही बदलकर रख दी । जिसका खामियाजा 2012 के बाद बसपा कभी नहीं भरपाइ कर पाई। बसपा का वोट प्रतिशत भी लगातार गिरते चला गया। बसपा एवं उसके नेतृत्व की खामियों ने उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन को भटका दिया। वर्तमान सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों में बसपा एवं समाजवादी पार्टी जैसी बहुजन पिछड़ों की पार्टियों ने अपनी नाकामियों के कारण भाजपा को लाभ पहुचाया। भारतीय जनता पार्टी एवं उसकी वैचारिक मार्गदर्शी संगठन अपने परिश्रम, नेताओं की कर्मठता और परिश्रमी कार्यकर्ता के कारण उत्तर प्रदेश एवं सम्पूर्ण भारत का सत्ता केन्द्र बन गया। भाजपा एवं आरएसएस के कार्यप्रणाली से एवं नेताओं से बहुजन पिछड़े नेताओं को सीखना चाहिए।

बसपा की राजनीतिक स्थितिः— उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव

वर्ष	कुल सीट	जीती हुई सीट	प्राप्त मत प्रतिशत
2002	401(403)	98	23.19
2007	403	206	30.43
2012	403	80	25.95
2017	403	19	22.2

सारणी—6

लोकसभा चुनाव में बसपा

वर्ष	कुल सीट	जीती हुई सीट	प्राप्त मत प्रतिशत
2004	435	19	5.33
2009	509	21	6.17
2014	503	0	4.9
2019		10	1

सारणी—7 (स्रोत— https://eci.gov.in/)

2007—12 का बसपा का शासनकाल अम्बेडकरवादी विचारधारा एवं दलित आंदोलन का स्वर्णिम काल माना जा सकता है। भारतवर्ष के सबसे बड़े प्रांत में दलित महिला द्वारा पूर्ण बहुमत की सरकार बनाना ऐतिहासिक राजनीतिक सफलता थी। इस विधानसभा चुनाव में 16 प्रतिशत अगड़ी जातियों ने, 27 प्रतिशत ओबीसी ने, 17 प्रतिशत मुस्लिम ने एवं 77 प्रतिशत दलित जातियों ने अपना वोट दिया।[12] योगेन्द्र यादव के अनुसार बसपा का जनाधार यह गरीब बनाम अमीर है। क्योंकि बसपा के कोर वोटर दलित गरीब हैं तथा ओबीसी एवं उच्च जाति में से गरीबों ने ही बसपा को समर्थन दिया। सवर्णों का समर्थन इसलिए भी था क्योंकि उस समय राज्य में भाजपा जो कि पहले उच्च वर्णों की पार्टी मानी जाती थी कमजोर थी।

---

[12] Bose Ajay , Behen ji : A political biography of Mayawati, page -23

इस कार्यकाल में बसपा ने सामाजिक असामनता को दूर करने, शांति व्यवस्था को बनाए रखने तथा सर्वजन के सामाजिक न्याय संबंधी घोषणाओं की उपेक्षा की, भ्रष्टाचार के आरोप भी लगे। जिसकी वजह से जनाधार घटा और 2012 में चुनाव हार गई। हालांकि 2009 लोकसभा चुनाव में ही स्पष्ट हो गया था कि सोशल इंजीनियरिंग फेल हो गया। जब मायावती के प्रधानमंत्री बनने का स्वप्न जमीनी रूप नहीं ले पाया। जिसे सारणी 3 एवं 4 द्वारा समझा जा सकता है। 2007 का जनाधार 30.43 प्रतिशत से 2012 में घटकर 25.95 ही रह गया तथा 2014 के लोकसभा चुनाव में यह 4.9 प्रतिशत तक आ गया।

23 मई 2019 को आए 17वीं लोकसभा चुनाव नतीजे में बसपा एवं समाजवादी पार्टी के गठबंधन को प्रदेश भर में कुल 15 सीटों पर जीत दर्ज की है। जो कि आशा के बिलकुल विपरीत साबित हुई। भाजपा की हिन्दुत्व राष्ट्रवादी एजेण्डा एवं श्री नरेंद्र मोदी की विकास की बातों ने जातीय समीकरण पर आधारित आकलन को विफल कर दिया। इस चुनाव परिणाम में भारतीय जनता पार्टी को हिन्दी बेल्ट के सभी राज्यों कर्नाटक एवं महाराष्ट्र में 50 प्रतिशत से अधिक वोट मिले हैं। जिससे यह और भी पक्का हो गया कि जातीय समीकरणों से अलग विकास को वोट मिला। लेकिन क्या जाति आधारित राजनीति सच में समाप्त हो गई है ?

महाराष्ट्र में डॉ अम्बेडकर की पार्टी टुकड़ों में बंटी हुई है। रिपब्लिकन पार्टी आफ इण्डिया (अठावले) के अध्यक्ष रामदास अठावले बीजेपी के सहयोग से राज्यसभा में मंत्री पद पर हैं। बिहार के मुख्य दलित जाति पासवान जिनके नेता रामविलास पासवान एवं उनके परिवार की पार्टी लोक जनशक्ति पार्टी, नेशनल डेमोक्रेटिक एलायंस की सहयोगी है। जिसे 2019 के लोकसभा चुनाव में 6 सीटों पर जीत हासिल हुई है।[13] महाराष्ट्र में डॉ अम्बेडकर के पौत्र प्रकाश आंबेडकर जिन्होंने भीमा कोरेगांव घटना 2018 के बाद अपनी पार्टी बहुजन वंचित अघाड़ी को मजबूती से ओवैसी की पार्टी एआईएमआईएम से सहयोग कर इस 2019 लोकसभा

---

[13] दैनिक जागरण, 24 मई 2019

चुनाव में उतारा।[14] एक भी सीट नहीं निकाल पाई। भारत के किसी भी राज्य में दलित एक वोट बैक ही बनते जा रहे हैं।

सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन

महाराष्ट्र में दलित साहित्य ने दलित संस्कृति को जीवित किया। डॉ अम्बेडकर किसी भी समूह के इतिहास पर जोर देते थे। इतिहास को जिन्दा रखना चाहिये, बनाते रहना चाहिए तब उन्ही आधार पर वर्तमान की नींव पड़ती है। डॉ अम्बेडकर के चिन्तन मनन और दर्शन के पीछे भगवान बुद्ध, संत कबीर, महात्मा फुले के विचारों का प्रभाव था। महाराष्ट्र में दलितों में शिक्षा के प्रचार प्रसार में डॉ अम्बेडकर के प्रयास ने आगे चलकर दलित साहित्य को उन्नत करने में काफी मदद की।

ज्योतिबा फुले ने राजा बलि के न्याय निर्णय को मजबूती से प्रदर्शित किया। साथ ही अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की भी सराहना की और इसे शेरनी का दूध कहा था। ज्योतिबा फुले दलित आंदोलन के प्रमुख नायकों में से एक हैं। वे थामस पेन के मानवतावादी विचारों से प्रभावित थे। 13वीं सदी में महाराष्ट्र में दो सम्प्रदायों का प्रारंभ होता है। एक महानुभव सम्प्रदाय और दूसरा चारकरी संप्रदाय, इस चारकरी सम्प्रदाय में विभिन्न जातियों के संतों ने भक्ति और भक्तिपरक रचनाओं से पददलित जनता में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था। इन संतो में चोखा मेला (महार), संतगोरा (कुम्हार), सेना (नाई), सावता (माली), जनाबाई (दासी) जैसे संतों ने भक्ति का आनंद केवल कलश के दर्शन करके ही कर लिया। चोखा मेला की रचना में अशपृश्यता क वेदना सर्वत्र दिखाई पड़ती है।[15] जनकवियों ने लोकगीतों के जरिए जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता का चित्रण किया।

शूद्रों की शिक्षा तथा नारी चेतना के प्रबल समर्थक ज्योतिबा फुले लिखित 'त्रिज्या रत्न' नाटिका से दलितों को काफी प्रोत्साहन मिला। सांस्कृतिक विरासत दलितों में एकजुटता एवं आत्मविश्वास लाती है। इतिहास पर गौरव करने का भाव

---

[14] दैनिक जागरण, 24 मई 2019

[15] बाल्मिकी ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, पेज–55

पैदा करती है। जैसे वर्तमान पीढ़ियां डॉ अम्बेडकर एवं उनके द्वारा लिखे हुए पुस्तकों दि अनटचेबल्स, हू आर दे? एंड वाई दे वीकेम अनटचेबल्स, बुद्ध एण्ड हिज धम्म, व्हाट कांग्रेस एण्ड गांधी डू विद अटचेबल्स, स्टेटस एंड माइनोरिटीज सहित 12 पुस्तकों की रचना की।

दलित पैंथर्स आंदोलन के समय शिक्षित युवाओं की पीढ़ी ने कविताओं के द्वारा समाज की कुरीतियों एवं अपने मन की भड़ास को लिखा जिनमें विद्रोह का स्वर था। दया पवार, नामदेव धसाल, वामन निम्बालकर, अर्जुन डांगले आदि प्रमुख माने जाते हैं। मराठी भाषा में बहुत सी पत्रिकाएं दलितों को प्रेरित करती रहती हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में डॉ अम्बेडकर से पूर्व के महानायकों ने दलितों के लिए बहुत कार्य किया जिसमें गोपाल बाबा वलंगकर, ज्योतिबाफुले, सावित्रिबाई फुले का नाम उल्लेखनीय है। दलितों को जागरूक करने के लिए डॉ अम्बेडकर ने मूकनायक, बहिष्कृत भारत, जनता एवं प्रबुद्ध भारत जैसे समाचार पत्रों का प्रकाशन किया। पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना की। मिलिन्द कालेज, सिद्धार्थ कालेज की स्थापना की। अनेक दलित लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा एवं वेदना को उकेरा जिसमें कौसल्या बैसंतरी, रूथ मनोरमा है। महाराष्ट्र का दलित आंदोलन सामाजिक सांस्कृतिक और शैक्षणिक रूप से बहुत सशक्त है। दलित संस्कृति एक काउंटर कल्चर के रूप में महाराष्ट्र में विकसित हुआ जिसमें मराठी दलित साहित्य ने सबसे ज्यादा भूमिका निभाई।

बौद्ध धर्म का पुनर्विकास महाराष्ट्र में हुआ जिसे नवबौद्ध कहा गया। महाराष्ट्र का दलित आंदोलन राजनीतिक रूप से अवश्य विखंडित रहा सताशीर्ष की प्राप्ति नहीं हुई। लेकिन मराठी दलित संस्कृति दलित आंदोलन की प्रणेता बना। महाराष्ट्र के दलित बुद्धिजीवी वर्ग देश विदेश में पहचान बना लिए हैं। यहां का बुद्धिजीवी वर्ग अम्बेडकर के विचारों का प्रसार कर दलित डायस्पोरा बना लिए हैं। फिल्मों, रंगमंच, नाटकों, गीत संगीत में दलित आंदोलन दिखलाई देने लगा है। महाराष्ट्र के दलित सभी क्षेत्र में अच्छा काम कर रहे हैं। वहां शिक्षित, डाक्टरों, इंजीनियर्स, प्रवासी भारतीयों की संख्या ज्यादा है। फिक्की की तर्ज पर डिक्की जैसी संस्थाएं

उद्योग एवं व्यापार के क्षेत्र में दलितों का प्रतिनिधित्व कर रही है। मिलिंद काम्बले, कल्पना सरोज जैसे लोग दलित बिजनेस मैन के रूप में पहचान बना रहे हैं।

उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का सांस्कृतिक शैक्षणिक आधार अभी निर्माण की अवस्था में है। मराठी दलित साहित्य से प्रभावित होकर हिन्दी दलित साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी दलित साहित्य का क्षेत्र ज्यादा व्यापक है क्योंकि हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या ज्यादा है। दलित जीवन और उसकी समस्याओं पर गैर दलित, जैसे प्रेमचंद, नागार्जुन, अमृतलाल नागर आदि ने लिखा है। दलित लेखक ओमप्रकाश बाल्मिकी, मोहनदास नैमिशराय, श्योराज सिंह बेचैन, तुलसीराम, धर्मवीर आदि ने अपनी आपबीती एवं अपने अनुभवों को व्यक्त किया है। दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को वर्णित किया हैं रूपायित किया है। अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है। दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।[16]

हिंदी मे दलित साहित्य लिखने की परंपरा नौवे दशक से शुरू होती है। हिंदी दलित साहित्य के उद्‌भव के पीछे नाथ और सिद्ध कवियों मे बहुत सारे कवि शूद्र थे, जिन्होंने अपनी तत्कालीन पीड़ा का परिप्रकाश किया था। संत कवि रैदास ने वर्ण व्यवस्था के खिलाफ रचना की। दलितों में चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया था। कबीर ने भी जाति व्यवस्था के विरूद्ध लिखे। हिंदी दलित कविता मध्य काल के निर्गुण संत कवि रैदास और कबीर से शुरू होकर हीराडोम और अछूतानंद तक आई। वर्तमान समय में दलित साहित्य में कहानियां, उपन्यास, आत्म कथाएं बहुतायत में है। कविता, कहानी उपन्यास, आत्मकथा और आलोचना जैसी विविध विधाओं में कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं गईं। ये साहित्य दलितों की सांस्कृतिक पहचान को बनाये रखते हैं।

---

[16] भारतीय दलित साहित्य, पेज 17

दलित नायकों की मूर्तियां,स्मारक एवं पार्क

कांशीराम ने उत्तर प्रदेश में 70–80 क दशक में बहुजनों को मोबिलाइज करने के लिए स्थानीय जातियों से जुड़े उनके नायकों को उभारना शुरू कर दिया। इन नायकों की वीरता को दलितों के आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव से जोड़ दिया। इनकी वीरता कहानियों पर नुक्कड़ चर्चाएं होती थी। उदाहरण के लिए सुहेलदेव महाराज को सुहेलदेव समाज के ऐतिहासिक वीरता से जोड़ा, मदारी पासी, झलकारी बाई, उदा देवी जैसी वीरांगनाओं को पुर्नजीवित किया गया। जिससे दलित अपने इतिहास पर गर्व कर जुड़ाव महसूस करें। कांशीराम का सिद्धांत था कि जिस समाज की गैर राजनीतिक जड़ें कमजोर होती हैं उसकी राजनीतिक जड़े भी कमजोर होती हैं। उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन की सांस्कृतिक जड़ों को ढूंढने एवं मजबूत करने का काम शुरू किए।

सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन के बाद जब–जब बहुजन समाज पार्टी सत्ता में आई उसने बहुजन समाज के नायकों के नाम पर जैसेः– ज्योतिबा फुले, नारायण गुरू स्वामी, ईवी रामास्वामी, नायकर पेरियार, शाहू जी महाराज, डा. अम्बेडकर , कांशीराम की मूर्तियां एवं इनके नाम पर पार्क, स्मारक, बौद्ध विहारों का निर्माण किया। ये स्थापत्य सांस्कृतिक जड़ों का मजबूत करने का प्रयास है। इन प्रतीकों से दलित चेतना जागृत रहती है। समाज सुधार की भी प्रेरणा मिलती है। सामाजिक रूप से दलितों का इतिहास विलुप्त प्राय ही था। कभी वर्णित ही नहीं किया गया। इन प्रतीकों स्मारकों स्थापत्यों ने दलितों के शासनकाल को पहचान दिया। डॉ अम्बेडकर ने कहा था 'जिस समाज का अपना इतिहास नहीं होता वह समाज कभी शासक नहीं बन पाता है''। क्योंकि इतिहास से प्रेरणा मिलती है। प्रेरणा से जागृति आती है। जागृति से सोच बनती है। सोच से ताकत आती है। ताकत से शक्ति और शक्ति से शासक।[17] हालांकि इन निर्माणों की आलोचना भी हुई कि इनके जगह यूनिवर्सिटीज, अस्पताल आदि बनते तो समाज का ज्यादा कल्याण होता। सत्ताधारी सरकार अपने विचारधारा से जुड़े महापुरूषों का महिमामंडन के लिए सरकारी योजनाओं, शहरों, कालेज, यूनिवर्सिटीज का नाम

17. कुमार, विवेक, बहुजन समाज पार्टी एवं संरचनात्मक परिवर्तन, पेज – 73

इनके नाम पर रखती ही हैं। प्रतीक अधिकतम जनता से कम से कम समय में जुड़ने का माध्यम है।

दलितों में शिक्षा का स्तर

महाराष्ट्र की तरह उतर प्रदेश में दलितों मे शिक्षा का स्तर एवं बुद्धिजीवियों का संगठित वर्ग कम है। उत्तर प्रदेश में संस्कृतिकरण का प्रभाव ज्यादा है। राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का प्रतिशत बढ़ने से दलितों में भी साक्षरता का दर बढ़ा है। शोध कार्यों में भी महाराष्ट्र के दलित एवं डॉ अम्बेडकर पर जितना गहन शोध महाराष्ट्र में हुआ उतना उत्तर प्रदेश में नहीं हुआ है। यहां शहरी आबादी की अपेक्षा ग्रामीण आबादी अधिक है। इस ग्रामीण आबादी में दलितों की संख्या ज्यादा है। जिसे सारणी 8 एवं 9 के द्वारा समझा जा सकता है।

महाराष्ट्र की प्रमुख अनुसूचित जातियों का शैक्षणिक स्तर (प्रतिशत)
(जनगणना–2001)

अनु.जाति का नाम	केवल साक्षर	प्राथमिक से कम	प्राथमिक	माध्यमिक	बोर्ड / इण्टरमीडियट	टेक्निकल / नॉन टेक्निकल	ग्रेजुएट एवं उच्च शिक्षा
चमार	4.3	32.5	26.9	18.8	14.1	0.1	3.3
पासी	5.8	37.9	27.0	16.7	10.5	0.0	2.2
धोबी	4.2	32.1	26.4	19.7	14.3	0.1	3.2
कोरी	4.7	31.8	28.7	19.4	12.6	0.1	2.7
बाल्मिकी	4.3	33.2	30.7	20.2	10.2	0.0	1.4
कुल अनु.जा.	4.6	33.4	27.1	18.5	13.3	0.1	3.0

सारणी – 8

उत्तर प्रदेश की प्रमुख अनुसूचित जातियों का शैक्षणिक स्तर (प्रतिशत)

(जनगणना–2001)

अनु.जाति का नाम	केवल साक्षर	प्राथमिक से कम	प्राथमिक	माध्यमिक	बोर्ड/ इण्टरमीडियट	टेक्निकल/ नॉन टेक्निकल	ग्रेजुएट एवं उच्च शिक्षा
1.महार	2.0	28.2	24.9	17.2	22.1	0.3	5.3
2.मांग	2.8	37.0	29.3	14.1	14.2	0.2	2.4
3.भाम्बी	1.8	26.3	26.7	16.5	22.2	0.7	5.6
4.भंगी	1.8	30.9	33.3	18.8	13.5	0.1	1.6
कुल अनु.जा.	2.1	29.4	26.3	16.6	20.5	0.4	4.8

सारणी–9

उत्तर प्रदेश में कांशीराम की मृत्यु के बाद 2006 के बाद दलित आंदोलन राजानीति केंद्रित हो गई। आंदोलन का सामाजिक सांस्कृतिक स्वरूप कमजोर होते चला गया। 'बहुजन' की परिकल्पना में जिनका समावेश था उनको जोड़ कर रख पाने में बहुजन राजनीति विफल हो गई। कांशीराम की 'बहुजन एजेंडे' को मजबूत करने का प्रयास नहीं किया गया। इस निर्वात को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं उसके समर्पित कार्यकर्ताओं ने हिन्दुत्व राष्ट्रवाद के एजेंडे से भर दिये।

बौद्ध धर्मः– 1956 में डॉ अम्बेडकर के अपने लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म ग्रहण करना, दलितों को धार्मिक स्वतंत्रता देने जैसा था। बौद्ध धर्म ग्रहण करने वालों में मराठी दलितों में महार की संख्या सबसे ज्यादा थी। जिन्हें नवबौद्ध भी कहा जाता है। बौद्ध धर्म स्वतंत्रता समानता एवं भ्रातृत्व लिए मानवतावादी वैज्ञानिक धर्म है। जिसमें शिक्षा का ही महत्व है। महाराष्ट्र में बौद्ध धर्म में दलितों के समावेश से चैत्यों, विहारों का निर्माण बहुत बड़े पैमाने पर हुआ।

मेल्लुसी जिन्होने 'नये सामाजिक आंदोलन' की परिकल्पना की। जिसे बाद में उन्होंने 'कन्टम्परेरी मूवमेंट्स' कहा।[18] 1980 के दशक में अनेक ऐसे सामाजिक आंदोलन हुए जो परंपरागत वर्ग आधारित आंदोलन से अलग थे खासकर थर्ड वर्ल्ड

[18] Hardtmann Eva Maria ,The Dalit movement in india local practices global connections, Page-124

देशों में। उनका मानना था कि ऐसे आंदोलन ज्यादा सामाजिक–सांस्कृतिक है वनिस्पत सामाजिक राजनीतिक होने से। इस मूवमेंट में क्लास की जगह कास्ट आधारित था। जो कि पार्टी पालिटिक्स का एक विकल्प भी बना। नए सामाजिक आंदोलन ने उन सब पूर्वाग्रहों, परंपराओं एवं स्थापित मान्यताओं को चुनौती दी। दलितों ने हिन्दू व्यवस्था के अंतर्गत अपने को सबसे निम्न स्थिति में देखा। फिर ये भी पाया कि वे हिन्दू हैं ही नहीं। हेबरमास ने नए सामाजिक आंदोलान को औपनिवेशिक काल के आंदोलन के संदर्भ में देखा।[19] उत्तर प्रदेश में भगवान बुद्ध का जन्म एवं मृत्यु दोनों से जुड़े स्थल हैं। कपिलवस्तु, लुम्बिनी, श्रावस्ती, सारनाथ जहां उन्होंने धर्मोपदेश, ज्ञान बांटा, कुशीनगर जहां परिनिर्वाण की प्राप्ति हुई, संकिसा–यहां बुद्ध पुनः अवतरित हुए। कौशाम्बी जहां उन्होंने अनेक उपदेश दिये थे। पूरा बुद्ध स्थल होने के बाद भी उत्तर प्रदेश के दलित डॉ अम्बेडकर के धर्म परिवर्तन को ज्यादा विस्तारित नहीं कर पाए। क्योंकि ऐसा बौद्ध भिक्खु वर्ग एवं दलित बौद्ध बुद्धिजीवी वर्ग नही बन पाया जो धर्म को प्रचारित करे।

उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म को अपनाने एवं गौतम बुद्ध के विचारों को प्रसारित करने की आवश्यकता है। बौद्ध धर्म के लिए शिक्षा का प्रसार आवश्यक है। इसकी तार्किकता वैज्ञानिकता किसी अन्य धर्म की अंधविश्वास, पुर्नजन्म को चुनौती देता है। दलित समुदाय के मध्यम वर्ग एवं बुद्धिजीवी वर्ग की यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वे डॉ अंबेडकर के बौद्ध धर्म को जन जन तक पहुंचाए।

तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्षतः यह स्पष्ट है कि महाराष्ट्र का दलित आंदोलन सांस्कृतिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन से आधुनिक है। उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन ने केवल राजनीति सत्ता की प्राप्ति के लक्ष्य के पीछे सामाजिक सांस्कृतिक पहलू को खोखला कर दिया। जिससे दलितों की सभी जातियां आपस में जुड़ कर रह नहीं पाई। यही हाल महाराष्ट्र की भी दलित राजनीति का है।

---

[19] वही।

शोध सर्वे का विश्लेषण

मैंने अपने शोध विषयः डॉ अंबेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों के प्रभाव को अपने इस अध्ययन में महाराष्ट्र एवं उतरप्रदेश के दलित जनों के विचारों के तुलनात्मक विश्लेषण के लिए न सिर्फ उपलब्ध पठन सामग्रियों का अध्ययन किया अपितु इन दोनों प्रदेशों के दलित समुदाय के शिक्षित लोगों का एक सैंपल सर्वे भी किया। इस सैंपल सर्वे के दौरान महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के 50–50 लोगों, जिसमें 30:20 के अनुपात में शिक्षित दलित पुरूष एवं महिलाएं सम्मिलित थें, से उन बिन्दुओं पर मंतव्य मांगा गया जो बिन्दु इस अध्ययन के दौरान हमारे सामने आए थे। इस सैंपल सर्वे से हमें डॉ अंबेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों के महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित जनों पर पड़े तुलनात्मक प्रभाव का विश्लेषण करने एवं अपने शोध की सैद्धान्तिक संकल्पनाओं का परीक्षण करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस शोध सर्वे के दौरान विभिन्न विकल्पों के साथ 23 प्रश्न पूछे गए। इस सर्वे में लोगों को यह अवसर दिया गया कि वे अपने उत्तर का चयन दिए गए विकल्पों से करें या अपना मंतव्य टिप्पणी के रुप में दर्ज करें। इस सर्वे से जो तथ्य सामने आए उन्हें निम्नवत प्रस्तुत किया गया हैः–

1. सर्वप्रथम लोगों से यह पूछा गया कि **सामाजिक तौर पर अपनी पहचान** को किस रूप में व्यक्त कर सकते हैं (ग्राफ 1.1 एवं ग्राफ 1.2) । महाराष्ट्र के 62 प्रतिशत पुरूष एवं 50 प्रतिशत महिलाएं जाति को अपनी पहचान का आधार मानती हैं। जबकि उत्तर प्रदेश में 50 प्रतिशत पुरूष एवं 25 प्रतिशत महिलाएं जाति को अपने पहचान का आधार मानती है। जेंडर को पहचान का आधार बनाने का प्रतिशत उत्तर प्रदेश की महिलाओं में ज्यादा है। महिलाएं व्यवसाय को भी अपने पहचान का आधार मानती हैं।

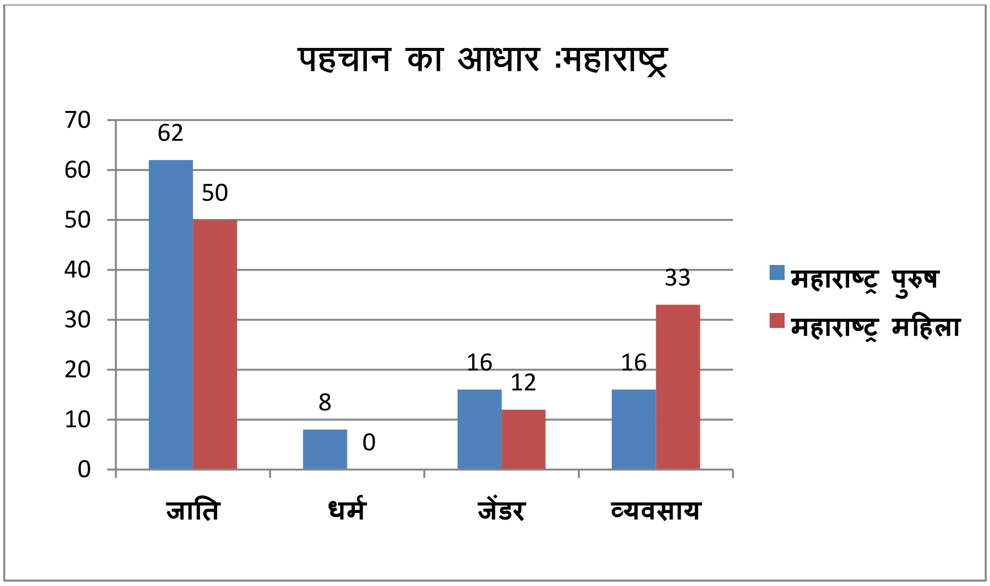

ग्राफ–1.1

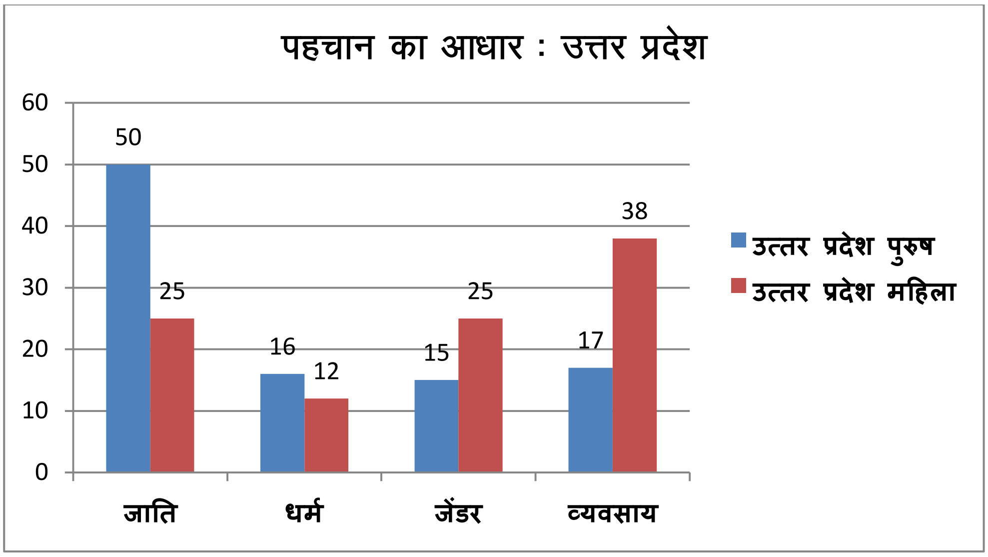

ग्राफ–1.2

2. यह पूछे जाने पर कि डॉ अंबेडकर के विचारों की आपकी जानकारी के क्या स्रोत हैं(ग्राफ 2.1 एवं ग्राफ 2.2) । जिसमें अभिभावक/संबंधियों द्वारा जानने वाले लोगों का प्रतिशत एवं स्वयं पुस्तक पढकर डॉ अंबेडकर के बारे में जानने वाले सबसे अधिक है। गौरतलब है कि दोनों राज्यों में विधालयों एवं कॉलेजों के द्वारा अंबेडकर के विचारों को जानने का प्रतिशत सबसे न्यून है।

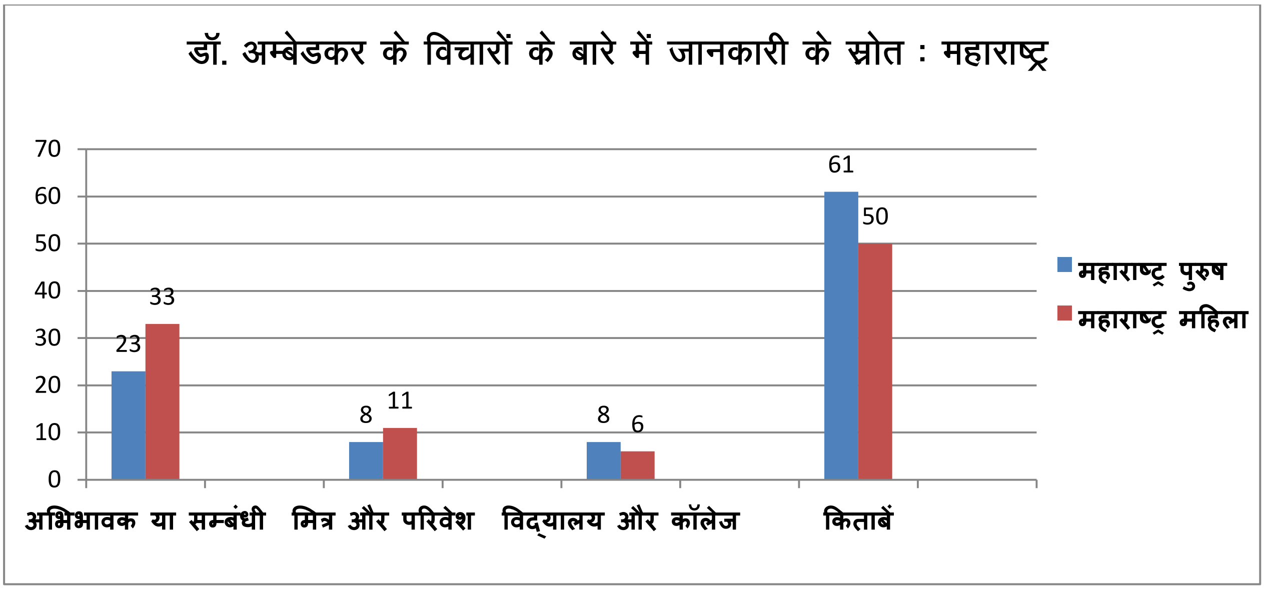

ग्राफ–2.1

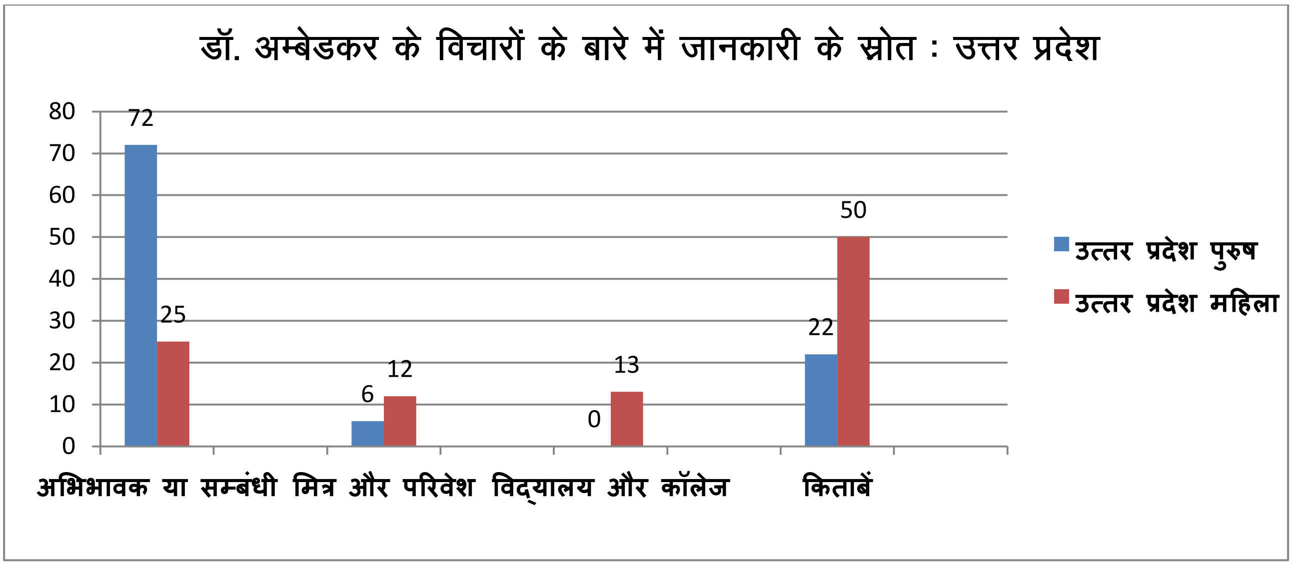

ग्राफ–2.2

3. वर्तमान भारतीय सामाजिक राजनीतिक परिस्थिति में डॉ अंबेडकर की भूमिका के प्रश्न के पूछे जाने पर (ग्राफ 3.1 एवं ग्राफ 3.2)। सर्वाधिक लोगों का मानना है कि डॉ अंबेडकर एक सर्वमान्य भारतीय राजनीतिज्ञ हैं, साथ ही साथ दलितों के सामाजिक सम्मान के प्रतीक भी।

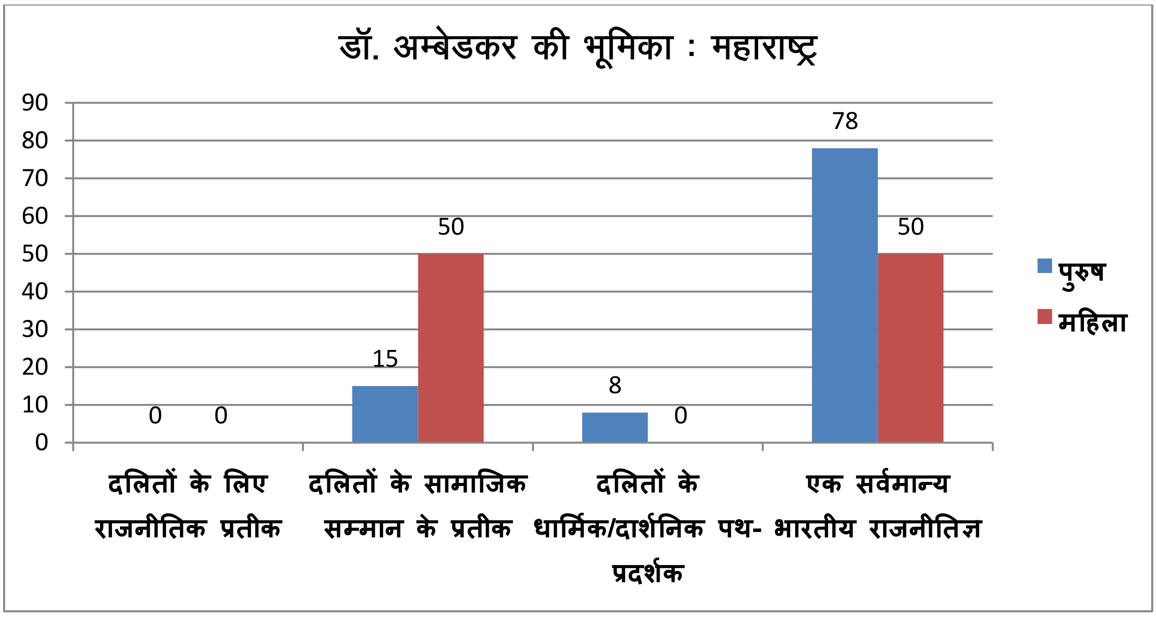

ग्राफ–3.1

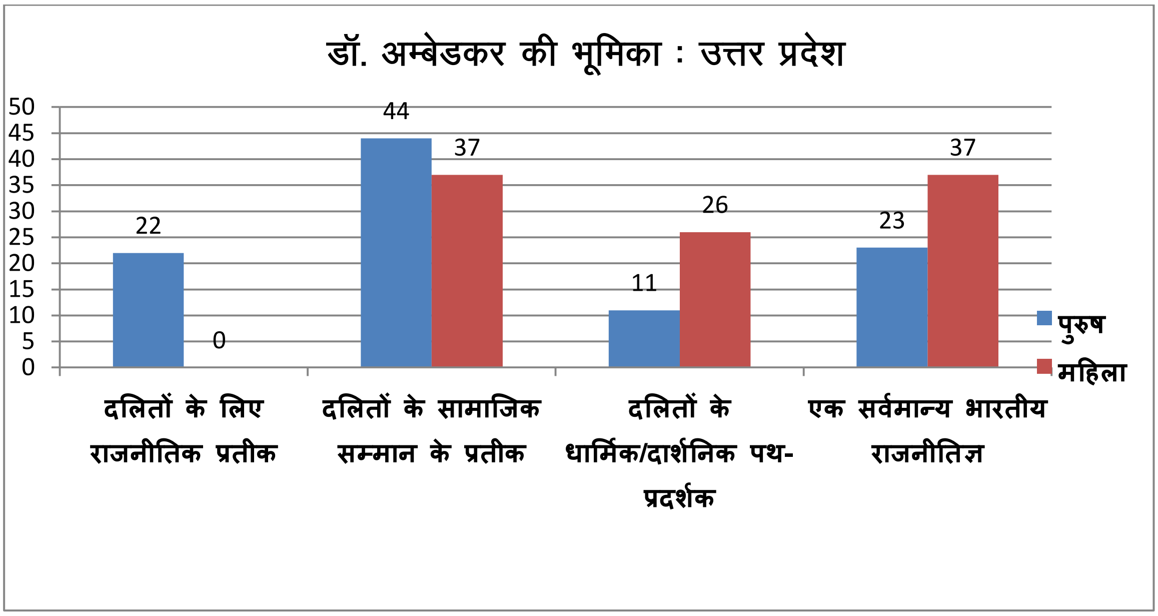

ग्राफ–3.2

4. सर्वे के अगले प्रश्न में लोगों से यह पूछा गया कि दलित पहचान से आपका क्या अभिप्राय है? इस प्रश्न के उत्तर में महाराष्ट्र के 46 प्रतिशत पुरुषों और 83 प्रतिशत महिलाओं ने दलित पहचान से उनका अभिप्राय बौद्ध रुप में दलित समाज से है जबकि उत्तर प्रदेश के दलित बुद्धिज्म से दलितों की पहचान नहीं जोड़ते। उत्तर प्रदेश के लोग अधिकांशतः 'दलित' से अभिप्राय

विभिन्न दलित उपजातियों के समूह से लेते हैं या अपनी स्वयं की उपजाति से लेते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश का दलित आंदोलन सांस्कृतिक रुप से महाराष्ट्र के मुकाबले कम सुदृढ़ है।

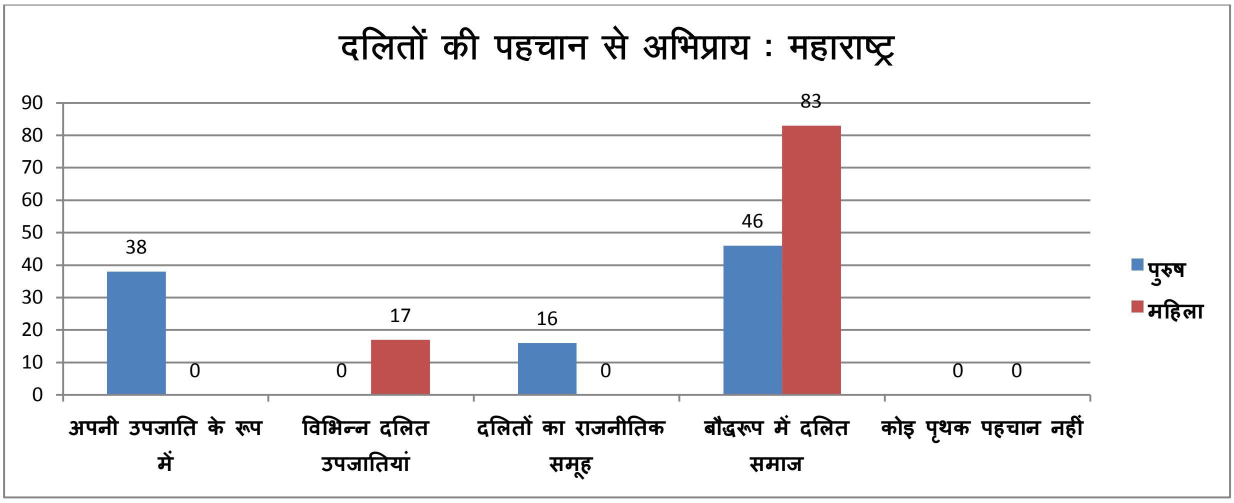

ग्राफ–4.1

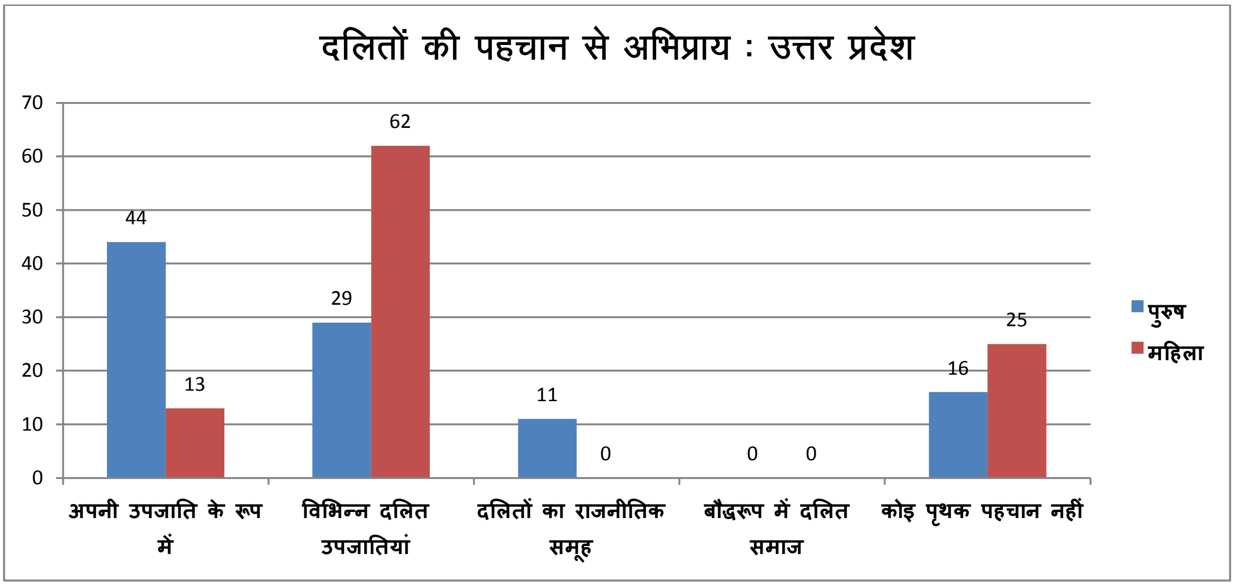

ग्राफ–4.2

5. उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र दोनों राज्यों के अधिकांश दलित डॉ. अम्बेडकर के विचारों की सार्थक परिणति देश में समता मूलक समाज की स्थापना में देखते हैं। महाराष्ट्र के कुछ दलित अपने को शासक वर्ग बनाने और उत्तर प्रदेश के

कुछ दलित अपनी पृथक सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान कायम करने की बात करते हैं। (ग्राफ 5.1 एवं ग्राफ 5.2)

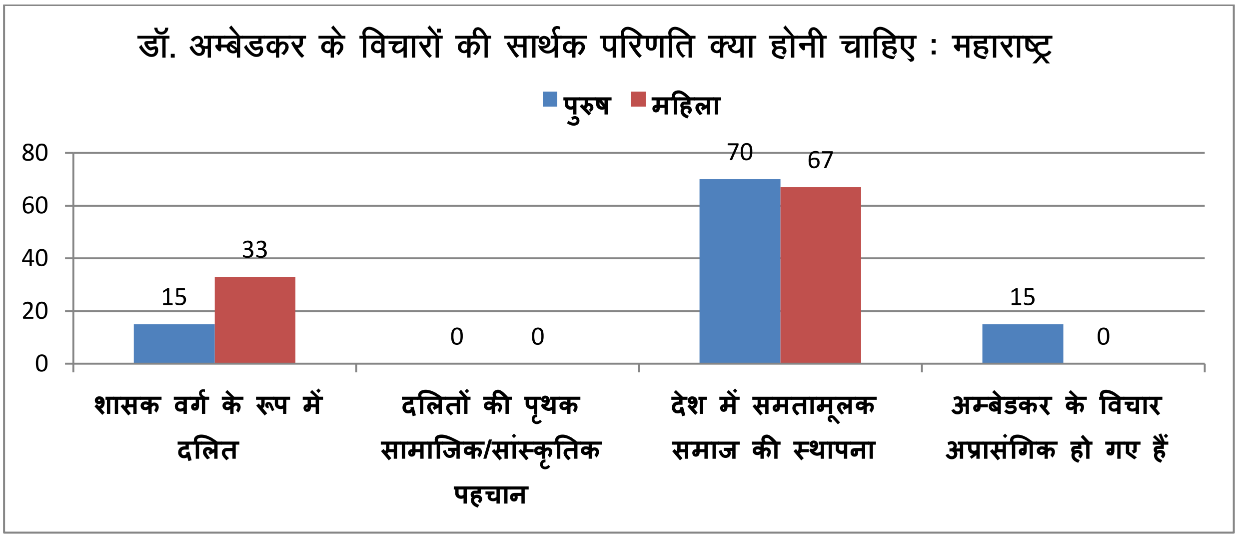

ग्राफ–5.1

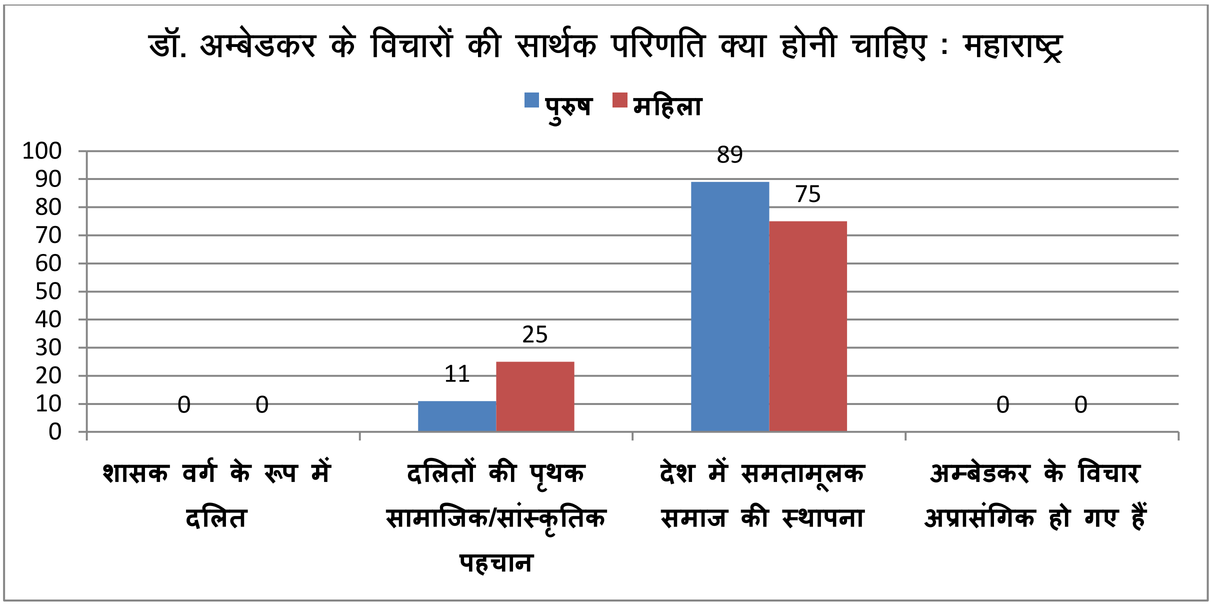

ग्राफ–5.2

6. यह पूछे जाने पर कि कौन सी पार्टी डॉ अम्बेडकर के विचारों का प्रतिनिधित्व कर रही है महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश दोनों प्रदेश के लोगों ने अपनी पहली वरियता कांशीराम द्वारा स्थपित बहुजन समाज पार्टी को दी यद्यपि महाराष्ट्र में

उतनी ही संख्या में और उत्तर प्रदेश में 35 प्रतिशत से अधिक लोगों का यह मानना है कि कोई पार्टी डॉ. अम्बेडकर के विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही है। महाराष्ट के 8 प्रतिशत पुरुष मानते हैं कि राम दास अठावले और आरपीआई डॉ अम्बेडकर के विचारों का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करते हैं। (ग्राफ 6.1 एवं ग्राफ 6.2)

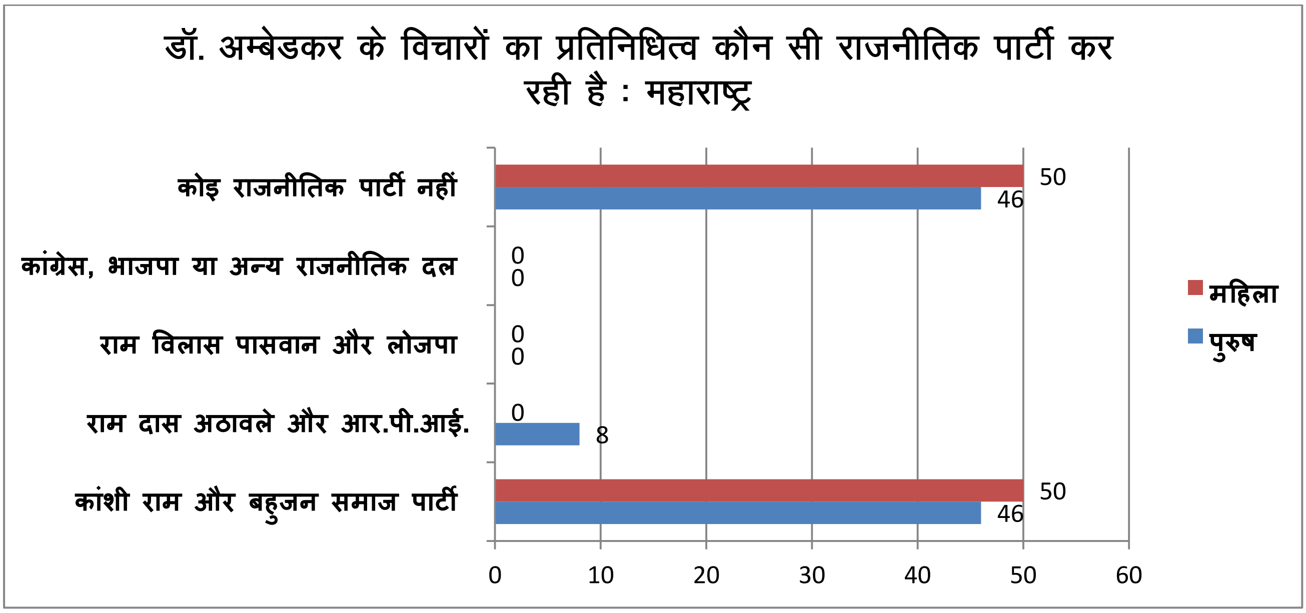

ग्रफ–6.1

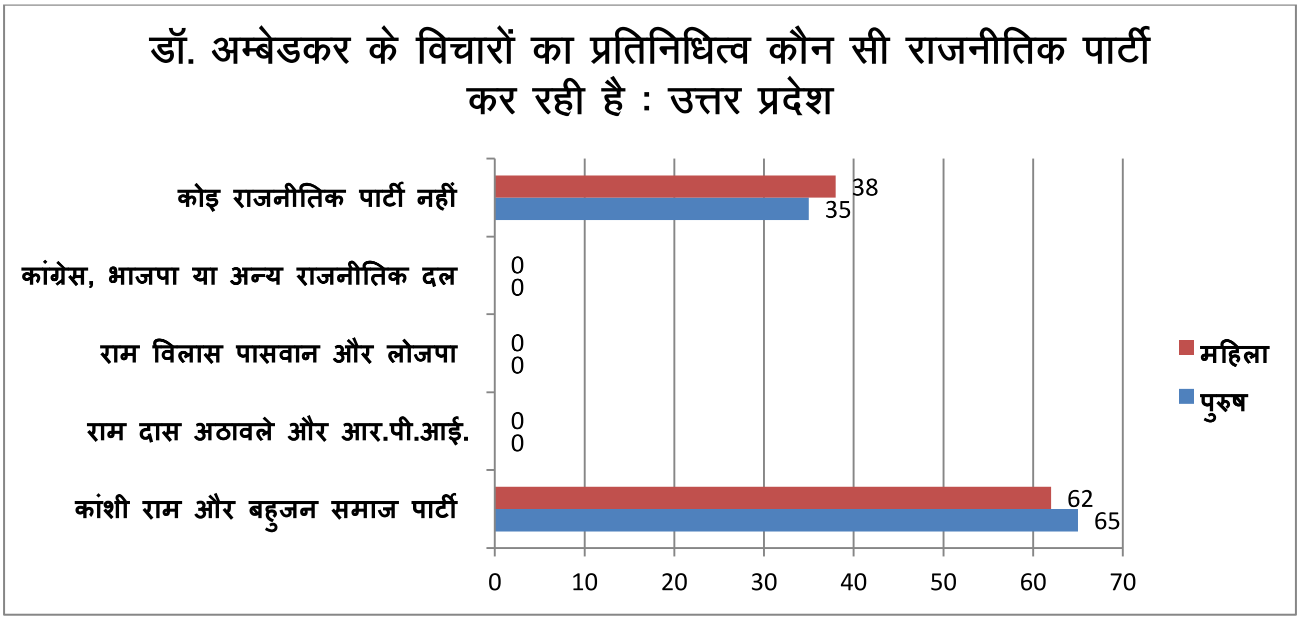

ग्रफ–6.2

7. डॉ अंबेडकर का समाज के प्रति योगदान, जिसके जवाब में दोनों राज्यों के दलित लोगों का एक ही था। संविधान निर्माता के रूप में । उत्तर प्रदेश में सर्वे सैंपल के 50 प्रतिशत महिलाओं एवं 29 प्रतिशत पुरूषों का मानना है कि डॉ अंबेडकर ने दलितों को अलग सामाजिक राजनीतिक पहचान दी। (ग्राफ 7.1 एवं ग्राफ 7.2)

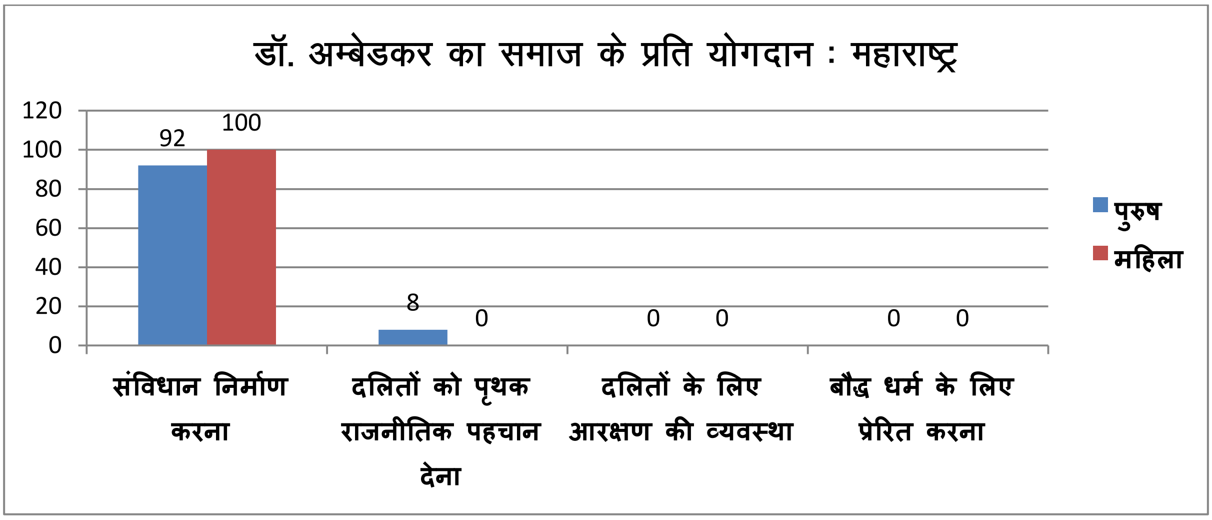

ग्प्रफ–7.1

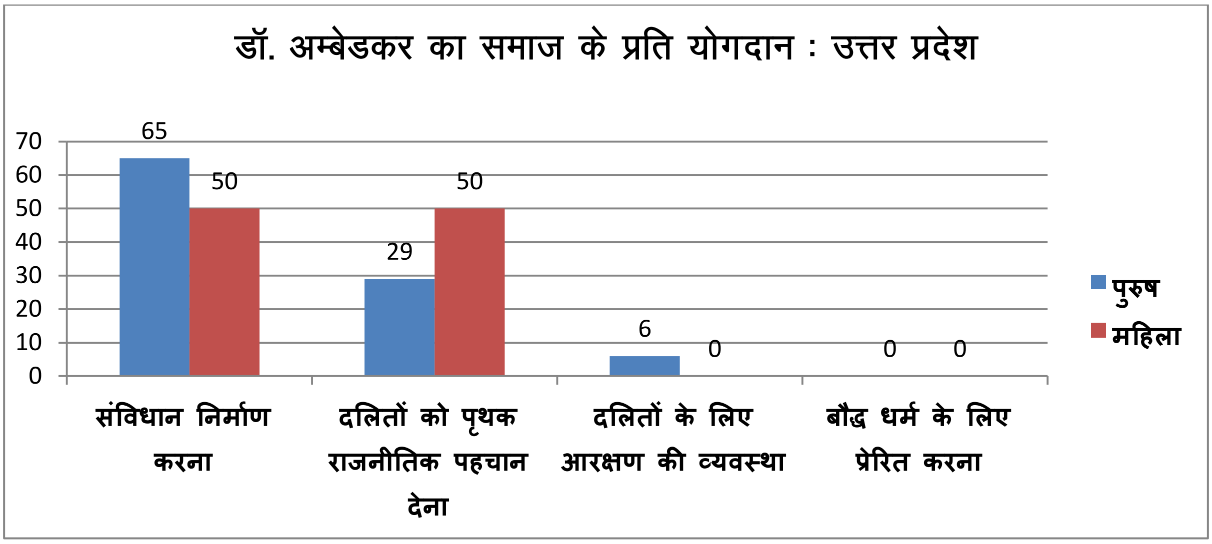

ग्राफ–7.2

8 (ग्राफ 8.1) महाराष्ट्र के लोगों का यह मानना है कि दलित महिलाओं की समस्याएं दलित पुरूषों के समान है। (ग्राफ 8.2) उतर प्रदेश के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि यहां कि दलित महिलाएं पुरूष प्रधान दलित समाज और जातिवाद के दोहरे शोषण की शिकार है। महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश दोनों प्रदेश की महिलाएं इस बात को नहीं मानती कि दलित समाज महिलाओं के प्रति ज्यादा उदार है।

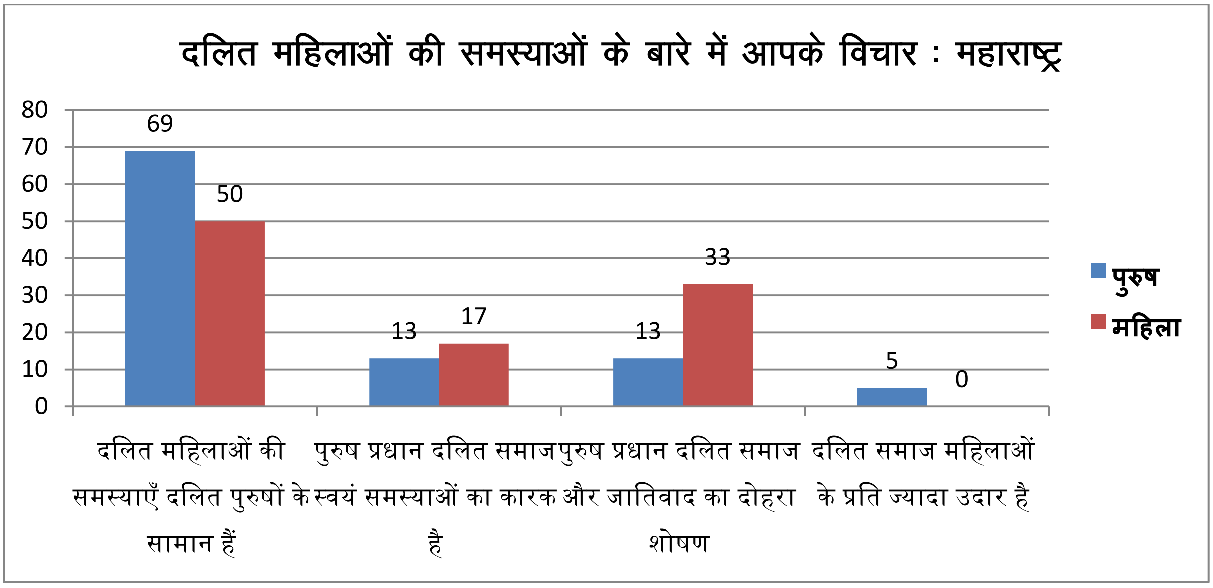

ग्राफ–8.1

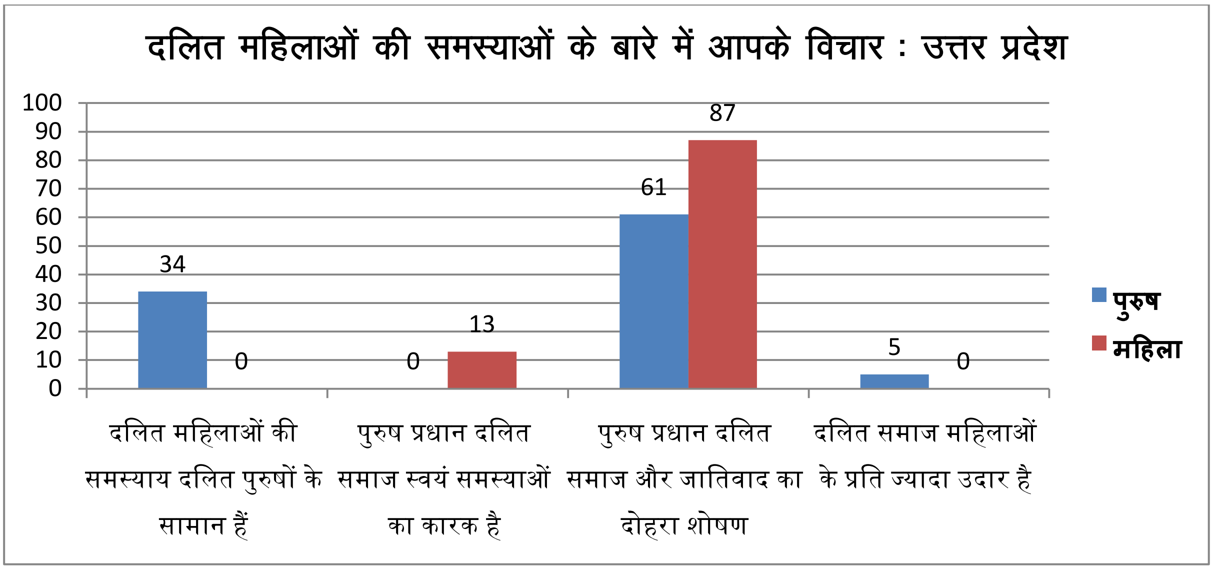

ग्राफ–8.2

9. (ग्राफ 9.1 एवं ग्राफ 9.2) डॉ अंबेडकर के सामाजिक विचारों के प्रभाव के परिणामस्वरूप दलितों को सरकारी नौकरी एवं शिक्षा में आरक्षण से क्या लाभ हुए? इस प्रश्न के उत्तर में महाराष्ट्र के 83 प्रतिशत महिलाओं एवं 70 प्रतिशत पुरूषों का मानना है कि दलितों के शिक्षा और साक्षरता के प्रतिशत में वृद्धि हुई है। महाराष्ट्र की तरह उतरप्रदेश के लोग भी दलितों में शिक्षा के प्रसार में अम्बेडकर की सर्वोपरि भूमिका को स्वीकार करते हैं। साथ ही सर्वे में दूसरे नम्बर पर लोगों ने यह भी माना कि आरक्षण से दलितों को अलग सामाजिक पहचान मिली है।

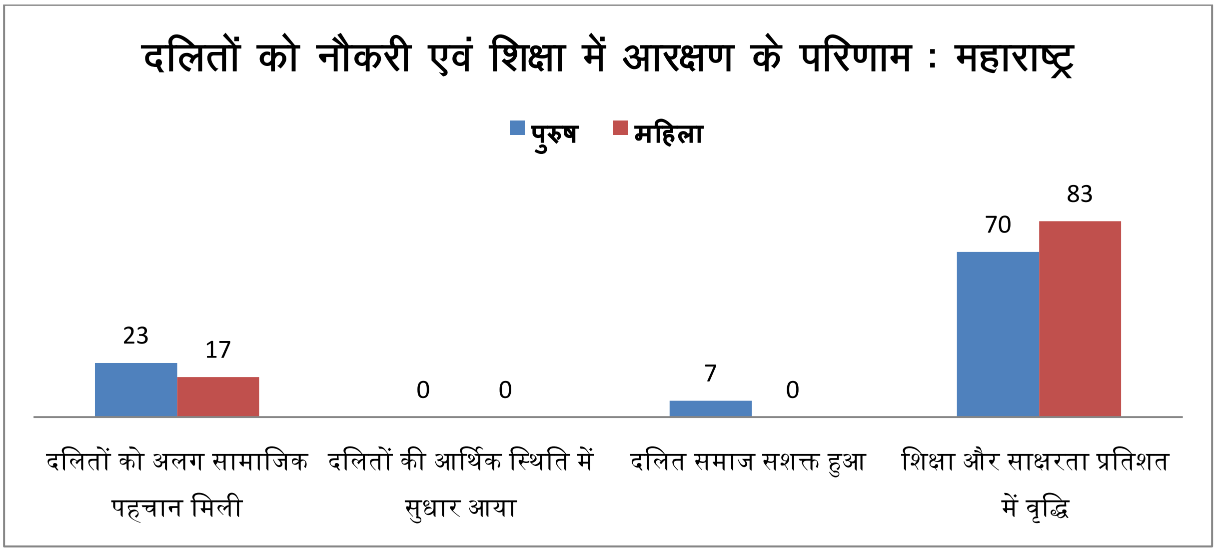

ग्राफ–9.1

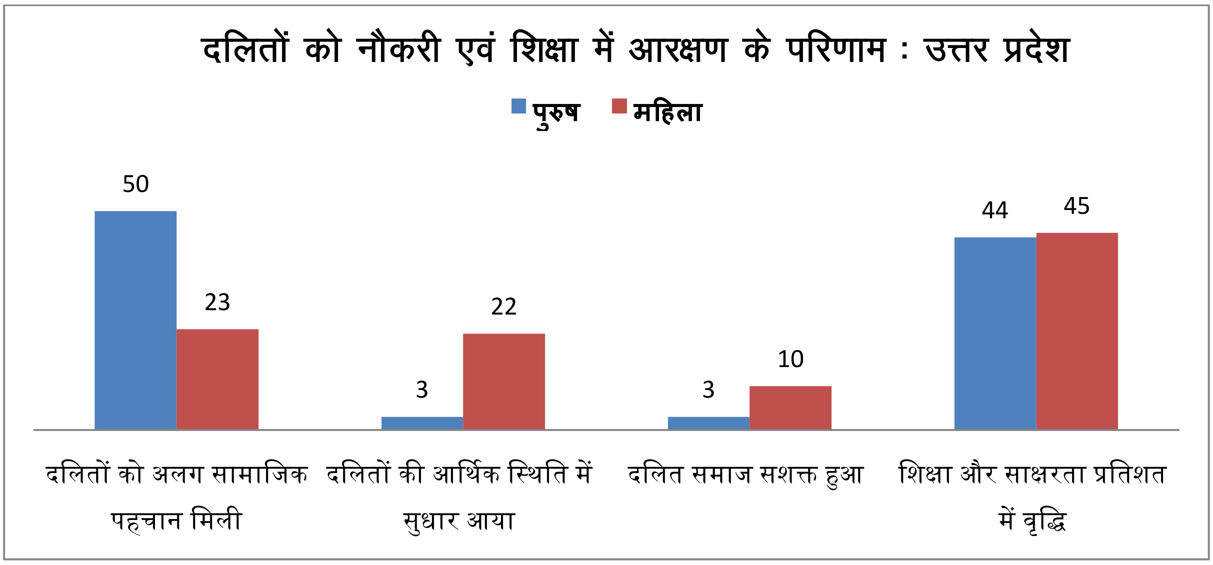

ग्राफ–9.2

10. दलितों का राजनीतिक हित कैसे सम्भव है इस प्रश्न के उत्तर में उत्तर प्रदेश के लोगों कि राय बंटी हुयी सामने आयी। फिर भी यहां 50 प्रतिशत महिलाओं और 28 प्रतिशत पुरुषों का मानना है कि किसी भी राष्ट्रीय दल में दलितों की समुचित भागीदारी से उनका हित सम्भव हैं।दूसरी ओर महाराष्ट्र के लागों ने दलितों के राजनीतिक हित के लिए दलित अल्पसंख्यक गठजोड़ एवं दलित नेतृत्व वाले राजनीतिक दल द्वारा संभव है को वरीयता दी है। (ग्राफ 10.1 ग्राफ 10.2)

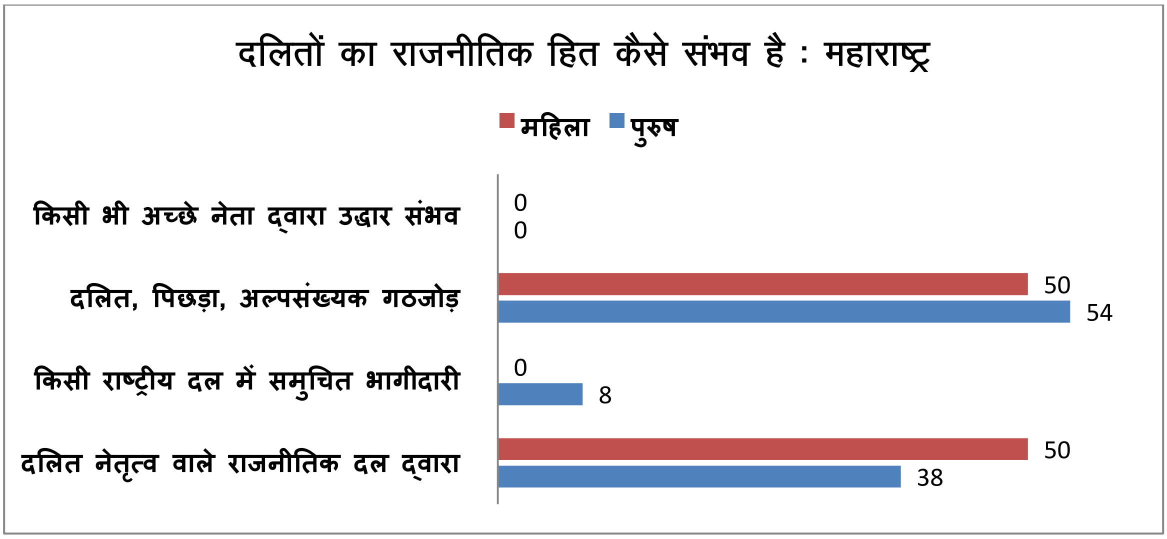

ग्राफ–10.1

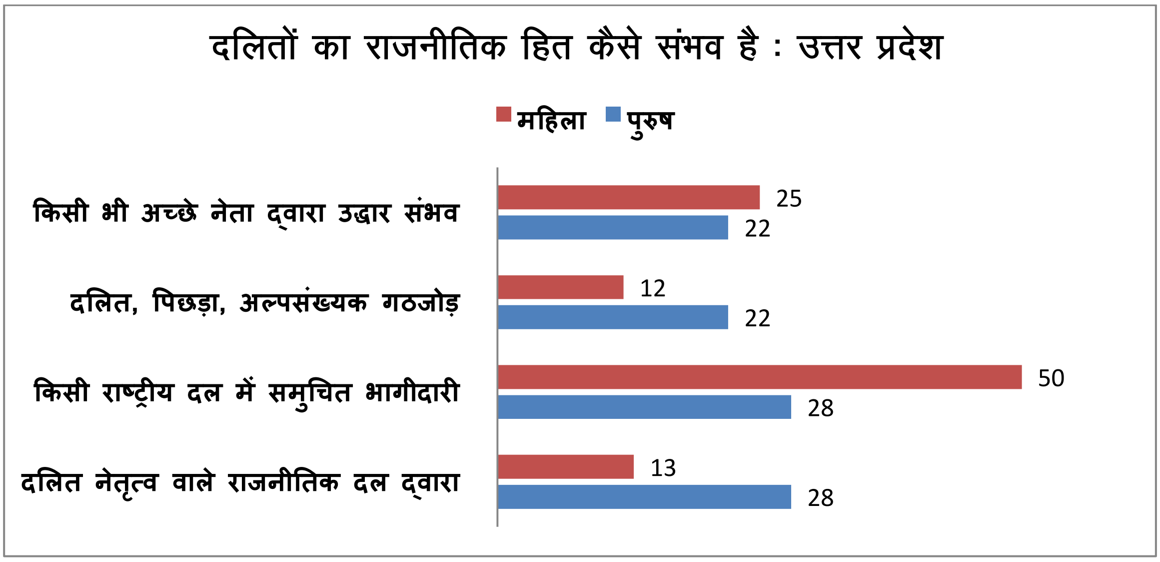

ग्राफ–10.2

11. पूना पैक्ट के बाद दलितों को आरक्षित सीटें मिली। संसदीय लोकतंत्र में संवैधानिक प्रावधान द्वारा सीटें सुरक्षित कर दी गई। प्रश्न में पूछा गया कि दलितों के राजनीतिक आरक्षण का क्या परिणाम हुआ। महाराष्ट्र के 83 प्रतिशत महिलाओं ने माना कि दलितों को वास्तविक राजनीतिक प्रतिनिधित्व मिली। 46 प्रतिशत पुरूष मानते हैं कि दलितों का राजनीतिक सशक्तिकरण हुआ है। यूपी में 38 प्रतिशत महिलाओं एवं 28 प्रतिशत पुरूषों का मानना है कि दलितों में राजनीतिक चमचों का उदय हुआ है। (ग्राफ 11.1 ग्राफ 11.2)

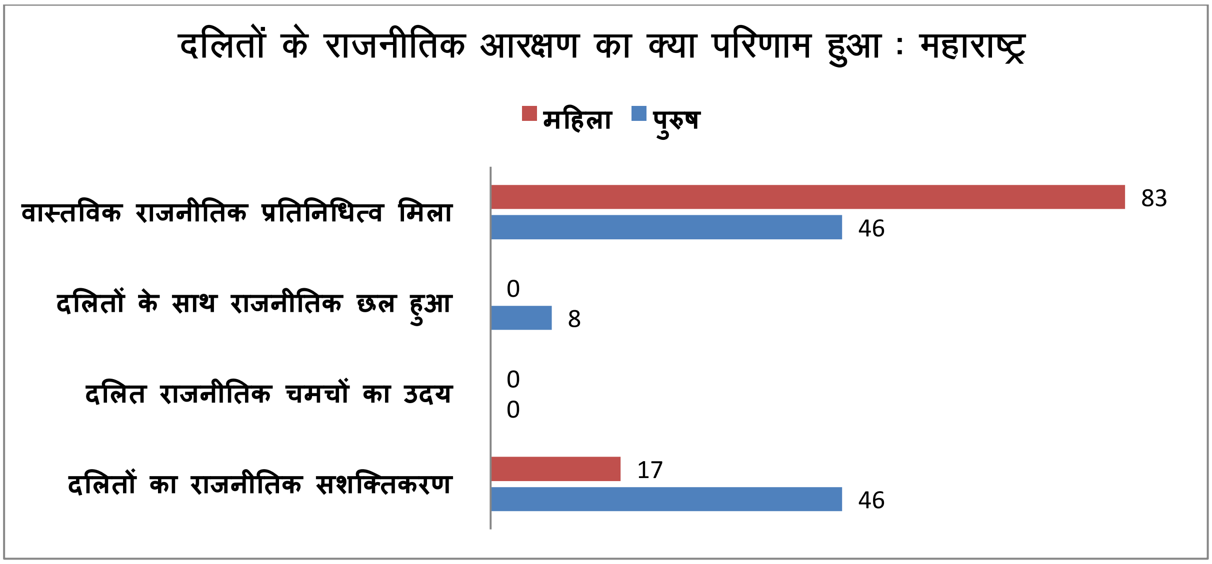

ग्राफ–11.1

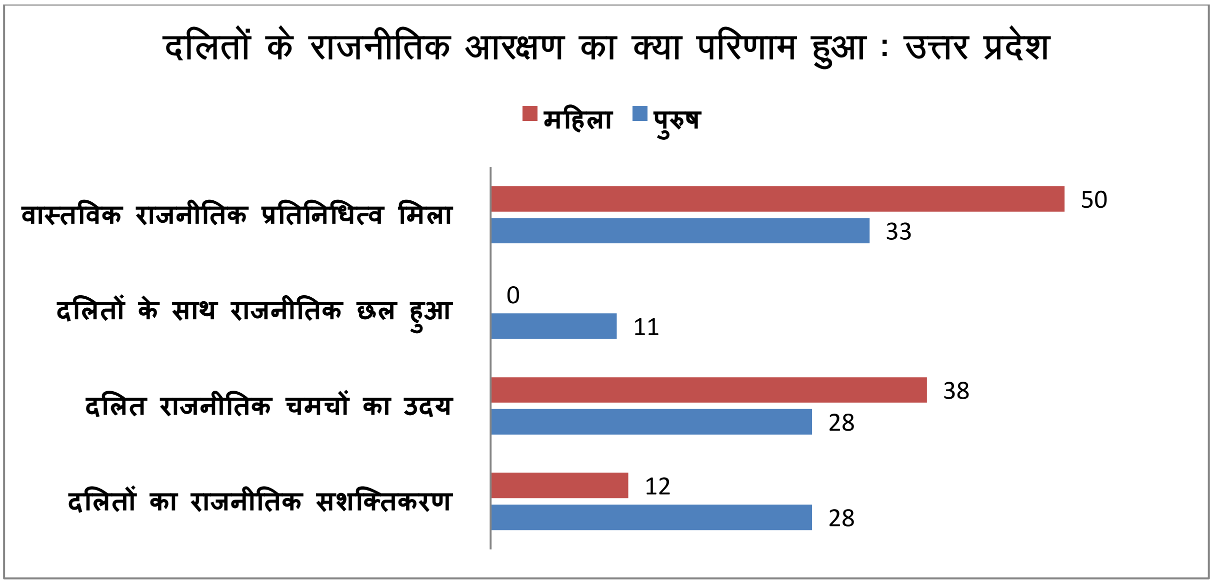

ग्राफ–11.2

12. महाराष्ट्र के दलितों का मानना है कि दलितों में जो मध्यम वर्ग बना है वे अपना एवं अपने परिवार तक ही सीमित हैं। उत्तर प्रदेश में 50 प्रतिशत महिला एवं 43 प्रतिशत पुरूष मानते हैं कि दलित मध्यम वर्ग की भूमिका अपने समाज एवं अपनी जाति के प्रति होती हैं। (ग्राफ 12.1 ग्राफ 12.2)

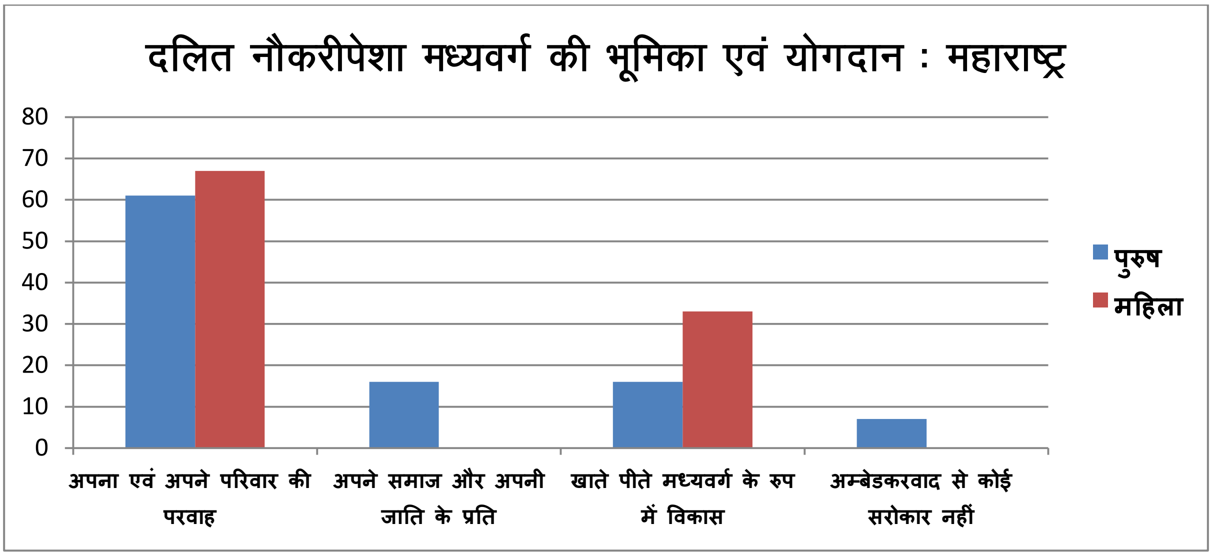

ग्राफ–12.1

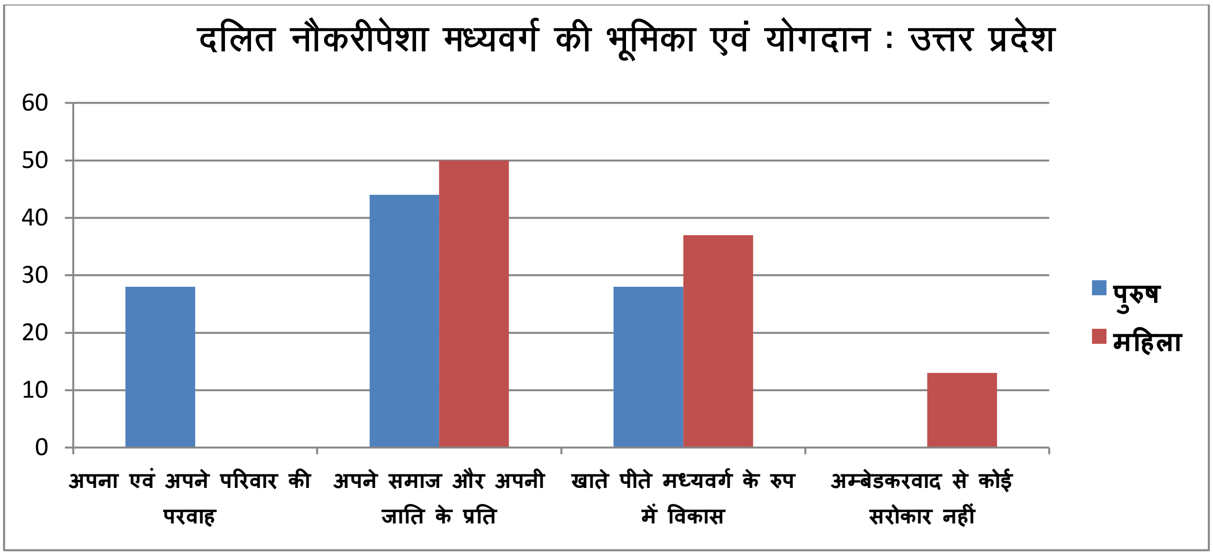

ग्राफ–12.2

13. ग्राफ 13.1 और 13.2 दोनों राज्यों में बड़ी संख्या में लोगों का मानना है कि सिविल सोसायटी और मीडिया को दलित हितों के प्रति जागरुक रखना और आरक्षण व्यवस्था को कायम रखना दलित राजनीति की सबसे बड़ी उपलब्धियां हैं।

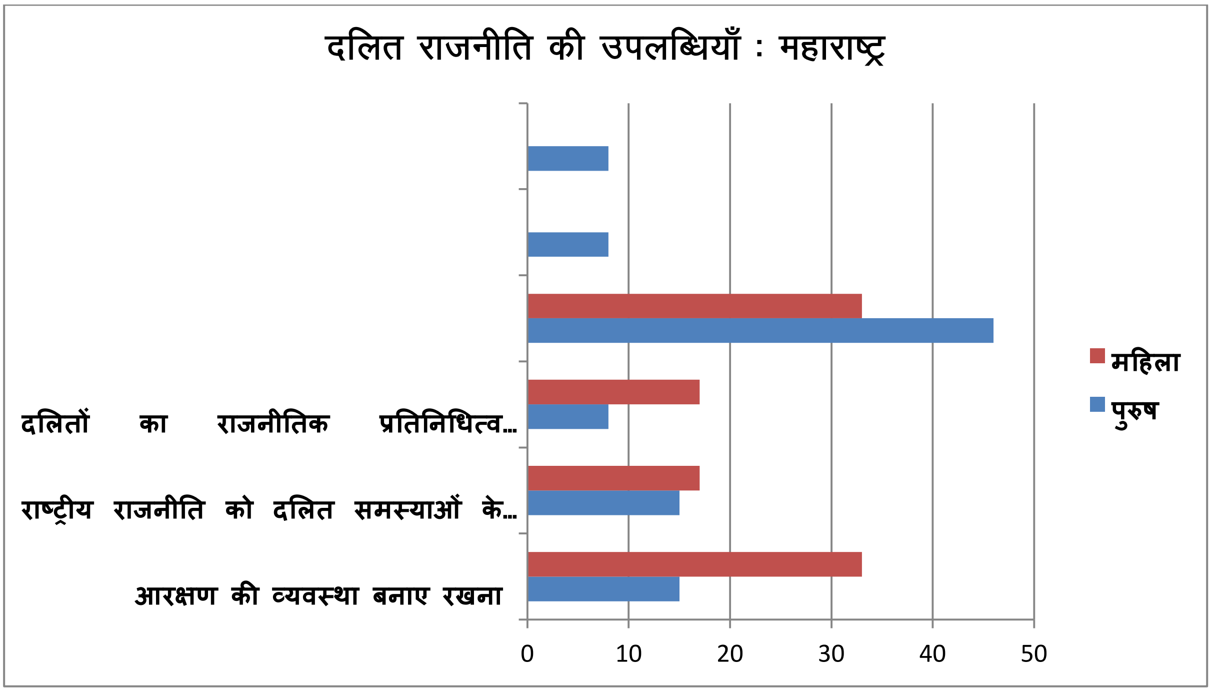

ग्राफ–13.1

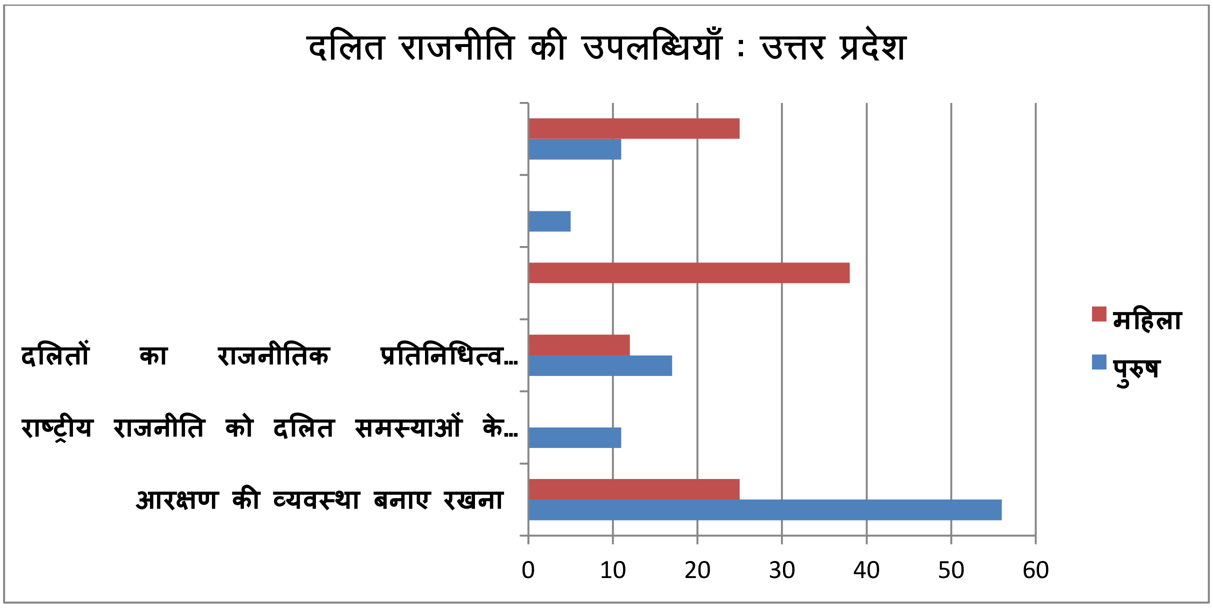

ग्राफ–13.2

14. दोनों राज्यों में लोगों का यह मानना है कि अम्बेडकर वाद को अपनी राजनीति का आधार न बना पाना और व्यक्ति, परिवार और उपजाति केन्द्रित हो जाना दलित राजनीति की सबसे बड़ी खामियां हैं। दोनों राज्यों में कुछ महिलाओं का मानना है कि दलित राजनीति ने महिला हितों की उपेक्षा की है। (ग्राफ–14.1 एवं 14.2)

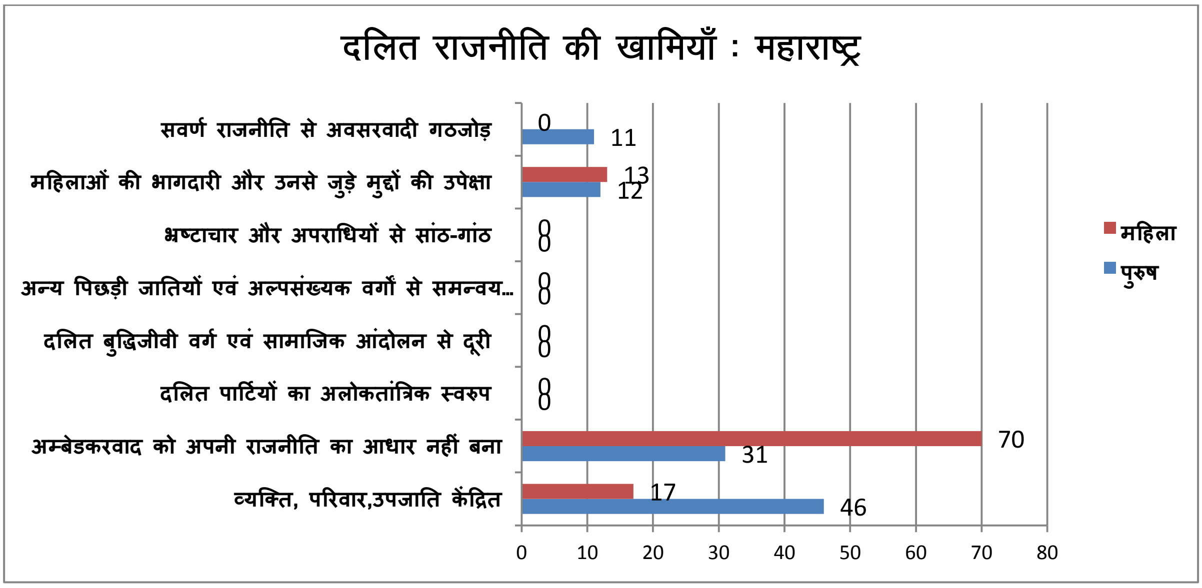

ग्राफ–14.1

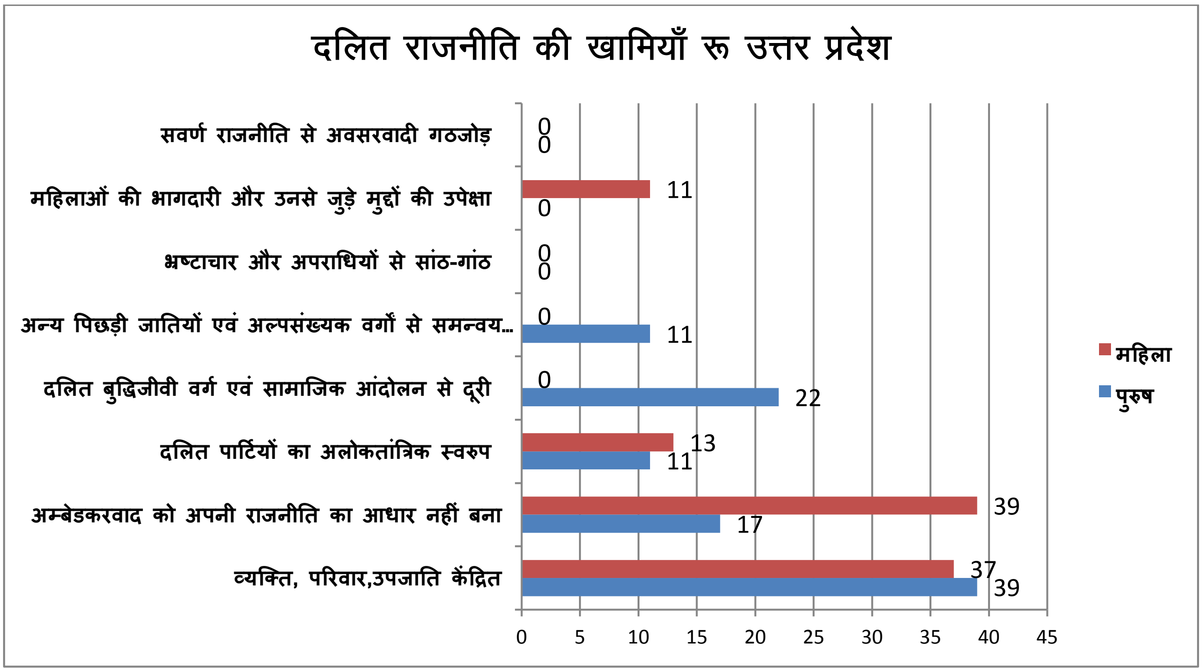

ग्राफ–14.2

15. दोनों राज्यों में देश में स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व की स्थापना और वंचित तबकों के सरकारी सेवा में आने के अवसर को डॉ अम्बेडकर द्वारा रचित संविधान की सबसे बड़ी उपलब्धि माना गया है। (ग्राफ–15.1 एवं 15.2)

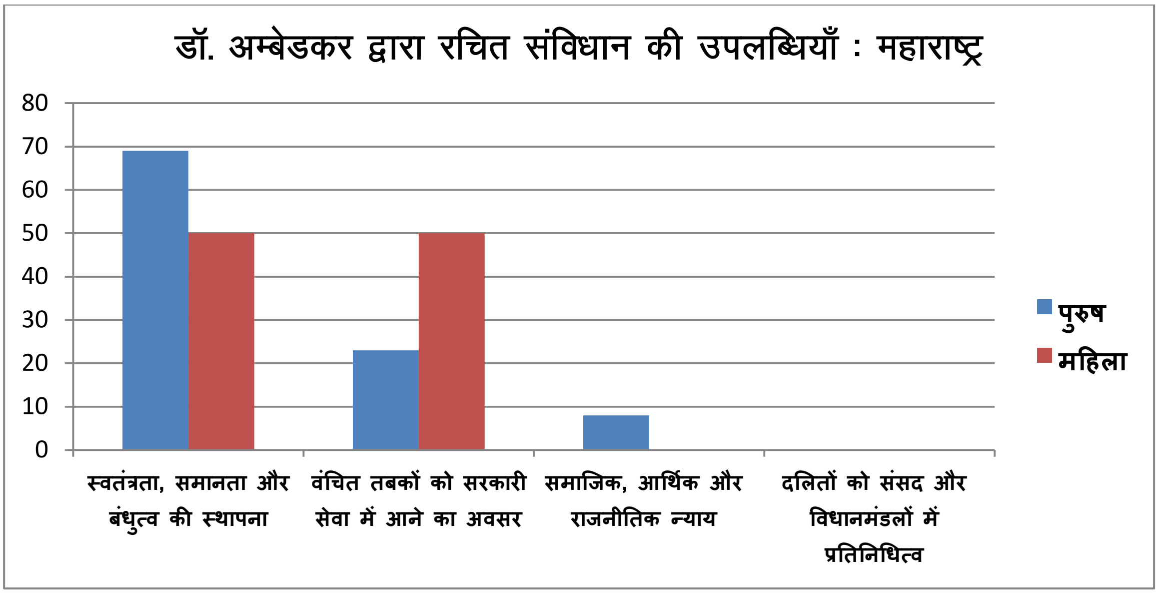

ग्राफ–15.1

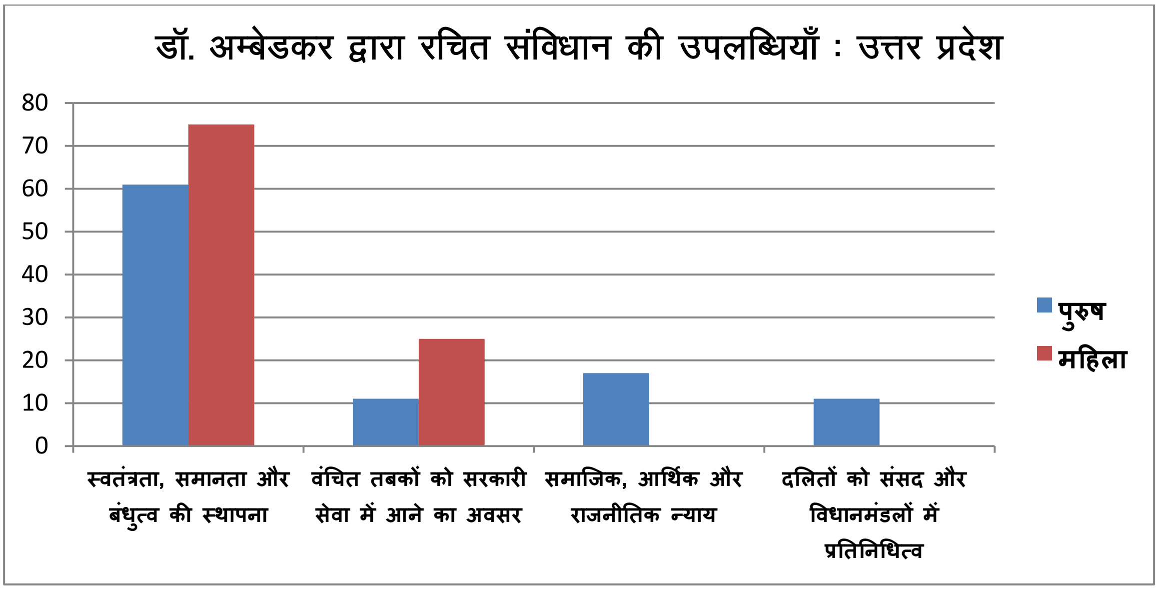

ग्राफ–15.2

16. महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश दोनों राज्यों के अधिकांश लोग आरक्षण के मौजूदा प्रावधान को जारी रखने के पक्ष में हैं। हालांकि उत्तर प्रदेश की 62 प्रतिशत महिलाएं और 17 प्रतिशत पुरुष यह मानते हैं कि सामाजिक और शैक्षणिक रुप से पिछड़ी जातियों का एक पृथक वर्ग बनाया जाए। साथ ही उत्तर प्रदेश के 22 प्रतिशत पुरुष यह मानते हैं कि आरक्षण से लाभन्वित हो चुकी जातियों को क्रीमी लेयर में सम्मिलित किया जाना चाहिए। (ग्राफ–16.1 एवं 16.2)

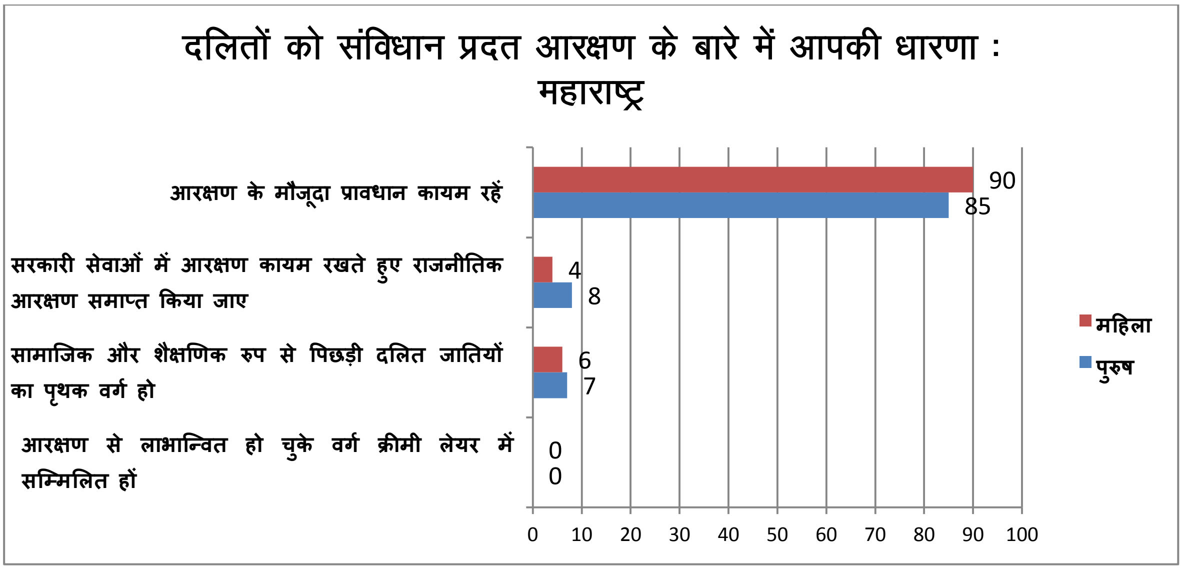

ग्राफ–16.1

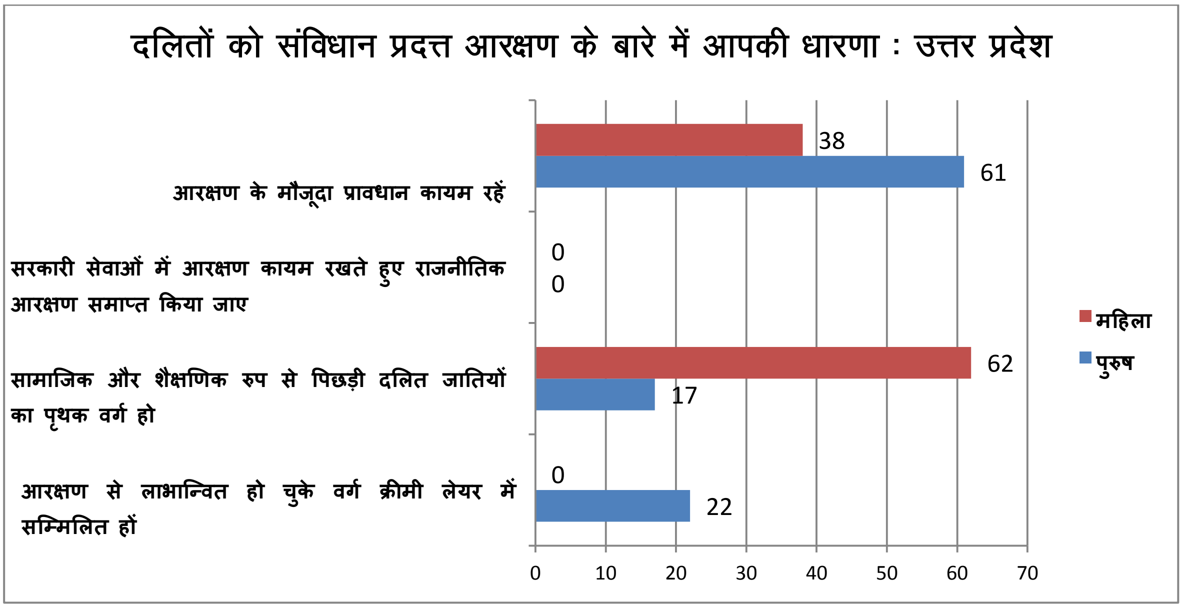

ग्राफ–16.2

17. डॉ अम्बेडकर के नवयान बौद्ध धर्म में दलितों के धर्मान्तरित होने की अभिप्रेरणा को दोनों राज्यों के अधिकांश लोग बौद्ध धर्म के वैज्ञानिक, तार्किक और मानवतावादी होने के रुप में स्वीकार करते हैं। साथ ही कई लोग बौद्ध धर्म के स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के संदेश को दलितों के धर्मान्तरण का कारण बताते हैं। (ग्राफ–17.1 एवं 17.2)

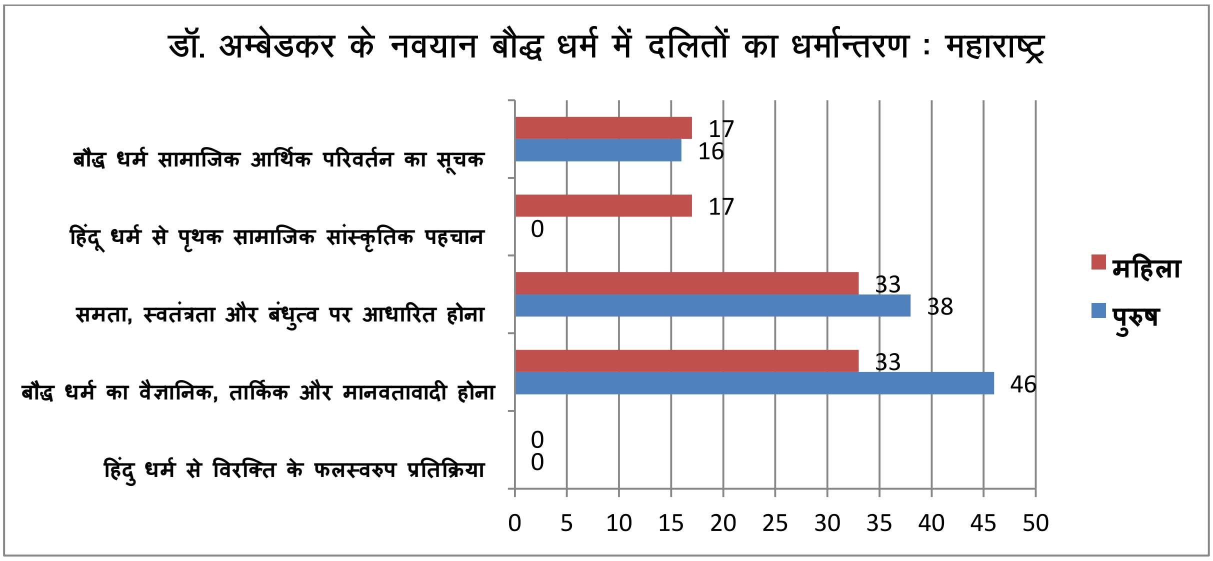

ग्राफ–17.1

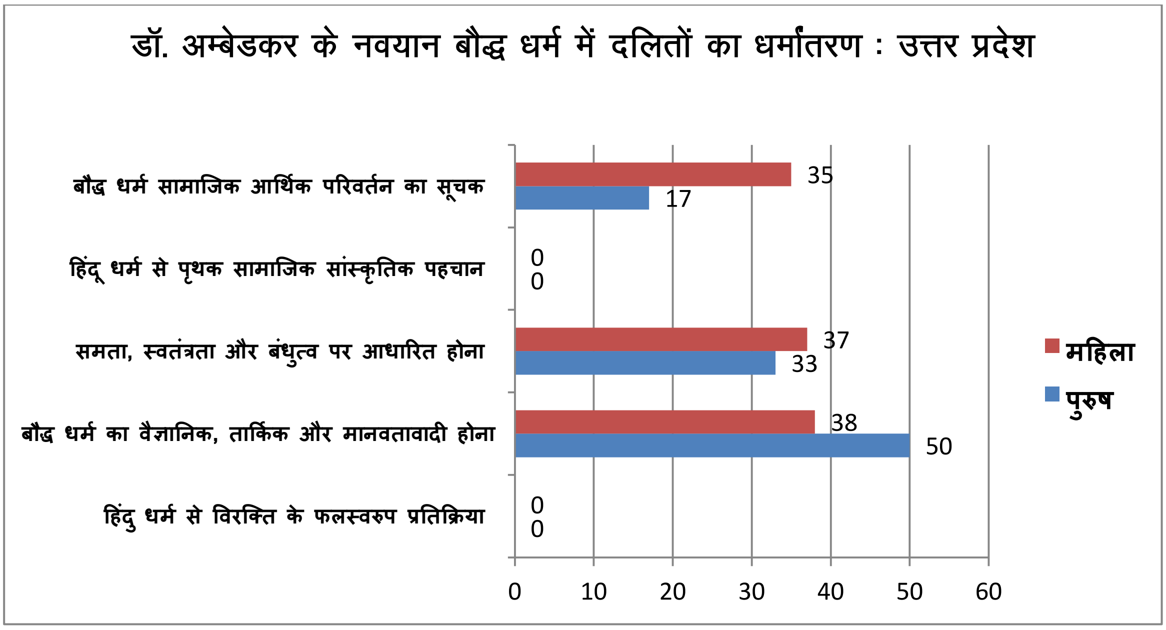

ग्राफ–17.2

18. यह पूछे जाने पर कि आपकी आपकी आध्यात्मिक संतुष्टि का क्या आधार है? महाराष्ट्र के अधिकांश लोग जहाँ डॉ अम्बेडकर के 22 प्रतिज्ञाओं पर आधारित बौद्ध धर्म को अपनी आध्यात्मिक संतुष्टि का आधार मानते हैं वहीं उत्तर प्रदेश के उन्हें तार्किकता, नैतिकता और मानवीय मूल्यों के अनुपालन में आध्यात्मिक संतुष्टि प्राप्त होती है। (ग्राफ–18.1 और ग्राफ–18.2)

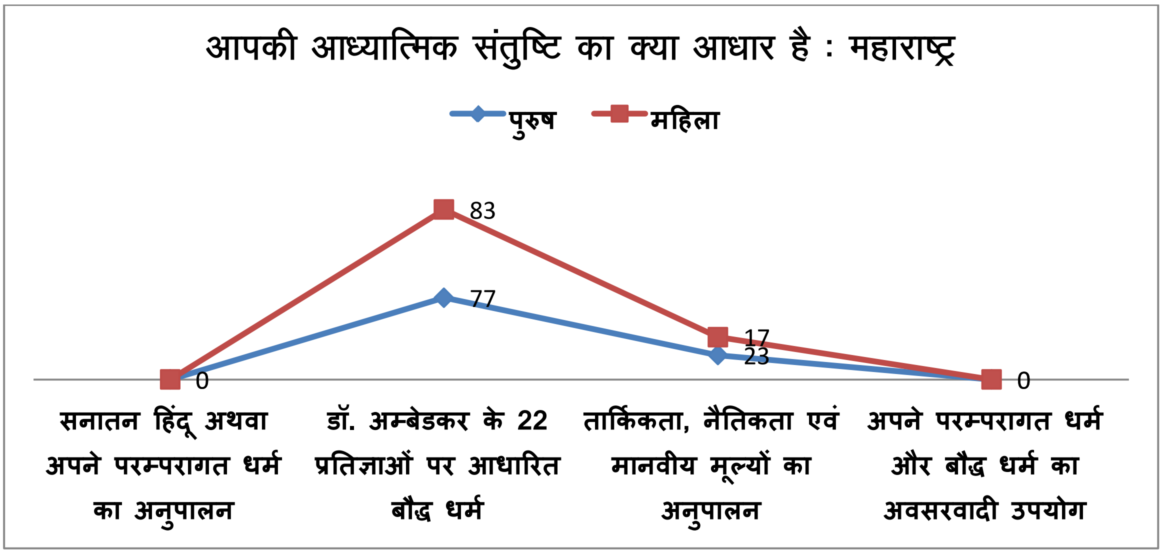

ग्राफ–18.1

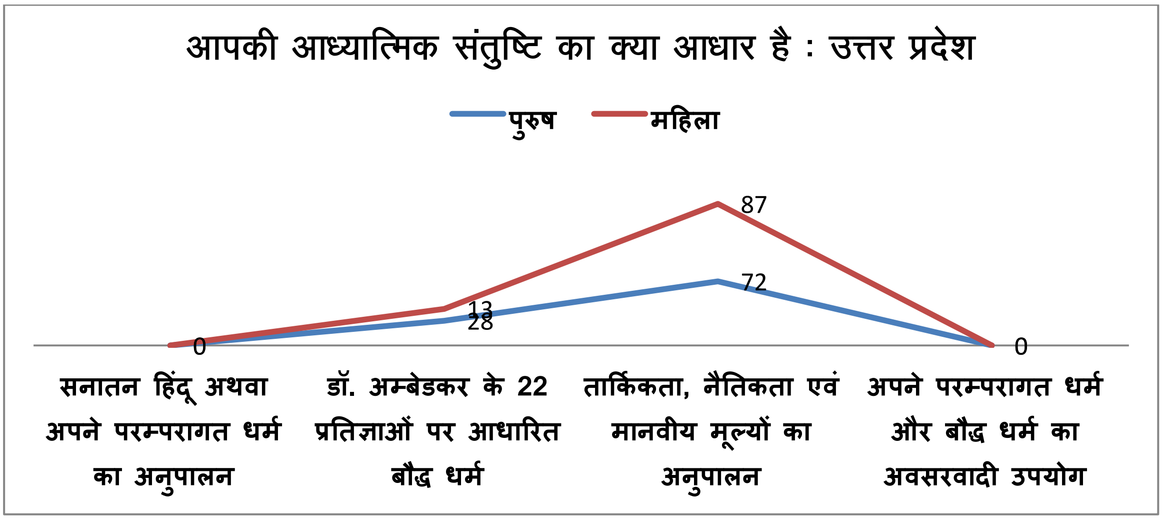

ग्राफ–18.2

19. बौद्ध धर्मान्तरण से लाभ के विषय में पूछे जाने पर महाराष्ट्र के 62 प्रतिशत पुरुषों और 50 प्रतिशत महिलाओं ने इससे अतार्किकता और शोषण पर आधारित ब्राह्मणवाद से मुक्ति मिलने की बात कही जबकि महाराष्ट्र के 38 प्रतिशत पुरुषों और 50 प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि बौद्ध धर्म उन्हें बौद्धिकता और तार्किकता का अनुसरण करने की प्रेरणा देता है। दूसरी ओर उत्तर प्रदेश के 62 प्रतिशत महिलाओं और 44 प्रतिशत पुरुषों ने बौद्धिकता और तार्किकता के अनुसरण की प्रेरणा को बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण योगदान माना। (ग्राफ–19.1 और 19.2)

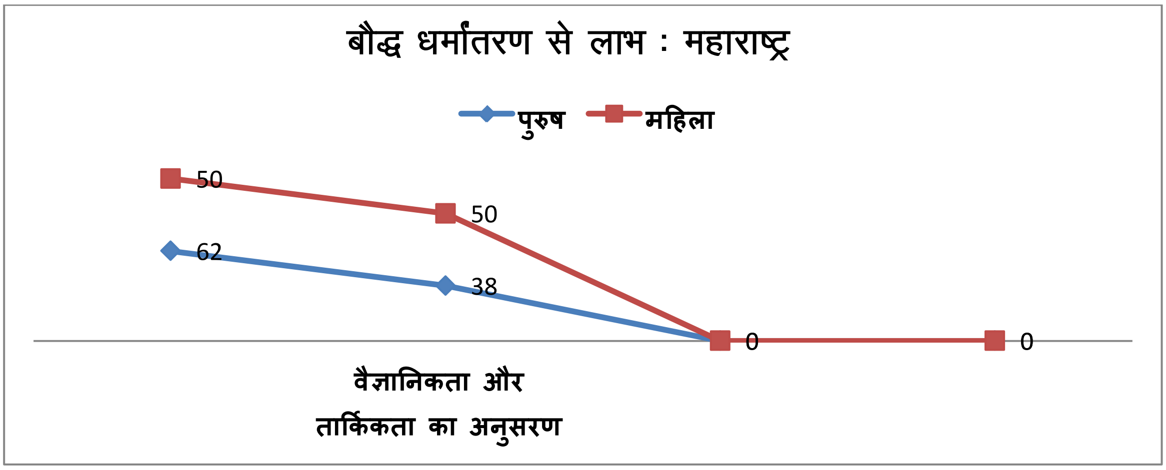

ग्राफ–19.1

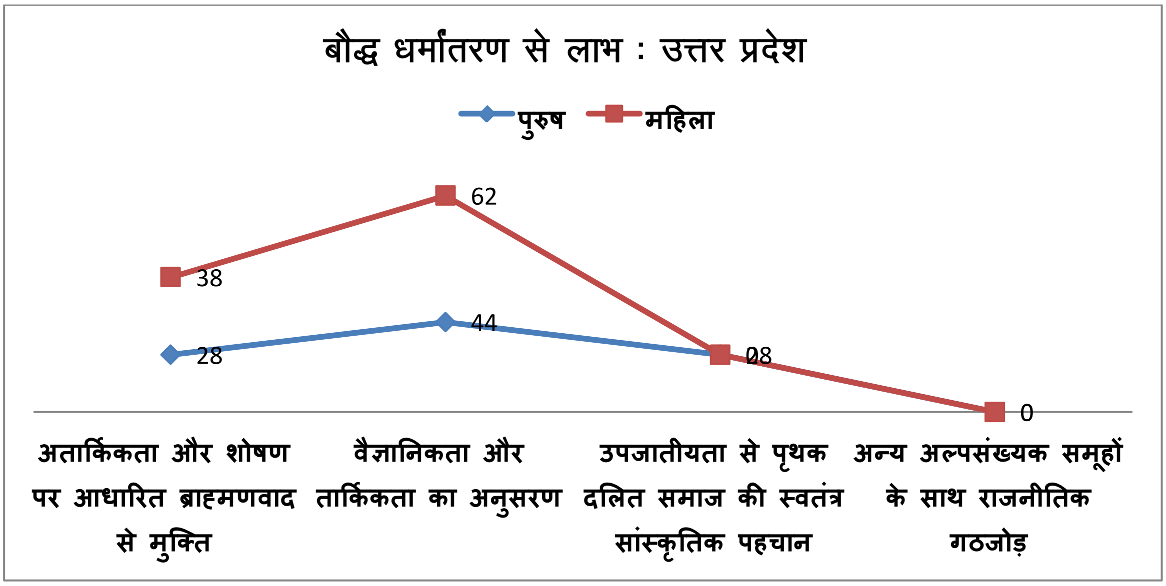

ग्राफ–19.1

20. महाराष्ट्र के अधिकतर लोगों के अनुसार दलितों की एकता के लिए अभियान चलाना दलित आंदोलन का उद्देश्य होना चाहिए। उत्तर प्रदेश के लोगों ने दलित आंदोलन को मुख्यतः शोषण के खिलाफ दलितों के सशक्तिकरण से जोड़ा है। उत्तर प्रदेश के 28 प्रतिशत पुरुष और 25 प्रतिशत महिलाएं दलित आंदोलन का अभिप्राय दलितों के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक लामबंदी को बताते हैं। (ग्राफ–20.1 और ग्राफ–20.2)

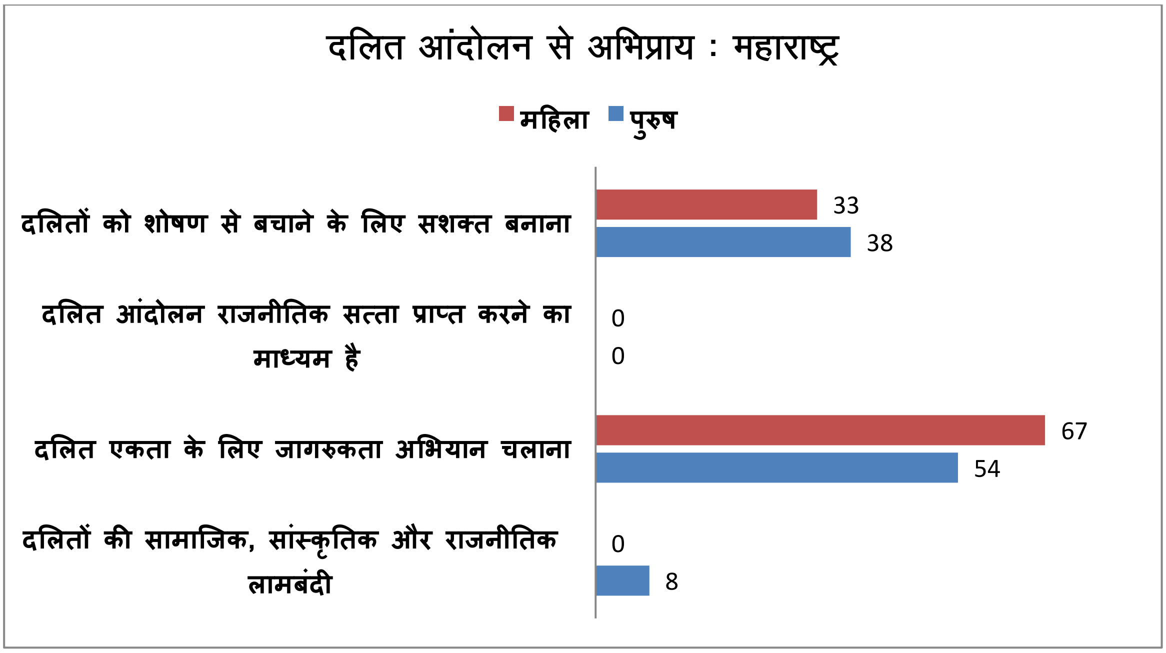

ग्राफ–20.1

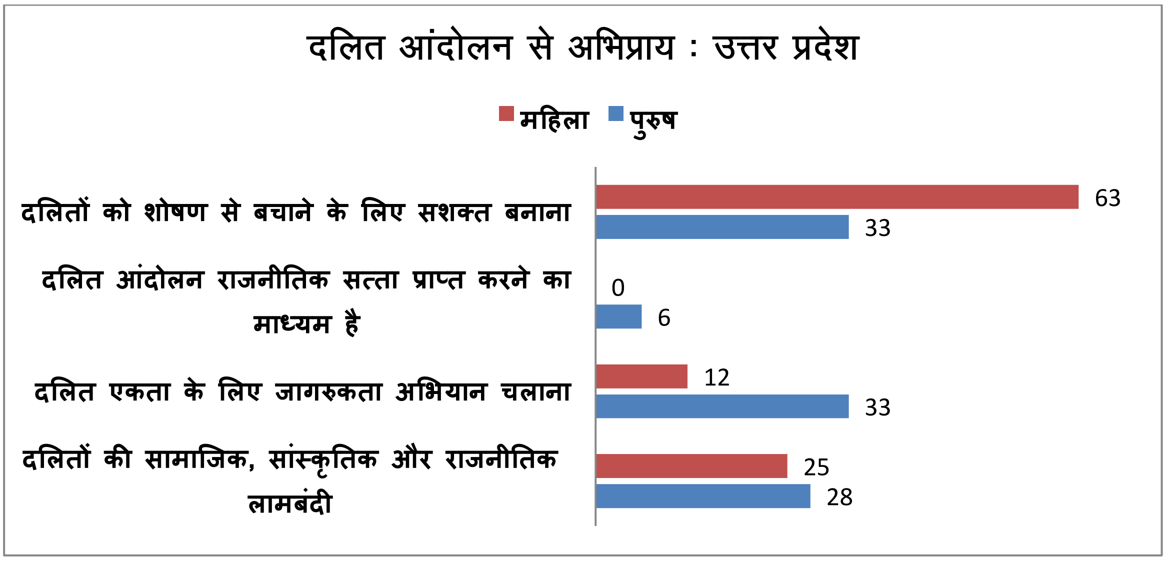

ग्राफ–20.2

21. जहाँ तक दलित आंदोलन के खामियों का प्रश्न है (ग्राफ–21.1) महाराष्ट्र के 50 प्रतिशत पुरुष और 39 प्रतिशत महिलाएं इसे विचारधारा और बौद्धिकता के अभाव से जोड़ते हैं। 31 प्रतिशत पुरुषों और 33 महिलाओं का मानना है कि दलित उपजातियों के बीच सामाजिक विभेद कम न कर पाना दलित आंदोलन की एक बड़ी खामी है। उत्तर प्रदेश की 50 प्रतिशत महिलाएं यह मानती हैं कि सम्पन्न/मध्यम वर्गीय दलितों को आम दलित जन से न जोड़ पाना दलित आंदोलन की सबसे बड़ी खामी है। 44 प्रतिशत पुरुषों का यह मानना है कि दलितों को बौद्ध धर्म की ओर प्रेरित न कर पाना दलित आंदोलन की एक बड़ी खामी है। (ग्राफ–21.2)

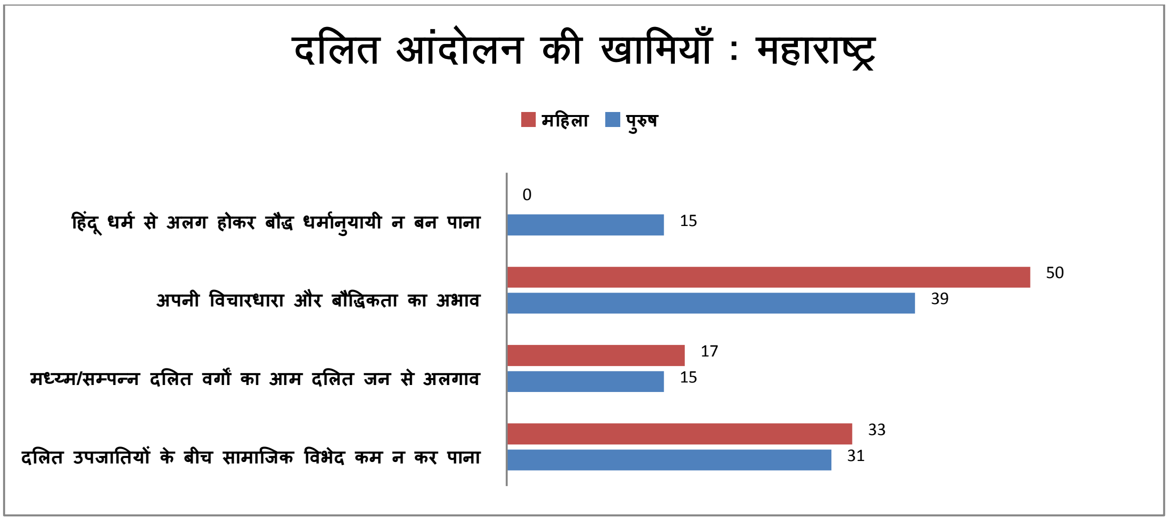

ग्राफ–21.1

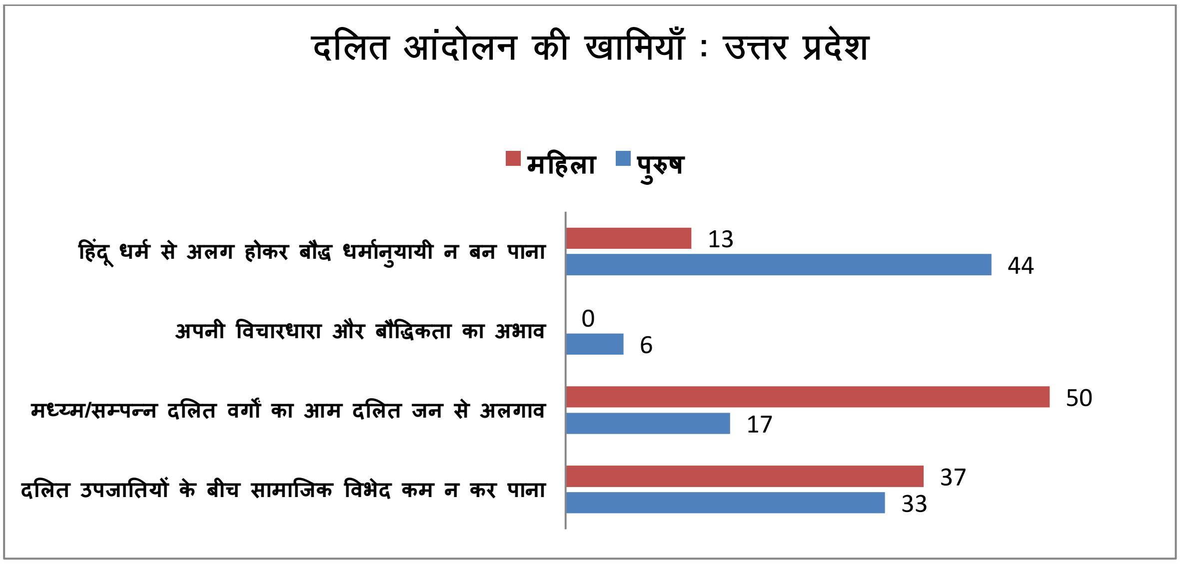

ग्राफ–21.2

22. दलित आंदोलन का आदर्श स्वरुप कैसे विकसित हो यह पूछे जाने पर महाराष्ट्र के 46 प्रतिशत पुरुषों और 83 प्रतिशत महिलाओं ने सर्वाधिक महत्व दलितों में शिक्षा के अधिकाधिक प्रसार को दिया। उत्तर प्रदेश में भी शिक्षा को 22 पुरुषों और 74 प्रतिशत महिलाओं द्वारा दलित आंदोलन का मुख्य आधार बताया। डॉ अम्बेडकर के विचारों को आधार बना कर दलित आंदोलन का आदर्श स्वरुप विकसित किया जा सकता है ऐसा मानने वाले महाराष्ट्र के 46 प्रतिशत पुरुष और 17 प्रतिशत महिलाएं हैं। जबकि उत्तर प्रदेश के 33 प्रतिशत पुरुष और 13 प्रतिशत महिलाएं अम्बेडकर के विचारों को सर्वोपरि महत्व देते हैं। उत्तर प्रदेश के 39 प्रतिशत पुरुषों और 13 प्रतिशत महिलाओं ने माना कि दलित आंदोलन को मजबूती से खड़ा करने के लिए दलितों को अपना मीडिया स्थपित करना चाहिए और सोशल मीडिया का रणनीतिक इस्तेमाल करना चाहिए।(ग्राफ–22.1 एवं 22.2)

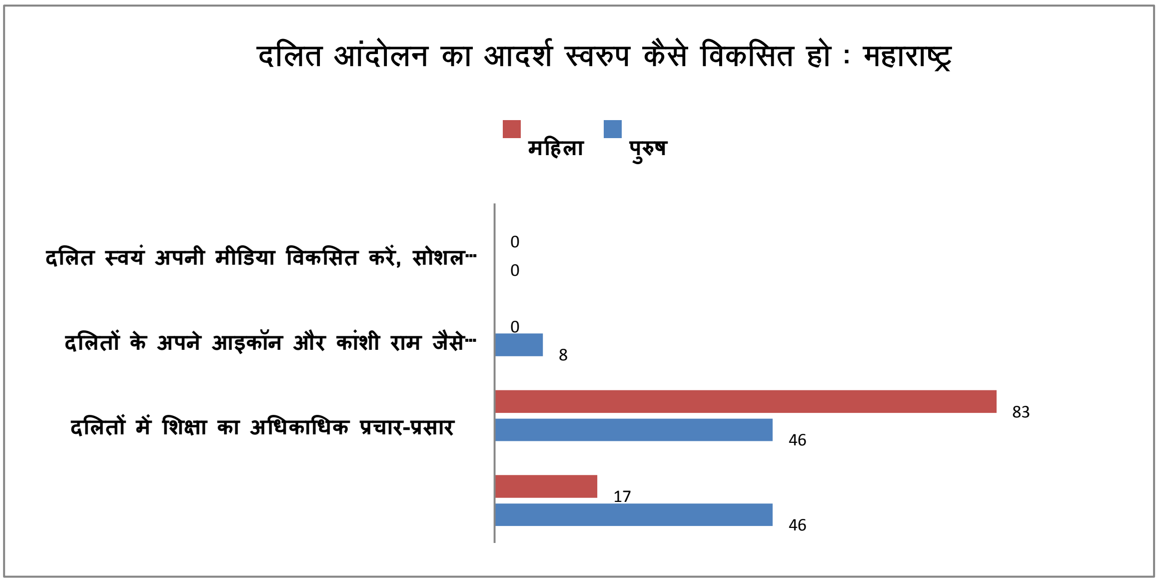

ग्राफ–22.1

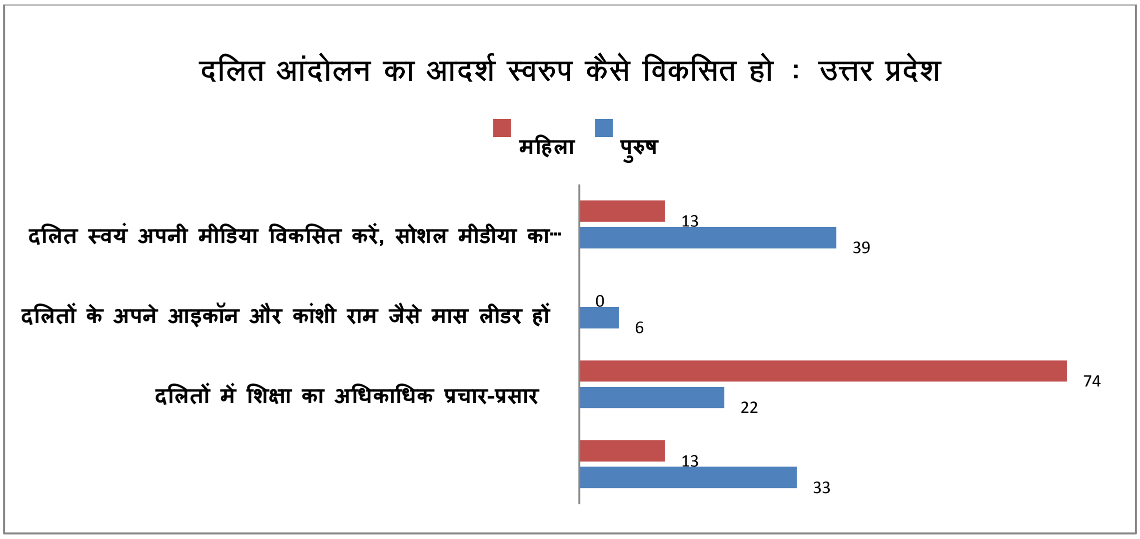

ग्राफ–22.2

23. सर्वे में महाराष्ट्र के 54 प्रतिशत पुरुषों एवं 67 प्रतिशत महिलाओं और उत्तर प्रदेश के 78 प्रतिशत पुरुषों एवं 87 प्रतिशत महिलाओं ने दलितों की अधिकाधिक शैक्षणिक प्रगति को दलितों की मुक्ति का सर्वप्रमुख मार्ग माना। महाराष्ट्र के 39 प्रतिशत पुरुषों और 33 प्रतिशत महिलाओं ने आरक्षण व्यवस्था को दृढ़ता से लागू करने को दलित मुक्ति का मार्ग माना है जबकि उत्तर प्रदेश के 13 प्रतिशत पुरुष ऐसा मानते हैं।

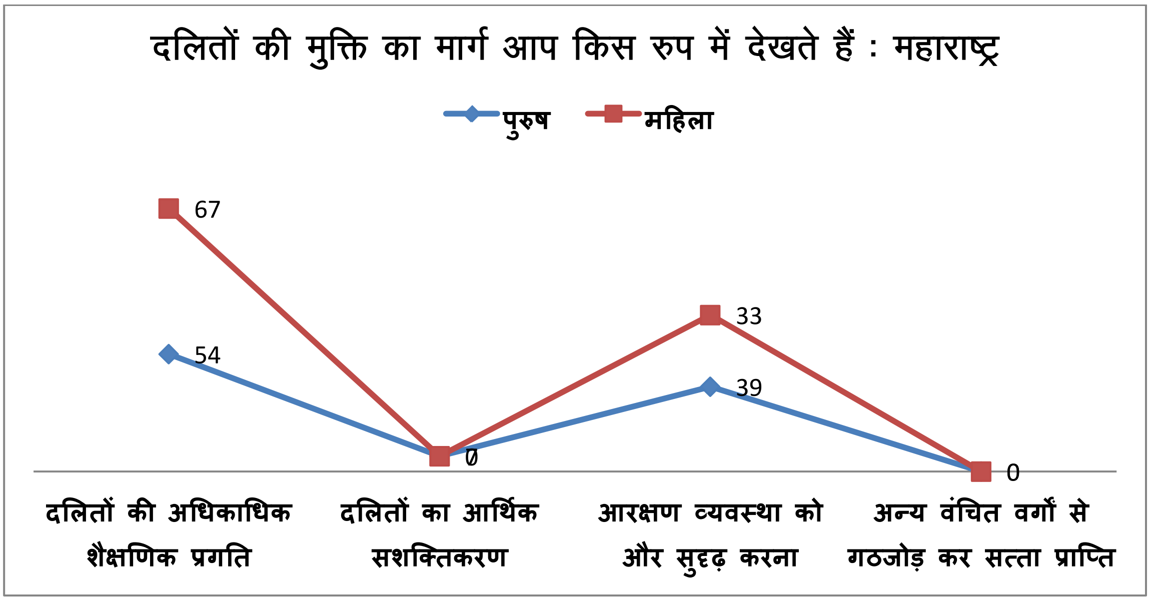

ग्राफ–23.1

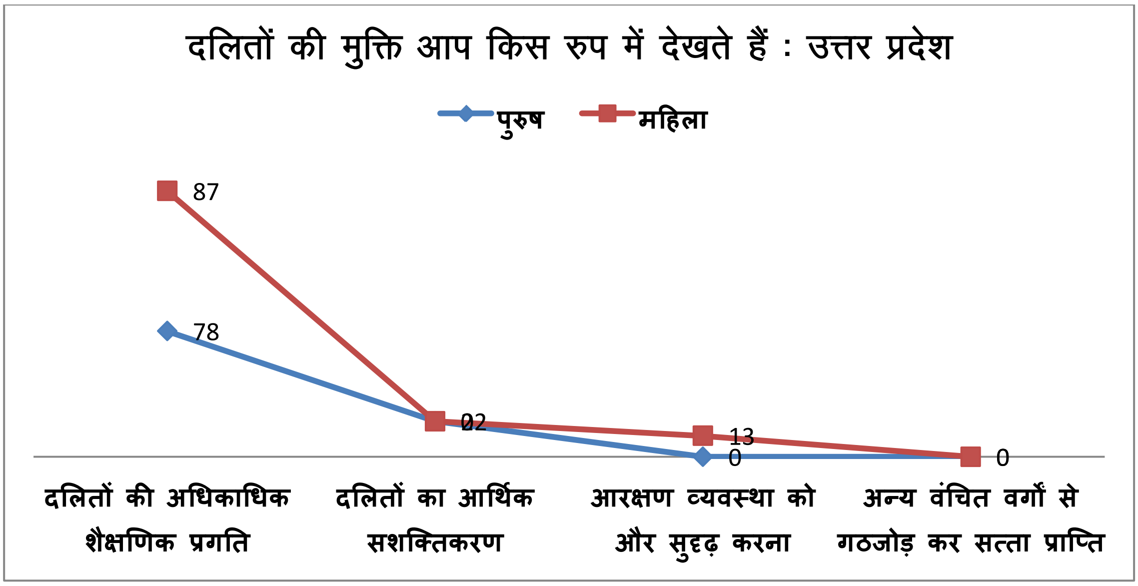

ग्राफ–23.2

निष्कर्ष –

हमने अपने शोध–सर्वे में पाया कि डॉ अम्बेडकर के सामाजिक और राजनीतिक विचारों ने महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलनों को जिन रुपों में प्रभावित किया उसमें इन राज्यों में दलितों की आबादी, उनके शैक्षणिक और आर्थिक स्तर, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों, आंदोलनों की ऐतिहासिक प्रास्थिति और राजनीतिक घटनाक्रम से प्राप्त अनुभवों के परिणामस्वरुप समानता और विषमता नजर आती है। समानता का सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि इन दोनों राज्यों के दलित जन अम्बेडकर को अपने सामाजिक सम्मान और बौद्धिक और दार्शनिक पथ प्रदर्शक मानते हुए भी उन्हें एक सर्वमान्य राजनीतिक व्यक्तित्व के रुप में स्थापित होते देखना चाहते हैं। यही वजह है कि इन दोनों राज्यों के दलित यह नहीं मानते कि अम्बेडकर के विचारों की सार्थक परिणति यह होगी कि दलित शासक वर्ग के रुप में स्थापित हो जाएं या उनकी पृथक सामाजिक/सांस्कृतिक पहचान कायम हो जाए बल्कि सर्वे में इन दोनों राज्यों के लोगो ने यह माना कि देश में समतामूलक समाज की स्थापना अम्बेडकर के विचारों की सार्थक परिणति होगी। इसी प्रकार अम्बेडकर द्वारा संविधान निर्माण को इन दोनों राज्यों के दलित उनकी समाज के प्रति सबसे बड़ी देन मानते हैं। यह पूछे

जाने पर कि डॉ अम्बेडकर के विचारों का प्रतिनिधित्व कौन सी पार्टी कर रही है सर्वे में दोनों राज्यों के लोगों ने खास तौर पर 'कांशीराम' द्वारा स्थापित बसपा का नाम लिया। यहाँ पर कई लोगों ने बसपा का नाम लेते हुए भी इसके वर्तमान नेतृत्व से अपनी निराशा का उल्लेख किया। यही नहीं अपितु समान संख्या में लोगों का यह मानना था कि कोई पार्टी अम्बेडकर के विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं करती।

दलित महिलाओं की समस्याओं के बारे में जहाँ महाराष्ट्र के अधिकांश लोगों का यह मानना है कि दलित महिलाओं और पुरुषों की समस्याएँ एक समान है वहीं उत्तर प्रदेश के लोगों का यह मानना है कि दलित महिलाएँ पुरुष प्रधान दलित समाज और जातिवाद के दोहरे शोषण का शिकार हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि महाराष्ट्र का दलित आंदोलन कुछ हद तक दलितों में लैंगिक विभेद मिटाने में सफल रहा है। शिक्षा और साक्षरता में वृद्धि को इन दोनों राज्यों के अधिकांश लोगों ने शिक्षा और सेवाओं में आरक्षण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिणाम माना है।

दलितों का राजनीतिक हित कैसे सम्भव है—इस प्रश्न के उत्तर में हमने पाया कि दलितों में महाराष्ट्र के मुकाबले उत्तर प्रदेश में ज्यादा भ्रम की स्थिति विद्यमान है। शायद बसपा की राजनीति के सिद्धांतहीन हो जाने की वजह से। उत्तर प्रदेश में बड़ी संख्या में लोग मानने लगे हैं कि किसी भी राष्ट्रीय पार्टी में समुचित भागीदारी या किसी भी अच्छे नेता द्वारा दलितों का उद्धार संभव है।

सर्वे में उत्तर प्रदेश के ज्यादातर लोगों ने माना कि आरक्षण व्यवस्था कायम रखवाना दलित राजनीति की सबसे बड़ी उपलब्धि है। जबकि महाराष्ट्र के अधिसंख्य लोगों का मानना है कि सिविल सोसायटी और मीडिया को दलित हितों के प्रति जागरुक रखना दलित राजनीति की सबसे बड़ी उपलब्धि है। जहाँ तक दलित राजनीति की खामियों का प्रश्न है इसमें दोनों राज्यों में यह माना गया कि अम्बेडकर के विचारों को अपनी राजनीति का आधार न बना पाना और दलित पार्टियों का व्यक्ति, परिवार एवं उपजाति केन्द्रित हो जाना दलित राजनीति की सबसे बड़ी खामियाँ हैं।

अम्बेडकर द्वारा रचित संविधान के बारे में दोनों राज्यों में माना गया कि यह देश में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की स्थापना करने में काफी हद तक सफल रहा है। दलितों को प्राप्त आरक्षण के बारे में यद्यपि दोनों राज्यों में अधिकांश लोग यही मानते हैं कि यह आरक्षण जारी रहना चाहिए किन्तु उत्तर प्रदेश में कई लोगों की यह भी धारणा बन रही है कि सामाजिक और शैक्षणिक रुप से पिछड़ी दलित जातियों को आरक्षण के लिए पृथक से वर्गीकृत किया जाए।

डॉ अम्बेडकर के नवयान बौद्ध धर्म में दलितों के धर्मान्तरण को दोनों राज्यों के दलित बौद्ध धर्म के वैज्ञानिक, तार्किक और मानवतावादी होने और इसके समता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व जैसे मूल्यों पर आधारित होने से जोड़ कर देखते हैं न कि वे इसे हिन्दुत्व से विरक्ति या हिन्दू धर्म से पृथक अपनी सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान के तौर पर देखते हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि बौद्ध धर्म के प्रति दलितों का अभिमुखी करण बौद्ध धर्म के सकारात्मक मूल्यों का परिणाम है। यद्यपि सर्वे में दोनों राज्यों के दलितों ने बौद्ध धर्म के प्रति अपने आध्यात्मिक रुझान को व्यक्त किया किन्तु महाराष्ट्र के दलितों में अम्बेडकर के 22 प्रतिज्ञाओं पर आधरित बौद्ध धर्म के प्रति प्रतिबद्धता अधिक दिखाई देती है। हालांकि दोनों राज्यों के दलित कम से कम प्रकट रुप से अपने परंपरागत (सनातन) धर्म में या इसके बौद्ध धर्म के साथ मिले–जुले स्वरुप में अपनी आध्यात्मिक संतुष्टि का आधार नहीं देखते। दोनों राज्यों के दलित बौद्ध धर्म अपनाने को राजनीतिक नजरिए या सामाजिक अस्मितागत रुप में उतना नहीं देखते जितना कि इस रुप में देखते हैं कि यह उन्हें अतार्किकता और शोषण पर आधरित ब्राह्मणवाद से मुक्त करा कर वैज्ञानिकता और तार्किकता की ओर अग्रसर होने में मदद दे सकता है।

दलित आंदोलन के बारे में सर्वे में यह बात उभर कर सामने आई कि दोनों राज्यों के दलित मानते हैं कि इन आंदोलनों को राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का माध्यम नहीं बनाना चाहिए। बल्कि इसका उद्देश्य दलितों में एकता के लिए जागरुकता अभियान चलाना और दलितों को शोषण से बचाने के लिए सशक्त बनाना होना चाहिए। सर्वे में दोनों राज्यों में माना गया कि दलित उपजातियों में सामाजिक विभेद कम न कर पाना दलित आंदोलन की एक गम्भीर खामी है।

महाराष्ट्र में बड़ी संख्या में लोग मानते हैं कि दलित आंदोलन में अपनी विचारधारा और बौद्धिकता का अभाव है। जबकि उत्तर प्रदेश के अधिकांश लोगों का मानना है कि मध्यम सम्पन्न दलित जन का आम दलितों से अलगाव दलित आंदोलन की एक बड़ी खामी है। दोनों राज्यों में दलितों का मानना है कि दलितों में शिक्षा के अधिकाधिक प्रसार और डॉ. अम्बेडकर के विचारों को आधार बना कर दलित आंदोलन का आदर्श स्वरुप विकसित किया जा सकता है। दोनों राज्यों के अधिकांश दलित यह मानते हैं कि अधिकाधिक शैक्षणिक प्रगति दलितों की मुक्ति का मार्ग है। दलितों की मुक्ति के लिए आरक्षण व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण और उनके आर्थिक सशक्तिकरण का नम्बर दलितों की शैक्षणिक प्रगति के बाद आता है।

इस प्रकार सर्वे में जो बातें प्रमुख रुप से सामने आईं वे निम्नवत हैं–

1. डॉ अम्बेडकर के विचार दलितों के लिए प्रेरणास्रोत बने हुए हैं।
2. दलितों के उत्थान की दिशा में सांवैधानिक प्रावधानों ने सकारात्मक योगदान दिया है।
3. बौद्ध धर्म का नैतिक और बौद्धिक स्वरुप शिक्षित दलितों को आकर्षित करने लगा है।
4. दलित आंदोलन को दलितों की शैक्षणिक प्रगति, दलित एकता और उनके सशक्तिकरण की दिशा में कार्य करना चाहिए।
5. दलित राजनीति के प्रति आम दलितों में जो उदासीनता का भाव है वह तभी दूर हो सकता है जब दलित नेता डॉ अम्बेडकर के विचारों को अपनी राजनीति का आधार बनाएं।

अध्याय–सप्तम्
निष्कर्ष एवं उपसंहार

अध्याय–सप्तम्

निष्कर्ष एवं उपसंहार

निष्कर्ष –

कुछ दशक पहले तक दलित आंदोलन का प्रभाव विभिन्न राज्यों के कुछ सीमित क्षेत्रों तक होता था किंतु अब दलित आंदोलन का प्रभाव राष्ट्रीय स्तर पर देखा जाता है उदाहरणस्वरूप 2 अप्रैल का देशव्यापी हड़ताल, 200 पॉइंट रोस्टर को लागू करने के लिए दलित छात्रों एवं प्राध्यापकों द्वारा किया गया आंदोलन एवं महाराष्ट्र कोरेगांव हिंसा के विरूद्ध किया गया जनांदोलन। इन सभी आंदोलन में एक चीज सामान्य थी, वह थी डॉ अंबेडकर के विचारधारा के आधार पर लोगों का एकत्रित होना। डॉ अंबेडकर के विचारों के प्रभाव से देश के दलित समुदाय अपने को शिक्षित एवं संगठित कर रहे हैं लेकिन अभी भी दलितों की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार दलितों पर होने वाले 'अत्याचारों' में वृद्धि हुई है। 2006–16 की रिर्पोट के अनुसार दलितों के विरुद्ध प्रत्येक 15 मिनट में एक अपराध होता है। 6 दलित महिलाएं प्रतिदिन यौन दुराचार की शिकार होती हैं। 2006 में प्रति एक लाख दलितों में 2.4 के साथ अपराधिक घटनाएं होती थी जो 2016 में बढ़कर 20.3 हो गयीं। उत्तर प्रदेश में जहां दलितों की आबादी प्रतिशत 21 है वहां देशभर में दलितों के विरुद्ध सबसे ज्यादा अपराध और उत्पीड़न की घटनाएं हो रही हैं जो देशभर में दर्ज अपराध का 17 प्रतिशत है। दलित समुदाय अपने 84 प्रतिनिधियों को भारतवर्ष से लोकसभा में भेजते हैं, क्या उनकी जिम्मेदारी नहीं है कि वे इन अत्याचार के विरुद्ध अपनी सक्रियता दिखाएं। ज्यादातर वही दलित अत्याचार एवं दमन के शिकार होते हैं जो आरक्षण के प्रावधानों का औसत लाभ नहीं ले पाए हैं। उन दलितों की जो शैक्षणिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त हो गए हैं कि उनकी यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वे छूटे वंचित दलितों की मदद करें। उन्हे सरकार के जागरूकता कार्यक्रमों से लोगों को अवगत कराएं। संवैधानिक प्रावधानों, सरकार की योजनाओं एवं साक्षरता के बढ़ने से दलितों की स्थिति में युगांतकारी बदलाव आए

हैं। उदारीकरण, ग्लोबलाइजेशन से दलितों के रहन–सहन में बदलाव आया है। वे शहर की ओर पलायन करने लगे हैं। शहरों में अर्थोपाय के साधन हैं। परंपरागत जातीय पेशा छोड़कर अन्य व्यवसायों में जाने से इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आया है। शहरों में नवीन दलित मध्यम वर्ग उभरे हैं जिनकी अपनी महत्वाकांक्षाए हैं। दलित समुदाय का एक बड़ा वर्ग अच्छी शिक्षा एवं अच्छी नौकरी से अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठा रहा है। 2011 की जनगणना के आधार पर भारत का कुल साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है। जिसमें से दलितों में साक्षरता दर 66.07 प्रतिशत है। महाराष्ट्र में दलितों की साक्षरता का प्रतिशत 79.66 है जबकि उत्तर प्रदेश में दलित साक्षरता 60.89 प्रतिशत है।[1] स्वतंत्रता के पश्चात दलितों की साक्षरता दर 10.27 प्रतिशत थी जिसमें निश्चित रुप से उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इसी प्रकार नौकरी पेशा दलित वर्गों की संख्या भी बढ़ी है। दलितों में एक मध्यम वर्ग बना है जो सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से जागरूक है। शैक्षणिक एवं आर्थिक स्तर पर दलित महिलाओं की स्थिति में भी सुधार आया है। 2015–16 मिनिस्ट्री आफ पर्सोनेल, पब्लिक ग्रिवान्सेज एंड पेंशन की रिपोर्ट के अनुसार सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति की संख्या 17 प्रतिशत है। शोध सर्वे में यह बात स्पष्ट रूप से सामने आई है कि दलितों में नौकरी एवं शिक्षा में आरक्षण के परिणामस्वरूप महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलितों में साक्षरता के प्रतिशत में वृद्धि हुई है, एवं उनकी आर्थिक स्थिति भी उन्नत हुई है। महाराष्ट्र की तरह उत्तर प्रदेश के लोग भी दलितों में शिक्षा के प्रसार में डॉ अंबेडकर की भूमिका को सर्वोपरि मानते है। आरक्षण से दलितों को अलग सामाजिक पहचान बनी है। दलितों में एक मध्यम वर्ग उभरा है जो सामाजिक, शैक्षणिक, बौद्धिक एवं राजनीतिक रूप से जागरूक है भले ही इसका प्रतिशत कुल जनसंख्या अनुपात से कम है। शोध सर्वे से पता चलता है कि दलित आंदोलन का उद्देश्य दलितों की एकता को बनाए रखना होना चाहिए। दलित आंदोलन के आदर्श स्वरूप को विकसित करने के लिए दलितों में अधिकाधिक शिक्षा एवं चेतना का प्रसार करना होगा। डॉ अंबेडकर के विचारो को आधार बनाकर दलित आंदोलन का आदर्श स्वरूप विकसित किया जाए।

---

[1] जनगणना, 2011

साथ ही साथ दलित आंदोलन को मजबूती प्रदान करने के लिए दलितों को अपनी मीडिया स्थापित करनी चाहिए और सोशल मीडिया का रणनीतिक इस्तेमाल करना चाहिए। इस प्रकार **शोध प्रबन्ध की इस परिकल्पना की पुष्टि होती है कि डॉ. अंबेडकर के दलित आंदोलन का भारत के दलित समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।**

दलितों की राजनीतिक स्थिति का अवलोकन करने एवं डॉ. अंबेडकर के राजनीतिक विचारों के प्रभाव के अध्ययन के क्रम में पाया गया कि डॉ. अंबेडकर दलितों को सत्ता की मुख्य भूमिका में लाना चाहते थे। वे उनमें राजनीतिक जागरूकता पैदा कर शासक बनने की इच्छा उत्पन्न करना चाहते थे। पूना पैक्ट के बाद दलितों को आरक्षित सीटें मिली संसदीय लोकतंत्र में संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा सीटें सुरक्षित कर दी गईं। जिससे दलितों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व मिला। डॉ. अंबेडकर के पश्चात् कांशीराम की बहुजन राजनीति ने दलितों को देश के सबसे बड़े राज्य में सत्ता के शीर्ष पर पहुंचा दिया। कांशीराम ने बहुजन राजनीति को मजबूत करने के लिए जातियों को सशक्त करने पर जोर दिया। कांशीराम ने देखा कि दलित राजनीति में मुख्यधारा की पार्टियों ने दलित नेताओं के बीच अपने लाभ के लिए राजनीतिक स्टूज वर्ग का निर्माण कर दिया है। राजनीतिक सफलता प्राप्त करने के लिए कांशीराम ने दलित–बहुजन समाज को सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से मोबिलाइज करके सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन को सशक्त किया। जिसके फलस्वरुप उनकी राजनीतिक पार्टी बसपा सत्ता में आई। शोध सर्वे में दोनों प्रदेशों के अधिकांश लोगों का यह मानना है कि सिविल सोसायटी और मीडिया को दलित हितों के प्रति जागरूक रखना और आरक्षण व्यवस्था को कायम रखना दलित राजनीति की सबसे बड़ी उपलब्धि है। दोनों राज्यों में देश में स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व की स्थापना और वंचित तबकों के सरकारी सेवा में आने के अवसर को डॉ. अम्बेडकर द्वारा रचित संविधन की सबसे बड़ी उपलब्धि माना गया है। महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश दोनों राज्यों के अधिकांश लोग आरक्षण के मौजूदा संवैधानिक प्रावधानों को जारी रखने के पक्ष में हैं। हालांकि शोध सर्वे में दोनों राज्यों के कुछ लोगों का मत है कि दलितों में सामाजिक और शैक्षणिक रुप

से पिछड़ी जातियों का एक पृथक वर्ग बनाया जाए। साथ ही आरक्षण से लाभन्वित हो चुकी जातियों को क्रीमी लेयर में सम्मिलित किया जाना चाहिए। इस प्रकार इस **शोध परिकल्पना की पुष्टि होती है कि दलितों को संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा शैक्षणिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से सशक्त किया गया।**

दलित बहुजनों को शिक्षित संगठित होकर लगातार संघर्ष करने एवं अपने बेहतर स्थिति के लिए प्रयत्न करते रहना होगा। आगे बढ़े हुए दलित समाज एवं दलित जनों का यह नैतिक उतरदायित्व है कि हाशिए पर रह रहे दलित समाज को आगे बढ़ने का अवसर सुलभ कराए। सर्वे में भी कमोबेश लोगों की यही मनोवृति सामने आई है तभी बहुसंख्यक समाज का आंदोलन सफल हो पाएगा अन्यथा अन्य इस बिखराव का लाभ उठाते रहेंगे। दलित बहुजन राजनीति के भविष्य एवं इस समाज के लोगों को अपनी वजूद को बनाए रखने के लिए डॉ अंबेडकर द्वारा दिए गए सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक सिद्धांतों और विचारों पर चलना ही स्थायी सफलता के लिए आवश्यक है। जिसमें डॉ अंबेडकर जाति के विनाश की जो बात करते हैं। उसी दर्शन पर चलते हुए दलित बहुजन आंदोलन को सफलता मिलेगी।

कांशीराम के इस सिद्धांत के विपरीत जातियों के गर्व करते के सिद्धांत पर चलकर सामाजिक आंदोलन एवं स्थानीय गर्व की मान्यताओं को बढ़ाया जिससे उन्हें राजनीतिक सफलता मिली लेकिन यह स्थायी रूप से दलितों बहुजनों को शासक वर्ग में नहीं रख पाया। साथ ही साथ समस्त सामाजिक आन्दोलनों को भी छिन्न–भिन्न कर दिया। अवसरवादिता एवं सत्ता प्राप्ति के लिए सभी आदर्शो की बलि तक दे दिया गया। ज्ञान–विज्ञान, शोध और नवाचारों के इस दौर में दलित नेताओं द्वारा बुद्धि की बात और बुद्धिजीवियों से दूरी बना लेना, दलित बहुजन की स्वतंत्र राजनीति पर पूर्णविराम लगने जैसा हो गया है। संजय जोठे ने '**दलित बहुजन राजनीति के भविष्यः जाति से वर्ण और वर्ण से धर्म की राजनीति कि ओर**' में कहा है कि डॉ अंबेडकर के सिद्धांतों पर चलकर ही दलित बहुजन आंदोलन स्थायी सफलता प्राप्त कर सकता है। डॉ अंबेडकर एक समाजशास्त्री, मानवशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ भी थे। उनका मानना था कि किसी भी राजनीतिक बदलाव के लिए

मजबूत सामाजिक आंदोलन की पृष्ठभूमि रहती है। डॉ अंबेडकर समानता के लिए जाति के नाश को सर्वोच्चता देते हैं उनके सिद्धांत में जाति के नकार से ही शुरू होगा। अंबेडकर के सिद्धांत में जाति पर गर्व करने की बात तो दूर रही बल्कि जाति को एक सांगठनिक और राजनीतिक गणित का आधार भी नहीं मानते। वे जाति से बड़ी इकाई वर्ण और धर्म से शुरू करते हैं। डॉ अंबेडकर जातियों को अपनी रूढ़िवादी पहचानों से, अपनी मानसिक, शैक्षणिक, व्यवसायगत और धार्मिक गुलामी से मुक्त कराना चाहते थे। बुद्ध, कबीर और फुले भी जातियों को मिटाना चाहते थे। उनके विचार के मूल तत्व में जो बातें हैं वे महत्वपूर्ण हैं। वे दलितों, शूद्रों और महिलाओं के पतन का कारण धर्म और संस्कृति के मनोविज्ञान में खोजते है। जिसके लिए वे आर्य आक्रमण और रेसियल डिफरेंस के सिद्धांतों से नहीं उलझते हैं उन्हें नकार देते हैं। वे शोषण और विभाजन के समाज एवं मनोवैज्ञानिक इतिहास पर केंद्रित होते हैं। जिसके लिए वे ऐतिहासिक धर्म ग्रंथों में इसकी सत्यता तलाशते हैं। डॉ अंबेडकर इस निष्कर्ष एवं जाति को बनाए रखने की खोज पर पहुंच जाते हैं। उनके अनुसार केवल एक वर्ण की सर्वोच्चता को बनाए रखने के लिये एक ही देश के वाशिंदे के बीच रचे गए आंतरिक षडयंत्र की तरह ब्राह्मणवाद आता है। डॉ अंबेडकर ब्राह्मणवादी धर्म के न्याय सिद्धांत (जिसमें समानता, घृणा, दमन) और नीतिबोध (अवैज्ञानिकता) पर सवाल उठाते हैं। इस ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विपरीत बुद्ध और बौद्ध धर्म की खोज करते हैं। जो कि हिंदू ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विकल्प के रूप में वे तैयार करते हैं। जिसकी जड़ें उसी इतिहास से जुड़ी है जिससे हिंदू धर्म निकला है। वर्तमान समय में दलित आंदोलन एवं दलित बुद्धिजीवियों को डॉ अंबेडकर के बताए मार्ग पर बढ़ाना है। इसका सीधा अर्थ ये है कि जातिविहीन समाज की कल्पना करते हुए डॉ अंबेडकर के बौद्ध धर्म को और जिस नैतिकता और आचारशास्त्र को चुना था उसका पूरी शक्ति से प्रचार करना उसी दिशा में राजनीतिक संगठन का निर्माण करना है। जाति पर गर्व करने का मतलब है ब्राह्मणवादी विभाजक षड्यंत्र पर गर्व करना। जाति पर गर्व करना मतलब जाटव, चमार, यादव, कुर्मी, धोबी सभी जातियों का आपस में लड़ते रहना जिसका फायदा ब्राह्मण वर्ण उठा लेता है। बौद्ध धर्म का प्रचार कर उसे आचार के सिद्धांत में लाया जाए। बौद्ध धर्म की नैतिकता, वैज्ञानिकता एवं तर्कशक्ति प्रचार के द्वारा

सभी दलित बहुजनों को अंधविश्वास से बाहर निकालकर बच्चों, युवकों एचं महिलाओं का वैज्ञानिक, लोकतांत्रिक और समतामूलक विचारधारा की तरह बौद्ध धर्म की शिक्षा दी जाए। ऐतिहासिक अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि दलित शुद्र बौद्ध ही हैं। हिंदू धर्म के अपमान के बदले अपने धर्म को उन्नत करें, अपनी संस्कृति को आगे बढ़ाना ही दलित आंदोलन का उद्देश्य होना है जिससे एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण होगा। शोध सर्वे मे डॉ अम्बेडकर के नवयान बौद्ध धर्म में दलितों के धर्मान्तरित होने की अभिप्रेरणा को दोनों राज्यों के अधिकांश लोग बौद्ध धर्म के वैज्ञानिक, तार्किक और मानवतावादी होने के रुप में स्वीकार करते हैं। साथ ही कई लोग बौद्ध धर्म के स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के संदेश को दलितों के धर्मांतरण का कारण बताते हैं।

महाराष्ट्र के अधिकांश लोग जहाँ डॉ अम्बेडकर के 22 प्रतिज्ञाओं पर आधारित बौद्ध धर्म को अपनी आध्यात्मिक संतुष्टि का आधार मानते हैं वहीं उत्तर प्रदेश के लोग तार्किकता, नैतिकता और मानवीय मूल्यों के अनुपालन में आध्यात्मिक संतुष्टि प्राप्त होती है। शोध सर्वे में बौद्ध धर्मान्तरण से लाभ के विषय में पूछे जाने पर अतार्किकता और शोषण पर आधारित ब्राह्मणवाद से मुक्ति मिलने की बात कही बौद्ध धर्म उन्हें बौद्धिकता और तार्किकता का अनुसरण करने की प्रेरणा देता है। दूसरी ओर उत्तर प्रदेश के लोगों ने बौद्धिकता और तार्किकता के अनुसरण की प्रेरणा को बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण योगदान माना। इस प्रकार **यह शोध परिकल्पना सिद्ध होता है कि बौद्धधर्म के प्रभाव से दलितों में सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ है।**

दलित राजनीति वर्तमान समय में एक ऐसी बंद गली में आकर फंस गई है जहां से उसके आगे बढ़ने की सम्भावनाएँ एकदम धूमिल नजर आती हैं। खास कर 2019 के लोक सभा आम चुनावों के परिणाम ने यह सिद्ध कर दिया है दलित बहुजन समाज का एक बड़ा हिस्सा भारतीय जनता पार्टी/आर एस एस के प्रभाव में आ चुका है। दलित बहुजन समाज पर भारतीय जनता पार्टी और आरएसएस के बढ़ते प्रभाव को केवल हिंदुत्व और राष्ट्रवाद का प्रभाव कह कर नहीं टाला जा सकता। समाज के कमजोर तबके के बहुत बड़े हिस्से ने भाजपा और आरएसएस के

शीर्षस्थ नेतृत्व में निःस्वार्थता एवं कर्तव्यपरायणता की एक झलक भी देखी जो दलित बहुजन पार्टियों के व्यक्तिवादी और वंशवादी नेतृत्व की पृष्ठभूमि में और प्रगाढ़ होकर सामने आती है। कमजोर तबकों को भाजपाई शासन में सरकारी नीतियों का पारदर्शी और भ्रष्टाचार मुक्त क्रियान्वन नजर आया। भाजपा नेतृत्व भले ही मीडिया के प्रबंधन से लोगों को यह बात समझाने में सफल रहा कि भाजपा सरकार की प्राथमिकता गरीब लोगों की मदद करना है और उन्होंने इसके लिए आवास, शौचालय, बिजली, खाद्यान्न, ऋण माफी, किसानों को आर्थिक मदद, विवाह सहायता, निःशुल्क गैस सिलेण्डर आदि योजनाओं का जम कर प्रचार किया। यही नहीं, बल्कि भाजपा नेतृत्व ने दलित बहुजन समाज की उन जातियों को भी राजनीतिक महत्व दिया जो यादव और जाटव जैसी बड़ी दलित पिछड़ी जातियों के नेतृत्व और उनके बड़बोले समर्थकों के द्वारा खुद को उपेक्षित महसूस कर रही थीं।

दलित पिछड़ा राजनीति की असफलता यूं तो पूरे देश में नजर आई किन्तु इसका निर्णायक स्वरूप उत्तर प्रदेश के चुनाव परिणामों से खास तौर पर उभर कर सामने आया। इन चुनावों में दलितों की राजनीतिक पार्टी बसपा और पिछड़ों की पार्टी सपा आपस में गठजोड़ करके भी भाजपा को हराने में विफल रही। यही नहीं अपितु इन दोनों पार्टियों का संयुक्त कैडर भी आरएसएस के जमीनी कार्यकर्ताओं की रणनीति का सामना करने में विफल रहा। वैसे सपा और बसपा का घटता जनाधार 2014 के लोक सभा चुनावों में इनकी पराजय और 2017 के विधान सभा चुनावों में इनकी करारी हार के दौरान ही सामने आ गया था। कई समीक्षकों ने सपा बसपा की राजनीतिक पराजय को विभिन्न रूपों में रेखांकित करने का प्रयास किया है। कई दलित चिंतक बहुजन समाज पार्टी की राजनीतिक पराजयों को दलित बहुजन सामाजिक आंदोलनों के कमजोर होने का परिणाम मानते हैं जो कि उनके अनुसार दलित ब्राह्मण गठजोड़ की सोशल इंजीनियरिंग की एक स्वाभाविक परिणति है। बद्रीनारायण जैसे समीक्षक इसे अति पिछड़ी और महादलित जातियों में हिंदुत्व के बढ़ते प्रभाव का परिणाम मानते हैं। संजय जोठे ने इसे बसपा की जातीय अस्मिता की राजनीति की हार और भाजपा की वर्ण और धर्म की राजनीति की जीत माना है। उनके अनुसार बसपा की पराजय ने कांशीराम की जातियों को मजबूत करने

और जाति पर गर्व करने की राजनीति की सीमाओं को उजागर कर दिया है और भावी दलित बहुजन राजनीति को पुनः अम्बेडकर की जातियों की विनाश की विचारधारा और वर्ण एवं क्रमशः धर्म (बौद्ध धर्म) की राजनीति की ओर आगे बढ़ना होगा।

भाजपा और आरएसएस के सम्मुख दलित और पिछड़े नेतृत्व वाली पार्टियों की विफलता के पीछे कोई एक कारण या परिस्थिति जिम्मेवार नहीं है बल्कि यह भारतीय राजनीति के एक ऐसे चरण में पहुंच जाने का परिणाम है जिसमें ये पार्टियां खुद को पुराने तौर तरीके से चला पाने में कठिनाई की अनुभूति कर रही हैं। यह भारतीय राजनीति का वह दौर है जब भारतीय मतदाता अपनी जातिगत अस्मिताओं से ऊपर उठ कर अपने जीवन स्तर की बेहतरी पर ध्यान देने लगा है। जब छोटी छोटी दलित पिछड़ी जातियां भी राजनीतिक पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराना चाहती हैं। जब किसी पार्टी का कोई अदना कार्यकर्ता भी व्यक्तिवाद और वंशवाद के वर्चस्व से मुक्त होकर राष्ट्रीय और राज्यस्तरीय राजनीति में नेतृत्व हासिल करना चाहता है। राजनीति के इस दौर में आम लोग भ्रष्टाचार और लूट के जरिए कमाई हुई सम्पति को हिकारत से देखने लगे हैं और यह महसूस करने लगे हैं कि भ्रष्टाचार की गंगा व्यवस्था की ऊंचाइयों से निकलती है और सब से अधिक कहर समाज के कमजोर और गरीब व्यक्ति पर ही डालती है। दरअसल हालिया चुनावों में सपा, बसपा और राजद जैसी पार्टियों की हार इन पार्टियों द्वारा दिखाए गए सपनों और जगाईं गईं उम्मीदों के पूरा न हो पाने से हुए मोहभंग का परिणाम है। इसमें कोई शक नहीं कि लोगों की आशाओं और उम्मीदों को जगा कर इन दलों ने राजनीति को एक नए दौर में पहुंचा दिया किन्तु अपने आंदोलनात्मक स्वरूप को छोड़ कर ये पार्टियाँ नेतृत्व, विचारधारा और संगठन तीनों स्तरों पर कमजोर पड़ती चली गईं। वैचारिक रूप से ये पार्टियां स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांत से दूर हट कर जहां जातिगत राजनीति के दलदल में फंसती चली गईं वहीं नेतृत्व के स्तर पर ये व्यक्तिवाद, वंशवाद और भाई भतीजावाद की राजनीति का इस कदर शिकार हुईं कि इनके लिए नवोदित कर्मठ, सुशिक्षित, कारगर और जुझारू नेतृत्व के लिए कोई स्थान ही नहीं रहा। व्यक्तिवाद, जातिवाद, अवसरवाद, विचारशून्यता और

भ्रष्टाचार ने इन पार्टियों को सांगठनिक रूप से इतना कमजोर कर दिया कि इनका संपर्क आम लोगों से कटता ही चला गया है और ये पार्टियां जमीन से कुछ इस कदर कट गयीं कि चुनावों में होने पराजय को ये भांप तक नहीं पाईं।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति अपने विकास के एक ऐसे चरण में पहुंच चुकी है जिसमें राजनीति के घिसे पीटे तौर तरीकों को आजमा कर सफलता नहीं पाई जा सकती है। राजनीति के वर्तमान दौर में सफल होने के लिए दलित राजनीति को अपना आंदोलनात्मक स्वरूप पुनः हासिल करना होगा। वैचारिक रूप से खुद को सुदृढ़ करना होगा एवं ईमानदार, कर्मठ और प्रतिबद्ध नेतृत्व को आगे कर पार्टी विशेष के उस मोरल हेजेमनी (नैतिक वर्चस्व) को आम जनता में तोड़ना होगा जो उन्होंने ईमानदार युवा आदि जमीनी और जुझारू नेताओं को नेतृत्व देकर प्राप्त किया है।

नए नेतृत्व और राजनीतिक दलों का प्रादुर्भाव जन आंदोलनों की बदौलत होता है, जबकि जन आंदोलनों का जन्म समाज में व्याप्त विसंगतियों के विरुद्ध असंतुष्ट वर्ग के आक्रोश से होता है। वैसे समाज में व्याप्त विसंगतियां ही जन आंदोलन के उद्भव के लिए पर्याप्त नहीं होतीं जब तक की उत्पीड़ित समाज में एक ऐसे जागरुक, संवेदनशील और साहसिक बौद्धिक लोगों का आगमन न हो जो इन विसंगतियों के स्रोत और स्वरुप को समझ सकें, इन्हें अभिव्यक्त कर सकें और उत्पीड़ित वर्ग को अपने नेतृत्व से यह अहसास दिला सकें कि इन विसंगतियों से मुक्ति सम्भव है। ऐसे बौद्धिक नेतृत्व के अभाव में समाज का उत्पीड़ित वर्ग समाज में प्रचलित सत्ताधारी वर्ग की विचारधारा और चिंतन के प्रभाव में अपने उत्पीड़न को स्वाभाविक, अपरिवर्तनशील और अपने ही कर्मों और नियति का परिणाम मानता रहता है। अंतोनियो ग्राम्सी के अनुसार समाज में प्रचलित सत्ताधारी वर्ग की विचारधारा को प्रचारित करने का कार्य समाज के पारम्परिक बुद्धिजीवियों के द्वारा किया जाता है।[2] जन आंदोलन के शुरुआती जुझारु दौर में आंदोलन का टकराव चूंकि सीधे तौर पर स्थापित सत्ता से होता है इसलिए आंदोलन से जुड़े लोग

---

[2] ग्राम्सी अंतोनियो, सांस्कृतिक और राजनीतिक चिंतन के बुनियादी सरोकार, पेज–103,104

आंदोलन के लक्ष्यों और आदर्शों के प्रति वैचारिक प्रतिबद्धता से संघर्ष की ऊर्जा एवं ऊष्मा प्राप्त करते हैं। आंदोलन के नेतृत्व को लेकर भी बहुत खींच–तान नहीं रहती। संघर्ष के इस दौर में आंदोलन का नेतृत्व उसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के पास रहता है जिसमें आंदोलन के उद्देश्यों और आदर्शों को अपने समाज या वर्ग के अधिकतम हिस्से तक संम्प्रेषित कर सकने का अभिव्यक्ति सामर्थ्य हो। दूसरे यह कि इस नेतृत्व या नेतृत्व समूह में स्थापित सत्ता से संघर्ष करते हुए त्याग करने का हौसला हो। दरअसल अपने इसी जुझारुपन और त्याग की बदौलत कोई नेतृत्व अपने समर्थकों का विश्वास, उनकी निष्ठा एवं प्रतिबद्धता प्राप्त करता है। किंतु जब कोई आंदोलन अपनी सफलता की ओर अग्रसर होता है और राजनीतिक आयाम प्राप्त कर सत्ता तंत्र में भागीदार बनने की स्थिति में पहुँचता है तो उस आंदोलन में नेतृत्व को लेकर कसमकश प्रारम्भ हो जाता है। प्रायः जन आंदोलनों से उभरने वाले राजनीतिक दलों में यह प्रवृति देखने को मिलती है कि सत्ता प्राप्ति के बाद इसका नेतृत्व व्यक्ति केन्द्रित होने लगता है। पार्टी में जी हुजूरी और चापलूसी करने वालों को तरजीह दी जाने लगती है और हर उस सम्भावित आवाज को दमित या पार्टी से बेदखल किया जाने लगता है जो पार्टी नेतृत्व के लिए खतरा बन सके। इस कम में एक ही जन आंदोलन से निकले नेतागण अपनी अलग–अलग पार्टियां बनाने लगते हैं जिसमें आंतरिक लोकतंत्र का शायद ही कोई स्थान रह जाता हो। यही नहीं अपितु आगे चल कर ये पार्टियां वंशवाद, परिवारवाद और भाई भतीजावाद का शिकार हो जाती हैं। आंदोलन से निकली पार्टियों के व्यक्तिवादी बन जाने कि यह प्रवृति महाराष्ट्र की विभिन्न रिपब्लिकन पार्टियों, उत्तर प्रदेश की बहुजन समाज पार्टी और समाजवादी पार्टी, बिहार की राष्ट्रीय जनता दल, जनता दल यूनाइटेड, हिन्दुस्तान अवामी और लोक जन शक्ति आदि पाटियों, तमिलनाडू की विभिन्न द्रमूक पार्टियों, दिल्ली की आम आदमी पार्टी जैसी छोटी पार्टियों में ही नहीं स्वतंत्रता आंदोलन से निकली कांग्रेस पार्टी में भी व्यक्तिवाद और वंशवाद की यह प्रवृति देखी जा सकती है। ऐसी विभिन्न पार्टियों में सत्ता का केन्द्रीकरण और लोकतंत्र तथा पारदर्शिता का अभाव इनकी मूल वैचारिकता को ही कुंठित नहीं करता बल्कि पार्टी में भ्रष्टाचार की प्रवृतियों को नियंत्रित करने वाले मैकेनिज्म को भी निष्क्रिय कर देता है।

इस सन्दर्भ में यह प्रश्न विचारणीय है कि आखिर समाज के समृद्ध वर्ग की हिन्दुत्व के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर आधरित पार्टी, भारतीय जनता पार्टी समय–समय पर उठने वाले नेताओं के परस्पर विरोधी स्वर और उनके यदा–कदा होने वाले छिटपुट विद्रोह के बावजूद क्यों किसी बड़ी फूट का शिकार नहीं हुई और क्यों इसमें समय–समय पर सहजतापूर्वक नेतृत्व परिवर्तन होता रहा? साथ ही इस प्रश्न पर विचार करना भी महत्वपूर्ण है कि मूलतः संकीर्ण सामाजिक आधार और अपनी तमाम पूंजीवादी–उदारवादी आर्थिक नीतियों के बावजूद यह पार्टी ने किस प्रकार न सिर्फ दशकों से सत्तासीन चली आ रही कांग्रेस पार्टी को सफलतापूर्वक हासिए पर धकेल दिया बल्कि जातीय और क्षेत्रीय अस्मिता की बात करने वाली पार्टियों के अस्तित्व और औचित्य पर भी सवालिया निशान लगा दिया। वस्तुतः इन प्रश्नों पर गम्भीरतापूर्वक विचार–विमर्श कर के ही भावी दलित राजनीति अपनी दिशा और रणनीति तय कर सकती है। इसके लिए उसे न सिर्फ अपने आंदोलन के मूल प्रेरणा स्रोत डॉ अम्बेडकर के विचारों और संघर्षों पर गम्भीरतापूर्वक मनन करना होगा बल्कि देश के विभिन्न भागों विशेषकर उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र में चले दलित राजनीति के प्रयोगों का भी आलोचनात्मक मूल्यांकन करना होगा।

राजनीतिक परिक्षेत्र में समतामूलक समाज और न्यायपरक शासन व्यवस्था की स्थापना के लिए भारतीय समाज के परम्परागत तबकों का आंदोलनरत होना एक आधुनिक परिघटना है। यद्यपि भारतीय इतिहास में पूर्व में भी वर्ण एवं जाति व्यवस्था को अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों के द्वारा चुनौती दी गई थी पर भारतवर्ष के वंचित तबके कभी ऐसा जन आंदोलन खड़ा नहीं कर पाए जो जाति व्यवस्था का पूर्ण उच्छेदन कर निर्णायक तौर पर एक समतामूलक समाज व्यवस्था स्थापित कर दे। चाहे भारतीय इतिहास के पूर्ववर्ती धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन हों या आधुनिक राजनीतिक आंदोलन इन सभी को अंततः असफलता का सामना करना पड़ा है और भारत की परम्परागत उच्च जातियां भारतीय समाज और सत्ता तंत्र पर अपना वर्चस्व कायम रखने में सफल रही हैं। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हिन्दुत्व और सनातन धर्म का जयघोष करने वाली भाजपा और उसके मातृ संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का भारतीय राजनीतिक पटल को पूरी तरह से आच्छादित

कर लेना भारतीय समाज में अब तक हुए सभी प्रगतिशील और परिवर्तनाकांक्षी जन आंदोलनों की रणनीति पर प्रश्न चिह्न लगा देता है। सच्चाई तो यह है कि डॉ अम्बेडकर के अतिरिक्त शायद ही किसी राजनेता या चिंतक द्वारा भारतीय परिदृश्य में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था और इसके लिए जरुरी जातिवाद के उच्छेद के मुद्दे पर गहराई और समग्रता से विचार किया गया है। विगत वर्षों में आनन्द तेलतुम्बड़े से लेकर संजय जोठे तक दलित राजनीति के कई अध्येताओं ने यह रेखांकित किया है कि अम्बेडकर के बाद दलित राजनीति के एजेण्डे से जाति उन्मूलन का मुद्दा सिरे से गायब हो गया है और सभी दलित–बहुजन राजनीतिक दल सामाजिक न्याय और सोशल इंजिनियरिंग के नाम पर जातीय अस्मिता और जातियों को मजबूत करने की राजनीति करने लगे हैं। अम्बेडकर के बाद शिक्षित दलितों ने अपने जीवन में सफलताएँ तो अर्जित की किन्तु वे उनके सामाजिक क्रांति के संदेश को भूल गए। विशेष तौर पर महाराष्ट्र में बड़े पैमाने पर लोगों ने बौद्ध धर्म को अंगीकार किया लेकिन यह अंगीकरण केवल अपनी अस्मिता की अभिव्यक्ति तक ही केन्द्रित रहा। डॉ अम्बेडकर न तो बौद्ध धर्म को केवल दलितों की सामाजिक–सांस्कृतिक अस्मिता की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना चाहते थे जिसके अंतर्गत दलितों को कतिपय बौद्ध रीति–रिवाजों और संस्कारों को अपना कर अपनी सामाजिक पहचान को व्यक्त करना था न ही उनके लिए यह राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का एजेण्डा था बल्कि डॉ अम्बेडकर बौद्ध धर्म को आधार बना कर पूरी सामाजिक, आर्थिक ढाँचे को पुनर्गठित करना चाहते। बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को वास्तविक तौर पर ग्रहण न करने की वजह से अपने जीवन में अहं एवं प्रलोभन तक को तिलांजलि नहीं दे पाए और बिना किसी आदर्श और दीर्घकालीन रणनीति के फूट का शिकार होते चले गए।

अम्बेडकर के बाद यदि किसी राजनेता ने दलित आंदोलन को सार्थक दिशा देने का प्रयास किया तो वे कांशी राम थे। उन्होंने अपनी प्रखर बौद्धिकता, कुशल सांगठनिक क्षमता, दृढ़ लक्ष्यबद्धता के जरिए इस बात को बखूबी भाँप लिया कि पूना पैक्ट के बाद दलितों का जो नेतृत्व अस्तित्व में आया है वह अपने राजनीतिक वजूद के लिए सवर्ण नेतृत्व की चमचागिरी करने के लिए बाध्य है। एक ओर जहाँ अम्बेडकर और उनके पूर्ववर्ती सामाजिक आंदोलनों को समग्रता से न समझ पाने,

पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यक वर्गों से राजनीतिक गठजोड़ न कर पाने और स्पष्ट राजनीतिक एजेण्डे के अभाव में दलित राजनीति सवर्ण राजनीति की पिछलग्गू बनने को मजबूर है वहीं दूसरी ओर दलित शिक्षित नौकरीपेशा वर्ग किसी प्रेरणा और संगठन के अभाव में किसी भी सामाजिक दायित्व से रहित होकर 'सभ्रांतों के अलगाव' का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में कांशीराम ने सर्वप्रथम नौकरी पेशा दलित–पिछड़े शिक्षित मध्यम वर्ग को बामसेफ संगठन के माध्यम से एकजूट कर उन्हें अपने सामाजिक दायित्वों से जोड़ा ताकि दलित आंदोलन के लिए खरे और समर्थ नेतृत्व का स्रोत प्राप्त हो सके। इसके बाद उन्होंने अपने आंदोलन के लिए तीन चरण तय किए जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक चमचा युग में किया है। कांशीराम अपनी पुस्तक में लिखते हैं, 'सभ्रांतों के अलगाव' जैसी भयंकर बीमारी तक से निपटने में सक्षम खरे और समर्थ नेतृत्व की व्यवस्था करने के बाद, हम समस्या पर आते हैं। चमचा युग की समस्या का सफल समाधान करने के लिए, हमें इसे निम्नानुसार 3 भागों में विभाजित करना होगा–(1)चमचा युग की चुनौती से निपटना। (2) चमचा युग का अंत करना। (3) उज्जवल युग लाना।[3] चमचा युग की चुनौती से निपटने के लिए कांशीराम ने अल्पावधि समाधान की रणनीति तय की जिसके अन्तर्गत डीएसफोर जैसे संगठन के माध्यम से सामाजिक कार्रवाई करनी थी। चमचा युग के अंत के लिए उन्होंने दीर्घकालीन समाधान की रणनीति तय की जिसके अंतर्गत दलित–शोषित समाज की अपनी पार्टी[4] के जरिए राजनीतिक कार्रवाई की जानी थी। किंतु कांशीराम जानते थे कि जाति की समस्या का स्थायी समाधान और उज्जवल युग की स्थापना तभी सम्भव है जब सांस्कृतिक बदलाव और नियंत्रण लाया जाए। कांशीराम इस संदर्भ में भले ही बौद्ध धर्म का नाम नहीं लेते किंतु सांस्कृतिक बदलाव के जरिए उज्जवल युग की स्थापना की उनकी बात डॉ अम्बेडकर के निष्कर्षों से पूर्णतः मेल खाती है जिसका उल्लेख हमने उपर किया है। कांशीराम जिन पंक्तियों के साथ चमचा युग का अंत करते हैं उनमें एक दिग्गदर्शक की सीख और चेतावनी दोनों नजर आती हैः–

---

[3] कांशीराम, चमचा युग, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, पेज–107

[4] कांशीराम की पुस्तक चमचा युग का प्रकाशन 1982 में हुआ था उस समय बहुजन समाज पार्टी अस्तित्व में नहीं आई थी।

'पिछले अनुभव के आलोक में, यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि भविष्य का काम जबरजस्त है, विशेषकर तब जब हमें पता है कि जातियों की इस संस्कृति को इस व्यवस्था के लाभन्वितों का गुप्त और खुला समर्थन मिल रहा है। किंतु पूर्ण समानता की इस संस्कृति को परम समानता में तब्दील करना हमारा लक्ष्य बने रहना चाहिए। वर्तमान संस्कृति पर व्यवस्था के लाभान्वितों का नियंत्रण है। किंतु परम समानता की बदली संस्कृति को हमेशा वर्तमान व्यवस्था के पीड़ितों के हाथों में ही रहना चाहिए। विध्वंश और भीतरघात से बचना अनिवार्य होगा। मौर्य समाज के पतन से हमें यही सबक सीखना है।'[5]

आज जबकि दलित राजनीति सिद्धांतहीनता, स्वार्थबद्धता और गतिहीनता का शिकार हो चुकी है और नैतिकता और तार्किकता की बातें वे कर रहे जिनका पारम्परिक रुप से इन दोनों चीजों से वास्ता नहीं रहा है समाज के नेतृत्व और उज्जवल युग की स्थापना का दायित्व दलित और वंचित वर्ग के बुद्धिजीवियों के कंधे पर आता है, जिन्हें अम्बेडकर ने शिक्षित बनो, संगठित रहो एवं संघर्ष करो का नारा दिया था और जिन्हें कांशीराम ने 'संभ्रांतों के अलगाववाद' की बीमारी से मुक्त करा कर खरे और समर्थ नेतृत्व के सतत स्रोत के रुप में संगठित किया था।

---

[5] कांशीराम, चमचा युग, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, पेज–118

संदर्भ–सूची

- Omvedt, Gail (2011), Building the Ambedkar Revolution: Sambhaji Tukaram Gaikwad and the Konkan Dalits, Bhashya Prakashan, Mumbai.
- Omvedt, Gail (2011), Cultural Revolt in a Colonial Society: The Non-Brahman Movement in Western India, Manohar Publication, New Delhi.
- Omvedt, Gail (2003), Buddhism in India (Challenge Bramhnanism and Caste), Sage Publication] New Delhi.
- Omvedt, Gail (2011), Seeking Begampura the Social Vision of Anti caste Intellectual, reprinted 2011, Navyana Publications, New Delhi.
- Hardtmann, Eva-Maria (2009), Dalit Movement in India Local Practices Global Corrections, Oxford University Press, New Delhi.
- Zelliot, Eleanor (2013), Ambedkar's World: The Making of Babasaheb and the Dalit Movement, Navyana Publications, New Delhi.
- Zelliot, Eleanor (2001), From Untouchable to Dalit: Essays on the Ambedkar Movement, Manohar Publications, New Delhi.
- Nahar, Emanual, (2017), Dr B.R. Ambedkar's Philosophy in Contemporary India, Kalpaz Publication, Delhi
- Narayana, Badri (2014) Kanshiram (Leader of the Dalits), Penguin Books, New Delhi.
- Pai, Sudha (2007), Political Process in Uttar Pradesh: Identity, Economic Reforms and Governance, Pearson Language, New Delhi.
- Pai, Sudha (2002), Dalit Assertion and the Unfinished Democratic Revolution, The Bahujan Samaj Party in Uttar Pradesh, Cultural Subordination and the Dalit Challenge, Vol.3, Sage Publication, New Delhi.
- Ojha, Jayaprakash (2008), DNA of Dalit Movement, Partredge, India.

- Boss, Ajay, Behenjee (2008), A Political Biography of Mayawati, Penguine Publication, India.
- Yengde, Suraj and Teltumbde, Anand (2018), The Radical in Ambedkar: Critical Reflections, Penguin Random House, Haryana, India.
- Teltumbde, Anand (2017), Dalit Past Present and Future, Rautledge, New York.
- Pai, Sudha (2013), Dalit Assertion, Oxford University Press, New Delhi.
- Thorat, Sukhadeo and Kumar Narendra (2008), B. R. Ambedkar: Perspectives on Social Exclusion and Inclusive Policies, Oxford University Press, New Delhi.
- Valerian, Rodrigues (2002), The Essential Writings of B.R. Ambedkar, Oxford University Press, New Delhi.
- Deshpande, G.P. (2002), Selected Writings of Jotirao Phule, Left World Books, New Delhi.
- Narayan, Badri (2011), The Making of The Dalit Public in North India Uttar Pradesh (1950 – Present), Oxford University Press, New Delhi.
- Kumar, Vivek (2014), Caste and Democracy in India: A Perspective From Below, Bihar Publication House, New Delhi.
- Pawar, J.V. (2016), Ambedkar Movement after Ambedkar Panthers, Love Publication, Mumbai.
- Kuber, W.N. (1973), Ambedkar: A Critical Study, Peoples Publishing House, New Delhi.
- Justice Iyer, V.R. Krishna (2010), Dr. Ambedkar and the Dalit Future, B. R. Publishing Corporation, Delhi.
- Ghurye, G.S. (1932), Caste and Race in India, Popular Prakashan, Bombay.
- Ram, Nandu (1995), Beyond Ambedkar Essay on Dalit in India (Revised Edition), Forward Publication, New Delhi.

- Moon, Basant (2002), Dr. Babasaheb Ambedkar, translated by Asha, National Book Trust, New Delhi, India.
- Kumar, Vivek (2002): Dalit leaders in India, Kalpaz Publication, Delhi
- Michael, S.M.(2007): Dalit in modern India(vision and values),Sage Publication, New Delhi.
- Shah, Ghanshyam (2001): Dalit Identity and Politics, Sage Publication India, New Delhi.
- China Rao (2003): Dalit struggle for Identity, Kanishka Publication Distribution, New Delhi.
- Nagraj D.R. (2010), The Flaming Feet and other essays, Permanent Black, New Delhi.
- Zene Cosimo(ed.),The Political Philosophies of Antonio Gramsci and B.R.Ambedkar itineraries of Dalits and Subalterns, Routledge, Newyork 2013
- आमवेट, गेल (2005), अंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर (अनुवाद डॉ पूरनचंद टंडन), पेंगुइन बुक्स, नोएडा।
- आमवेट, गेल (2009), दलित और प्रजातांत्रिक कांतियां, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, राजस्थान।
- आमवेट, गेल (2011), दलित दृष्टि, अनुवाद रमणिका गुप्ता एवं अखिल केश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- जेफरलेट, क्रिस्टोफर (2003), इंडियाज साइलेंट रिवॉल्यूशनः द साइंस ऑफ लो कास्ट इन नॉर्थ इंडियन पॉलिटिक्स , कोलंबिया यूनिवर्सिटी, न्यूयॉर्क।
- जेफरलेट, क्रिस्टोफर (2019), भीमराव अंबेडकर एवं जीवनी जाति का संघर्ष एवं विश्लेषण (अनुवाद योगेंद्र दत्त) राजकुमार पेपरबैक्स, नई दिल्ली।

- कीर धनंजय (2006), डॉ बाबासाहेब आंबेडकर जीवन चरित्र (अनुवाद गजानंद सुर्वे) पॉप्युलर प्रकाशन , नई दिल्ली।
- गाताडे, सुभाष (2014), बीसवीं सदी में डॉक्टर अंबेडकर के सवाल, दखल, प्रकाशन दिल्ली।
- तेलतुंबडे, आनंद, (2016), जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन, संपादक कबीना सैफी, आधार प्रकाशन, हरियाणा।
- कुमार, प्रवेश (2011), दलित अस्मिता की राजनीति मानक पब्लिकेशन दिल्ली।
- नारायण, बद्री (2014), दलित विरांगनाएं एवं मुक्ति की चाह उत्तर भारत में दलित संस्कृति पहचान और राजनीति, अनुवाद योगांक धीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- नारायण, बद्री, लोक संस्कृति और इतिहास (1994), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- सेंगर, शैलेंद्र (2012), मायावती बहुजन से सर्वजन तक, बुक ट्री पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- कांशीराम, चमचा युग (1982), यह पुस्तक 14 सितंबर 1982 को पूना समझौते 50वीं सालगिरह पर प्रकाशित की गई।
- बहुजन संघटक, (1998), 'हमें जातिविहीन समाज के निर्माण में शासक वर्ग बनना होगा, नई दिल्ली, 16 नवंबर 1998।
- मगरुकर, लता (1991), दलित पैंथर मूवमेंट इन महाराष्ट्रः सोशियोलॉजिकल एप्रेजल पॉप्युलर प्रकाशन, बम्बई।
- लिंच ओवन एम., (1969), पॉलिटिक्स आफ अनटचेबिलिटी सोशल मोबिलिटी एंड सोशल चेंज इन ए सिटी ऑफ इंडिया, न्यूयार्क।

- शाह, घनश्याम (2004), सोशल मूवमेंट्स इन इंडिया अ रिव्यू ऑफ लिटरेचर, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।
- हसन, जोया (1989), पावर एंड मोबिलाइजेशन पैटर्न ऑफ क्रिश्चियंस एंड चेंज इन उत्तर प्रदेश, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- हसन, जोया (2002), रिप्रेजेंटेशन एंड रिडिस्ट्रीब्यूशनः द न्यू लोअर कास्ट पॉलिटिक्स इन नॉर्थ इंडिया में, जोया हसन (ed.) पॉलिटिक्स एंड पार्टी पॉलिटिक्स इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड, दिल्ली।
- लिंबाले, शरण कुमार (1946), दलित पैंथर भूमिका एवं आंदोलन, अनुवाद डॉ विनोद कुमार, वि वायचल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- रॉबर्टसन, अलैक्जेंडर (2017), भारतीय जाति व्यवस्था में महार लोक महाराष्ट्र में अछूतों पर एक अध्ययन, अनुवादक डॉ संजय गजभीए, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- आर्या, जियालाल (2004), दलित समाजः आज की चुनौतियां, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
- जाटव, डी आर (2004), डॉ अंबेडकर एक प्रखर विद्रोही, एबीडी पब्लिशर्स, जयपुर, राजस्थान।
- अंबेडकर, भीमराव (1945), व्हाट कांग्रेस एंड गांधी हैव गांधी इन टू द अनटचेबल्स, गौतम बुक सेंटर।
- अंबेडकर, भीमराव (1946) हू बेयर शुद्राज? हाउ दे केम टू बी द फोर्थ वर्ना इन द इंडो आर्यण सोसायटी, ठाकर पब्लिकेशन।
- भारती, कंवल (1996), कांशीराम के दो चेहरे, बोधिसत्व प्रकाशन, दिल्ली।
- रिग्स, सीडब्ल्यू (2004), चमार्स, लो प्राइस पब्लिकेशन, दिल्ली।

- थोराट, सुखदेव (2011), भारत में दलित सामान्य लक्ष्य की खोज, अनुवादक विजय कुमार पंत, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

- तेलतुम्बडे, आनंद (2016), अंबेडकर और दलित आंदोलन, अनुवादक कृष्ण सिंह, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली।

- अंसारी, इफ्तखार अहमद (2017), नवीन दलित आंदोलन एवं वर्तमान नेतृत्व, राज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

- रत्तू, नानक चंद (2014), डॉ अंबेडकर जीवन के अंतिम कुछ वर्ष, अनुवादक डॉ0 आर. बी. लाल, किताब घर पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

- विश्वास, नितीश (2014), राष्ट्रनेता डॉ बी आर अंबेडकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

- सोनटक्के, यशवंत (2012), बाबासाहेब डॉ अंबेडकर के विचार, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।

- जाटव, डी आर (1996), डॉ अंबेडकर के समाजशास्त्रीय विचार, समता साहित्य सदन, जयपुर।

- च्वहाण शेषराव, (2014), डॉ अंबेडकर की अंर्तवेदना, अनुवादक बिसारिया डॉ पुनीत, अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

- जाधव, नरेंद्र (2015), डॉ आंबेडकर सामाजिक विचार एवं दर्शन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।

- तेलतुम्बडे, आनंद (2016), उत्तर अंबेडकर दलित आंदोलनः दशा और दिशा, सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली।

- शर्मा, राम शरण (1992), शूद्रों का प्राचीन इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

- लिंबाले, शरण कुमार (2013), प्रज्ञासूर्य डॉ बाबासाहेब आंबेडकर, अनुवाद संपादक डॉ सूर्यनारायण रणसुमे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- गौतम, एस (2009), डॉ आंबेडकर के भाषण, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली।
- जाटव, डी आर (1984), डॉ आंबेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, समतासाहित्य सदन, जयपुर, राजस्थान।
- कुमार, विवेक (2012), प्रजातंत्र का विरोधाभास (दलितों पिछड़ों की संस्कृति एवं विचारधारा का इतिहास), सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- जाधव, नरेंद्र (2015), डॉ आंबेडकर राजनीति, धर्म और संविधान विचार (ed.), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
- रत्तू, नानक चंद (2003), डॉ आंबेडकर कुछ अनछुए प्रसंग, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- मौर्य, ओम प्रकाश (2018), जाटव समाज का उद्गम एवं दलित आंदोलन, आलोकपर्व प्रकाशन, दिल्ली।
- दास, अशोक (2017), करिश्माई कांशीराम, दास पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- अंबेडकर बी. आर. (2011), बुद्ध एंड हिज धम्मा, हिंदी अनुवाद डॉ भदंत आनन्द कौशाल्यायन, बुद्ध विहार सिद्धार्थ हाउस, लखनऊ।
- जाटव, डी. आर. (1996), गांधी लोहिया और अंबेडकर, समतासाहित्य सदन, जयपुर, राजस्थान।
- कुमार, विवेक (2004), बहुजन समाज पार्टी एवं संरचनात्मक परिवर्तन एक समाजशास्त्रीय अवलोकन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- परिहार, एम. एल. (2017), बाबासाहेब अंबेडकर लाइफ एंड मिशन, बुद्धम पब्लिशर्स, जयपुर, राजस्थान।

- कुमार, विवेक (2014), प्रजातंत्र में जाति आरक्षण एवं दलित, नई दिल्ली।
- बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर का संपूर्ण वांग्मय (खडं 1 से खडं 21),
- डॉ अंबेडकर प्रतिष्ठान (2013), सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली।
- कुमार, विवेक (2013), दलित समाज पुरानी समस्याएं नयी आकांक्षाएं, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- कुमार, विवेक (2015), दलित एजेंडा 2050, दास प्रकाशन नई दिल्ली ।
- अंबेडकर, बी.आर (2003), हिन्दू नारी का उत्थान और पतन, हिंदी अनुवाद सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली ।
- अंबेडकर, बी. आर. (2013), जातिभेद का बीजनाश, हिंदी अनुवाद सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली ।
- अंबेडकर, भीमराव (2008), मूकनायक,संकलन एवं अनुवाद श्योराज सिंह बेचैन, गौतम बुक सेंटर,दिल्ली।
- प्रसाद, चंद्रभान (2010), भारतीय समाज और दलित राजनीति, गौतम बुक सेंटर, नई दिल्ली ।
- श्रीनिवास, एम.एन. (1967) : आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन , दिल्ली ।
- कुमार, अनुज (2007) : बहुजन नायक कांशीराम के अविस्मरणीय भाषण , गौतम बुक सेंटर शाहदरा, दिल्ली ।
- ऋग्वेद पुरूषसूक्त ।
- कोठारी, रजनी (2005) : भारत में राजनीति कल और आज , वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

- राम, जगजीवन (1996) : भारत में जातिवाद : हरिजन समस्या, राजपाल एंड संस, दिल्ली ।
- दास, भगवान (2002) : अंबेडकर के विचार , मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी ।
- सिंह राजगोपाल (1998) : भारतीय दलित समस्याएं एवं समाधान , मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी ।
- भारती कंवल (2007) : दलित विमर्श की भूमिका, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश ।
- नैमिशराय, मोहनदास (2004) : भारतीय दलित आंदोलन एक संक्षिप्त इतिहास, बुक फॉर चेंज, नई दिल्ली ।
- मेघवाल, कुसुम (2002) : भारतीय राजनीति के आंदोलनकर्ता कांशीराम , राजस्थान दलित साहित्य अकादमी , उदयपुर, राजस्थान ।
- चंगोले पी एस (2002) : बहुजनों भारत के शासक बनो, गुरू रविदास प्रकाशन, नागपुर।
- दत,महेश्वर (2005) : गांधी अंबेडकर और दलित , राधा पब्लिकेशंस , नई दिल्ली।
- दुसाध एच एल (2005) : सामाजिक परिवर्तन और बी.एस.पी. , सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली ।
- गौतम, एस.एस. (2004): बहुजन नायक मान्यवर कांशीराम स्मृति ग्रंथ , गौतम बुक सेंटर , शाहदरा, दिल्ली ।
- किशोर राज (2006) : दलित राजनीति की समस्याएं , वाणी प्रकाशन , दिल्ली।
- लाल अंगने, राज राहुल (2011), उतरप्रदेश में दलित आंदोलन, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली ।

- गाबा, ओमप्रकाश (2002), पाश्चात्य राजनीतिक विचारक, मयूर बुक्स, नई दिल्ली।
- ग्राम्शी एंटोनियो (2002),सांस्कृतिक और राजनीतिक चिंतन के बुनियादी सरोकार,अनुवादक कृष्णकांत मिश्र, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली।

Journals:-

- Journal of Dalit Studies
- Economic and political weekly

<u>Websites</u> -

- www.ambedkar.org
- www.dalitwatch.com
- www.ambedkartimes.com
- RoundtableIndia
- Dalit camera
- The print
- The wire
- Quint India
- Facebook
- Forwardpress.com
- firstpost

प्रकाशित शोध लेख

1. महाराष्ट्र और तमिलनाडु के सामाजिक आंदोलनों का तुलनात्मक अध्ययन, पेज&36–44, Kanshi Journal of Social Sciences, Varanasi, Vol-02 no-1, june-dec.2012. ISSN 2249-037x

2. विवेकानन्द और धर्म महासम्मेलन, पेज–50–53, Kanshi Journal of Social Sciences, Varanasi, Vol-03 no-1, June 2013- Nov 2013. ISSN 2249-037x.

3. बिहार चुनावः एक विश्लेषण, पेज–211–216, Anusilana Research Journal of Indian cultural,social and Philosophical stream, Vol-LXV, ISSN 0973-8762 .

4. डॉ अंबेडकर के परिप्रेक्ष्य में विकास , पेज–147–156, Samajiki Sangharsh, Vol.4 No.2, April-June 2016 , ISSN : 2348-0076.

5. भारत में दलित राजनीतिक चिंतनः उद्भव, विकास एवं चुनौतियां, पेज–161–168, समाजबोध, Vol.7, No.2, July-Dec.2017, ISSN-2231-0207.

6. स्त्री मुक्ति के सवाल और डॉ अंबेडकर, पेज–117–122, Praxis International Journal of Social Science and Literature, Vol-02, Issue-4, April-2019, ISSN : 2581-6675.